पतञ्जलि विश्वविद्यालय की 'प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ प्रकाशन योजना' के अन्तर्गत प्रकाशित

रविगुप्त-विरचिता

॥ सिद्धसार-संहिता ॥

(हिन्दी-व्याख्या सहित)

प्राचीन आयुर्वेदीय संहिताओं का सार प्रस्तुत करनेवाला विशिष्ट ग्रन्थ

१४०० वर्ष पूर्व रचित

परिष्कर्ता एवं हिन्दी-व्याख्याकार

आचार्य बालकृष्ण

आचार्य बालकृष्ण

भारत की आध्यात्मिक योग व आयुर्वेद परम्परा के महान् संत एवं विद्वान् महापुरुष आचार्य बालकृष्ण विश्व स्तर पर आयुर्वेद के पुनरुद्धार, प्रचार-प्रसार एवं उसको प्रामाणिकता से स्थापित करने में जुटे हैं। आचार्य जी वैदिक सनातन ऋषि परम्परा के प्रतिनिधि हैं, जिनमें महर्षि चरक, सुश्रुत एवं धन्वन्तरि आदि समस्त ऋषियों का ज्ञान समग्र रूप से समाहित है। आपके नेतृत्व में पतंजलि योगपीठ ने बिना किसी सरकारी सहयोग के आयुर्वेदिक चिकित्सा एवं अनुसंधान के क्षेत्र में विश्वस्तरीय कीर्तिमान स्थापित किया है। आपके प्रयास से योग एवं आयुर्वेद पर 29 पेटेन्ट्स प्राप्त हो चुके हैं। आपके मार्गदर्शन में योग एवं आयुर्वेद के 41 शोध-पत्र भारतीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय जर्नल्स एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। आपको योग एवं आयुर्वेद के क्षेत्र में अमूल्य योगदान के लिए 'वनौषधि पण्डित' व 'सुज्ञानश्री' आदि अनेक विशेष सम्मानों द्वारा सम्मानित किया गया है। भारत की बहुप्रसिद्ध पत्रिका 'इंडिया टुडे' (25 नवम्बर 2009) तथा 'आउटलुक' (जनवरी 2010) ने आचार्य जी की भारत के श्रेष्ठ 10 प्रगतिशील, प्रतिभाशाली एवं तेजतर्रार युवाओं में गणना की। आप योग व आयुर्वेद के क्षेत्र में सर्वाधिक बिकने वाली अनेक सुप्रसिद्ध पुस्तकों के लेखक हैं। सदियों पुरानी अप्रकाशित आयुर्वेद की पाण्डुलिपियों के अनेक ग्रन्थों का आपने विद्वत्तापूर्ण सम्पादन किया है। पचास लाख से अधिक संख्या में बिकने वाली आयुर्वेद चिकित्सा क्षेत्र की श्रेष्ठ पुस्तक 'औषध दर्शन' भी आपकी ही अनुपम रचना है। इसके अतिरिक्त हाल ही में आपके स्वप्नशील कार्य 'विश्व भैषज्य संहिता' पर कार्य चल रहा है। आचार्य जी ने अनेक टीवी चैनलों व प्रवचनों के माध्यम से विश्व के करोड़ों लोगों में जड़ी-बूटियों के प्रयोग एवं आयुर्वेद के प्रति रुचि को पुनः जागृत किया। आप एक महान् दिव्यदर्शी, परम तपस्वी, कर्मठ, पुरुषार्थी एवं बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी, विश्वमंगल हेतु अहर्निश सेवा में संलग्न रहने वाले सहज, सरल किन्तु प्रभावशाली व्यक्ति हैं। विश्व का विशालतम खाद्य प्रसंस्करण संस्थान 'पतंजलि फूड एंड हर्बल पार्क' आपके ही संकल्प का परिणाम है। आप दिव्य फार्मेसी व पतंजलि आयुर्वेद जैसे आयुर्वेद के क्षेत्र में विश्व की विशालतम अत्याधुनिक औषध निर्माणशाला के शिल्पी एवं प्रेरक हैं। ऑर्गेनिक (जैविक) कृषि, विषमुक्त धरती तथा प्रकृति व पर्यावरण की रक्षा के लिए पतंजलि बायो रिसर्च इंस्टीट्यूट (PBRI) जैसी संस्थाओं का निर्माण भी आपकी ही सोच का मूर्त रूप है। अपनी दूरदर्शिता के साथ दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) एवं पतंजलि योगपीठ (ट्रस्ट) के अन्तर्गत विश्वस्तरीय, विशालतम, सुव्यवस्थित एवं सभी आधुनिक सुविधाओं से युक्त हॉस्पिटल, योगभवन, प्रयोगशालाओं एवं अन्य युगान्तरकारी संरचनाओं के निर्माण का नेतृत्व किया है। आप योगऋषि स्वामी रामदेवजी महाराज के अनन्य सहयोगी तथा पतंजलि योगपीठ परिवार के सभी संस्थानों के मुख्य संरचनाकार हैं। आप पतंजलि विश्वविद्यालय, पतंजलि आयुर्वेद कॉलेज, आचार्यकुलम् शिक्षण संस्थानम् तथा वैदिक गुरुकुलम् आदि अनेक शिक्षण संस्थानों के संस्थापक हैं। आप आयुर्वेद की परम्परा के गौरवशाली महापुरुष व कोटि-कोटि राष्ट्रभक्त भारतीयों के प्रेरणास्रोत एवं आदर्श पुरुष हैं।

भेंट कर्ता -
प्रो॰ ओम गोस्वामी
डोगरी लिखारी
5/3/15

॥ सिद्धसार-संहिता ॥

॥ ओ३म् ॥

पतञ्जलि विश्वविद्यालय की 'प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ
प्रकाशन योजना' के अन्तर्गत प्रकाशित

(हिन्दी-भाषान्तर सहित)

विशाल आयुर्वेद-सागर के मन्थन से
प्राप्त अमृत-कलश रूप ग्रन्थ

अति प्राचीन ऋषि-प्रणीत आयुर्वेदीय संहिताओं का १४०० वर्ष पुराना संक्षेप

परिष्कर्त्ता एवं हिन्दी-व्याख्याकार
आचार्य बालकृष्ण

दिव्य प्रकाशन
पतञ्जलि योगपीठ
महर्षि दयानन्द ग्राम, दिल्ली-हरिद्वार राष्ट्रीय राजमार्ग
निकट बहादराबाद, हरिद्वार-249402 (उत्तराखण्ड)

प्रकाशक **दिव्य प्रकाशन,**
पतञ्जलि योगपीठ
महर्षि दयानन्द ग्राम, दिल्ली-हरिद्वार राष्ट्रीय राजमार्ग,
निकट- बहादराबाद, हरिद्वार- २४९४०२ (उत्तराखण्ड)

आईएसबीएन 978-81-89235-95-6

ई-मेल divyayoga@rediffmail.com

वेबसाइट www.divyayoga.com

दूरभाष (01334) 244107, 240008, 246737

फैक्स (01334) 244805

मूल्य ४००/- (चार सौ रुपया)

प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित किसी भी प्रयोग को विशेषज्ञ वैद्य के परामर्श के बिना विधिविरुद्ध रूप में प्रयोग में लाने से होने वाली किसी भी तरह की हानि के लिए प्रयोगकर्त्ता स्वयं जिम्मेदार होगा।

प्रथम संस्करण (श्रावण शुदि ८, सं. २०७१ वि.) ४ अगस्त २०१४ ई.
(२००० प्रतियाँ)

मुद्रक **रमेश कुमार मल्होत्र द्वारा राधा प्रेस,** कैलाश नगर, दिल्ली में मुद्रण

भूमिका

प्राचीन काल में आयुर्वेद-वाङ्मय बहुत विशाल था। ब्रह्माजी द्वारा रचित आयुर्वेद की आदिम संहिता एक लाख श्लोकों की थी। वाग्भट का निम्न कथन इसी तथ्य को सूचित करता है-

आयुर्वेदं श्लोकलक्षेण पूर्वं ब्रह्माम्नासीदग्निवेशादयस्तु।
कृत्स्नज्ञेयप्राप्तसाराः स्वतन्त्रास्तस्यैकैकं नैकधाङ्गं वितेनुः।।

(अष्टांगसंग्रह, उत्तरस्थान- ५०.१३१)

तदनन्तर महर्षि आत्रेय पुनर्वसु के शिष्य अग्निवेश आदि मुनियों एवं धन्वन्तरि के शिष्य सुश्रुत आदि ने 'अष्टांग आयुर्वेद' के एक-एक अंग को प्रधानता देते हुए स्वतन्त्र संहिताएं रचीं और इनके आधार पर आयुर्वेद का पठन-पाठन चलता रहा। कालान्तर में अपने युग के महान् वैद्य 'वाग्भट' ने पूर्व संहिताओं के आधार पर आयुर्वेद के आठों अंगों को एक स्थान पर निबद्ध करते हुए 'अष्टांग-संग्रह' एवं 'अष्टांग-हृदय' की रचना की-

'सर्वतन्त्राण्यतः प्रायः संहृत्याष्टाङ्गसंग्रहः'। (अ.सं. सू.-१.१८)
'युगानुरूपसन्दर्भो विभागेन करिष्यते'।। (अ.सं. सू.-१.२०)

अर्थात् सभी तन्त्रों का सारसंग्रह कर 'अष्टांग-संग्रह' नामक युगानुरूप रचना की जा रही है। इसी प्रकार 'अष्टांग-हृदय' के आरम्भ में भी कहा है-

तेभ्योऽतिविप्रकीर्णेभ्यः प्रायः सारतरोच्चयः।
क्रियतेऽष्टाङ्गहृदयं नातिसंक्षेपविस्तरम्।। (अ.हृ.सू.-१.४)

अर्थात् अति विस्तृत शास्त्रों से सारभाग का संग्रह कर यह 'अष्टांग-हृदय' बनाया जा रहा है। वाग्भट की रचना आयुर्वेद-जगत् में बहुत ही

समादृत हुई तथा परवर्ती काल में चरक, सुश्रुत आदि के साथ आयुर्वेद के अध्ययन-अध्यापन के मुख्य आधार के रूप में प्रचलित हुई।

सिद्धसारसंहिता-

यद्यपि पूर्व-संहिताओं की अपेक्षा वाग्भट ने संक्षिप्त एवं सारपूर्ण रचनाएं की थीं, परन्तु फिर भी इनका कलेवर इतना संक्षिप्त नहीं था कि सामान्य कोटि के अध्येता इनका अध्ययन कर सकें। अत: किसी ऐसी संक्षिप्त रचना की आवश्यकता हुई, जिसे अल्प सामर्थ्य वाले व्यक्ति भी पढ़कर आयुर्वेद का सारतत्त्व जान सकें और अधिक संख्या में चिकित्सक तैयार होकर गाँव-गाँव में चिकित्सा-सेवाएं दे सकें। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ७वीं शताब्दी में **आचार्य रविगुप्त** ने **'सिद्धसार-संहिता'** की रचना की थी। जैसा कि ग्रन्थारम्भ में वे स्वयं कहते हैं-

आयुर्वेदोदधिं तर्त्तुमशक्ता येऽल्पमेधसः।
तेषामियं प्रबोधाय विहिता तन्त्रपद्धतिः।।(सिद्धसार-संहिता- १.२)

अर्थात्- जो अल्प मेधा वाले जन आयुर्वेद-सागर को पार करने में असमर्थ हैं, उनके प्रबोध हेतु यह संक्षिप्त तन्त्रपद्धति (शास्त्र की सरणि-अर्थात् पगडण्डी) बनाई है; क्योंकि संक्षिप्त व सुगम होने से अल्प सामर्थ्य वाले भी इसे सरलता-पूर्वक पार कर सकते हैं।

१३०० श्लोकों की इस लघुकलेवर रचना में अति विशाल आयुर्वेद का सार इस कुशलता से समाहित कर दिया कि मानो गागर में सागर भर दिया हो। सुगम शैली में रचित इस सारपूर्ण रचना को वैद्य-समाज ने बड़े उत्साह से अपनाया और विशेष उपयोगी होने से यह सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचलित हो गई। इसमें अति विस्तृत आयुर्वेद को अति संक्षेप में प्रस्तुत करना कुछ विद्वानों को अखरा और उन्होंने यहाँ तक कह डाला-

कातन्त्रशब्दवेत्ता हि वैद्यश्च सिद्धसारवित्।
काष्ठखड्गधरश्चोपहासं यान्ति त्रयोऽपि ते।। (शतगाथा-४४)

अर्थात् कातन्त्रशब्दवेत्ता वैयाकरण, 'सिद्धसार-संहिता' पढ़ा हुआ वैद्य और काठ की तलवार रखने वाला सैनिक- ये तीनों उपहास के पात्र होते हैं। इस आक्षेप के पीछे वक्ता का इतना ही अभिप्राय समझना चाहिए कि वैद्य को 'सिद्धसार-संहिता' भर से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए; अपितु अपने ज्ञान व अनुभव को बढ़ाने के लिए चरक, सुश्रुत एवं वाग्भट आदि का अनुशीलन भी करना चाहिए, जिससे उसका ज्ञान व चिकित्सा-विषयक दक्षता उत्तरोत्तर बढ़ती रहे। वस्तुत: अल्प सामर्थ्य वाले पात्र के लिए तो 'सिद्धसार-संहिता' का अतिसंक्षेप गुण ही है; क्योंकि इससे सामान्य क्षमता वाले व्यक्ति भी आयुर्वेद का सारभूत तत्त्व प्राप्त कर चिकित्सा में समर्थ हो सकते हैं।

इस संक्षिप्त रचना का एक प्रयोजन यह भी है कि क्लेशभीरु एवं सुकुमार प्रकृति के अध्येता सुगम एवं लघु होने से इसे पढ़ने का साहस जुटा लेते हैं। तदनन्तर इसमें निष्णात होने पर वे रुचि तथा सामर्थ्य के बढ़ जाने से चरक, सुश्रुत एवं काश्यप आदि की विशाल संहिताओं को भी पढ़ने में समर्थ हो सकते हैं। इस प्रकार यह संहिता अति विशाल एवं भव्य आयुर्वेद-प्रासाद के लिए प्रवेश-द्वार के रूप में है।

'सिद्धसार-संहिता' में आयुर्वेद के इस अति संक्षिप्तीकरण का उल्लेख 'अष्टांगहृदय' के टीकाकार अरुणदत्त ने भी किया है। निम्न वचन की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं-

'क्रियतेऽष्टाङ्गहृदयं नातिसंक्षेपविस्तरम्'। (अ. हृ. सू.-१.४)

'अतिसंक्षेपं किञ्चित्तन्त्रं यथा **सिद्धसारादि**, किञ्चिच्चातिविस्तरं यथा संग्रहादि। इदं तु तन्त्रं नातिसंक्षेपविस्तरम्'।

इस प्रकार अति संक्षिप्त एवं सुगम होने से ही यह रचना अधिक लोगों तक पहुँच सकी और शीघ्र ही लोकप्रिय हो गई। इस रचना को वैद्यसमाज ने उत्साह-पूर्वक अपनाया और यह भारतवर्ष के बड़े क्षेत्र में आयुर्वेद-चिकित्सा की आधारभूत पुस्तिका बन गई। कश्मीर से केरल तक इसका व्यापक प्रचार हुआ। कश्मीरी विद्वान् चन्द्रट एवं केरलवासी वैद्यराज अनन्तकुमार द्वारा अपने ग्रन्थों में 'सिद्धसार-संहिता' से प्रस्तुत सैकड़ों उद्धरण इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं। बंगवासी चरक-चतुरानन चक्रपाणिदत्त और गुर्जरप्रान्तीय वैद्यप्रवर सोढल आदि ने भी इसे आदर-पूर्वक उद्धृत किया है।

ग्रन्थकार का परिचय एवं काल-

'सिद्धसार-संहिता' के रचयिता आचार्य रविगुप्त ने स्वयं ही ग्रन्थारम्भ में अपने विषय में सूचना दी है-

सार्वं प्रणम्य सर्वज्ञं दुर्गगुप्तस्य सूनुना।
संहिता सिद्धसारेयं रविगुप्तेन वक्ष्यते।। (सिद्धसार-संहिता- १.१)

अर्थात् सार्व (सर्वहितकारी) एवं सर्वज्ञ (भगवान् बुद्ध) को प्रणाम कर 'दुर्गगुप्त' के पुत्र **'रविगुप्त'** द्वारा यह **'सिद्धसार-संहिता'** रची जा रही है। बौद्ध-परम्परा में 'सार्व' एवं 'सर्वज्ञ' शब्दों से भगवान् बुद्ध को विशेषित किया जाता है। ग्रन्थकार आचार्य रविगुप्त बौद्ध थे, अत: उन्होंने ग्रन्थारम्भ में इन शब्दों से भगवान् बुद्ध का स्मरण करते हुए उन्हें प्रणाम किया है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ के अन्त में भी वे अपने विषय में एक अन्य महत्त्वपूर्ण सूचना देते हैं-

नियोगाद् देवगुप्तस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य संहिताम्।
पाण्डुनागं समुद्दिश्य रविगुप्तोऽकरोदिमाम्।। (सिद्ध.- ३१.३२)

अर्थात् ज्येष्ठ भ्राता श्री देवगुप्त की आज्ञा से रविगुप्त ने 'पाण्डुनाग' के लिए इस संहिता को रचा है। इससे स्पष्ट है कि ग्रन्थकार के बड़े भाई का

नाम 'देवगुप्त' था। उन्हीं की प्रेरणा से 'पाण्डुनाग' को लक्ष्य कर यह संहिता रची गई थी। यहाँ 'पाण्डुनाग' के विषय में जानकारी करना अपेक्षित है।

इसके अतिरिक्त नेपाल से प्राप्त एक हस्तलिखित प्रतिलिपि (संख्या-७२४६) के अन्त में पुष्पिका के अन्तर्गत लिखा है-

कृतिः .. अश्ववैद्यदुर्गगुप्तस्य सूनो रविगुप्तस्येति।

अर्थात् यह रचना अश्ववैद्य दुर्गगुप्त के पुत्र रविगुप्त की है। इससे विदित होता है कि रचयिता के पिता दुर्गगुप्त अश्ववैद्य थे। ये पश्चिम भारत के निवासी थे। प्राचीन काल में आयुर्वेद की अश्ववैद्यक शाखा बहुत ही उन्नत अवस्था में थी और इसके विशेषज्ञ वैद्य राजाओं के लिए बहुत ही आदरणीय एवं प्रिय होते थे। 'दुर्गगुप्त' अश्ववैद्यक के पारंगत आचार्य थे। इस प्रकार वैद्यविद्या 'रविगुप्त' को पितृपरम्परागत रूप में मिली थी। ग्रन्थकार के विषय में अन्य विशेष जानकारी के लिए गवेषणा अपेक्षित है।

आचार्य रविगुप्त की इस रचना से प्रतीत होता है कि ये आयुर्वेद सहित नाना शास्त्रों के निष्णात विद्वान् एवं उच्चकोटि के अनुभवी चिकित्सक थे। ये काव्यकला में अति कुशल थे और संस्कृत भाषा पर इनका असाधारण अधिकार था। आयुर्वेद-विषय में इनका अनुशीलन बहुत व्यापक था। धन्वन्तरि-परम्परा एवं आत्रेय पुनर्वसु की परम्परा- इन दोनों के ये विशेषज्ञ थे। 'सिद्धसार-संहिता' के अध्ययन से प्रतीत होता है कि उन्होंने उक्त दोनों परम्पराओं के गहन अध्ययन-अध्यापन एवं विशिष्ट चिकित्सकीय अनुभव के उपरान्त ही यह सारभूत रचना प्रस्तुत की थी। ग्रन्थान्त में उपलब्ध निम्न श्लोक से भी यही तथ्य सूचित होता है-

इति धन्वन्तरेर्वीक्ष्य मतमत्रिसुतस्य च।
आयुर्वेदार्णवाकीर्णश्चिकित्साम्बुलवो मया।। (सिद्ध. ३१.३०)

इसका भाव है कि- 'धन्वन्तरि' एवं 'अत्रिसुत' (आत्रेय पुनर्वसु) के मत- अर्थात् 'सुश्रुत-परम्परा' एवं 'चरक-परम्परा' का सम्यक् अनुशीलन कर मैंने (रविगुप्त ने) आयुर्वेद-सागर में विद्यमान अगाध चिकित्साम्बु (चिकित्सा-ज्ञान) में से कुछ बिन्दु संगृहीत किए हैं- अर्थात् अति विस्तृत चिकित्सा-विषय को सुगम एवं संक्षिप्त शैली से इस 'सिद्धसार-संहिता' में निबद्ध किया है। इससे स्पष्ट है कि आचार्य रविगुप्त अपार वैद्यविद्यार्णव के कुशल कर्णधार थे। इनके अगाध वैदुष्य के अनुरूप ही इस रचना को आयुर्वेद-वाङ्मय में विशिष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।

संस्कृत के प्राचीन सुभाषित-ग्रन्थों में 'रविगुप्त' के नाम से बहुत-से सुभाषित उद्धृत हैं। ये प्राय: रविगुप्त-रचित 'लोकसंव्यवहारप्रवृत्ति' से लिए गए हैं। यह रचना अब प्रकाशित हो चुकी है । इसमें दृष्टान्त के रूप में बहुत-से आयुर्वेद से सम्बद्ध कथन मिलते हैं, यथा-

'कुष्ठव्याधेरौषधमनुरूपमुशन्त्यरिष्टतरुम्।' (लोक०- ११४)

वैद्य जन नीम को कुष्ठ व्याधि की अनुरूप ओषधि बताते हैं।

'उद्भूतारिष्टानामपथ्यमेवाधिकं स्वदते'। (लोक०- ११६)

प्रकट हो चुके हैं अरिष्ट (मृत्यु के पूर्वचिह्न) जिनमें, ऐसे रोगियों को अपथ्य भोज्य ही अधिक रुचिकर लगते हैं।

पथ्ये अपि समविधृते सर्पिर्मधुनी विषी भवत:। (लोक०- १६७)

घृत व मधु पथ्य होने पर भी समान मात्रा में एकसाथ मिलाने से विषतुल्य बन जाते हैं- इत्यादि। लोकसंव्यवहारप्रवृत्ति-गत इस प्रकार के बहुत-से कथन सूचित करते हैं कि इस सुभाषित-ग्रन्थ का रचयिता आयुर्वेद-विशेषज्ञ था। अत: प्रतीत होता है कि 'लोकसंव्यवहारप्रवृत्ति' के रचयिता रविगुप्त वही थे, जिन्होंने 'सिद्धसार-संहिता' की रचना की थी। अन्य अनेक विद्वानों का भी ऐसा ही अनुमान है।

आयुर्वेद के क्षेत्र में वाग्भट की रचनाओं के उपरान्त 'सिद्धसार-संहिता' सर्वाधिक चर्चित एवं महत्त्वपूर्ण रचना मानी जाती है। इतिहासवेत्ता विद्वानों की दृष्टि में वाग्भट का काल विक्रम की छठी शताब्दी है तथा रविगुप्त का काल उसके लगभग सौ वर्ष पश्चात् माना जाता है। इस प्रकार 'सिद्धसार-संहिता' की रचना विक्रम की ७वीं शताब्दी में स्वीकार की जाती है। ग्रन्थ के अन्तरंग साक्ष्यों से भी यह तथ्य समर्थित होता है। 'सिद्धसार-संहिता' में बहुत-से योग ऐसे मिलते हैं, जिनका मूल 'अष्टांगहृदय' में उपलब्ध है। प्रतीत होता है कि उन्हीं के आधार पर किञ्चित् भिन्न शब्दावली में आचार्य रविगुप्त ने उन्हें 'सिद्धसार-संहिता' में निबद्ध किया है।

दसवीं शती ई. के प्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ व ग्रन्थकार कश्मीरी आचार्य चन्द्रट ने अपने 'योगरत्न-समुच्चय' में 'सिद्धसार-संहिता' से बहुत-से उद्धरण प्रस्तुत किए हैं। इससे स्पष्ट है कि इस काल तक यह संहिता भारत में बहुत विख्यात व प्रचारित हो चुकी थी। **'चक्रदत्त'** (१०वीं शती ई.), **'चक्रदत्त-रत्नप्रभा'** (१२वीं शती ई. का पूर्वार्द्ध) एवं **'गदनिग्रह'** (१३वीं शती ई.)- इन ग्रन्थों में 'सिद्धसार-संहिता' से लिए गए बहुसंख्यक उद्धरण भी इस तथ्य के पुष्ट प्रमाण हैं।

ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय-

प्रस्तुत ग्रन्थ के नाम से सूचित हो रहा है कि इसमें आयुर्वेद का सिद्ध-अर्थात् चिरकाल से अनुभूत व सुनिर्णीत सारभूत अंश ही संकलित किया गया है। संहिता शब्द का अर्थ है- संग्रहात्मक रचना। इस प्रकार 'सिद्धसार-संहिता' में इसके रचयिता ने सम्पूर्ण अष्टांग आयुर्वेद को संक्षिप्त रूप में समाहित कर दिया है। इसमें संक्षिप्त निदान सहित रोगों की सर्वांगीण चिकित्सा वर्णित है। जैसे विशालकाय हाथी छोटे दर्पण में प्रतिबिम्बित हो जाता है, इसी प्रकार अति विशाल आयुर्वेद इस लघुकलेवर ग्रन्थ में सर्वांगसम्पन्न रूप में प्रतिबिम्बित है।

प्रस्तुत ग्रन्थ ३१ अध्यायों में पूर्ण हुआ है। ग्रन्थारम्भ के दो अध्यायों में आयुर्वेद के उन मूल सिद्धान्तों का सूत्ररूप में निरूपण किया है, जो प्राचीन संहिताओं के सूत्रस्थान में वर्णित हैं। तृतीय अध्याय में प्राचीन संहिताओं के आधार पर संक्षेप से अरिष्टों का वर्णन किया है, इनके द्वारा आयु-परीक्षा के उपरान्त ही चिकित्सा में प्रवृत्त होने का निर्देश है। चतुर्थ अध्याय में 'अन्नपान विधि' का वर्णन किया गया है। इसके अन्तर्गत विविध धान्य, शाक, फल, उपस्कर (मसाले), लवण, क्षार, जल, दूध, घृत, नवनीत, तेल, मधु, इक्षुरस, गुड़ आदि इक्षुविकार, विविध प्रकार की आहार-कल्पना एवं भोजनानुपान-द्रव्यों का गुणदोष-विवेचन सहित वर्णन किया है। इसका परिज्ञान स्वस्थ एवं रोगी- दोनों के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

आगे के अध्यायों में 'कायचिकित्सा' का विषय है, जिसके अन्तर्गत संक्षिप्त निदान सहित ज्वर आदि रोगों की चिकित्सा का वर्णन है। व्रण, गण्डमाला, अश्मरी आदि की चिकित्सा के प्रसंग में अनेक स्थलों पर शल्यक्रिया का विधान भी किया गया है। २६वें अध्याय में संक्षेप से 'शालाक्य तन्त्र' समाहित कर दिया गया है, जिसमें नेत्र, कान, नाक, गला, मुख व सिर की चिकित्सा का वर्णन है। इसके उपरान्त २७वें अध्याय में 'अगद तन्त्र' का विषय समाविष्ट किया है, इसमें स्थावर एवं जंगम विष की चिकित्सा का निरूपण है। सर्पविष के अतिरिक्त वृश्चिक (बिच्छू), मूषिक (चूहा) अलर्क (पागल कुत्ता), विषैले कीट एवं लूता (मकड़ी) आदि के विष की चिकित्सा का भी विधान किया गया है। २८वें अध्याय में रसायन एवं वाजीकरण का निरूपण है। आयुर्वेद के इन दो अंगों का विवेचन करते हुए इस अध्याय में बहुत ही उत्तम एवं चयनित योगों का उल्लेख किया गया है।

२९वें अध्याय में कुमारतन्त्र अर्थात् कौमारभृत्य नामक अंग का वर्णन है। इस अध्याय में सन्तानोत्पत्ति में बाधक योनिरोगों की चिकित्सा के साथ

ही गर्भस्थापन, गर्भ का संरक्षण एवं पोषण, शिशु-पालन और शिशुरोगों की चिकित्सा का वर्णन है। इसमें विभिन्न शिशुरोगों की चिकित्सा के साथ 'भूतविद्या' नामक आयुर्वेद के अंग का विवेचन भी किया गया है, जिसके अन्तर्गत भूत, ग्रह इत्यादि नाम से प्रचलित नाना प्रकार के रोगजनक जीवाणु-विषाणुओं के निवारण हेतु उपाय निरूपित हैं।

इसके अनन्तर ३०वें अध्याय में 'पञ्चकर्म' का संक्षिप्त एवं सारगर्भित विवेचन किया गया है, जो कि आयुर्वेदीय चिकित्सा में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। ग्रन्थ के अन्त में ३१वां अध्याय 'कल्पाध्याय' नाम से बनाया गया है। प्राचीन संहिताओं का अनुसरण करते हुए इसमें लशुन कल्प, पिप्पली कल्प, हरीतकी कल्प आदि का विवेचन करते हुए आयुर्वेदीय चिकित्सा की एक विशिष्ट विधा का निरूपण किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत संस्करणानुसार १३१५ श्लोकों (अनुष्टुप् छन्दों) में आयुर्वेद के आठों अंगों को समाहित करते हुए तद्विषयक सारतत्त्व का गुम्फन किया है।

सिद्धसार-संहिता की श्लोकसंख्या-

ग्रन्थकार आचार्य ने इस संहिता के अन्त में इसके अध्याय एवं श्लोकों की संख्या स्वयं ही स्पष्ट रूप से बताई है-

एकत्रिंशदिमेऽध्याया निबद्धास्तन्त्रपद्धतौ।
अनुष्टुप्छन्दसा श्लोकत्रयोदशशतान्विता:।। (सिद्ध.सं.- ३१.३१)

अर्थात् तन्त्रपद्धति (शास्त्रीय शैली) में ये ३१ अध्याय बनाए हैं। जो १३०० श्लोकों से युक्त हैं। उपलब्ध प्रतिलिपियों के आधार पर तैयार किए गए प्रस्तुत संस्करण में १३१५ श्लोक हैं। सुदीर्घकाल से हस्तलिखित-परम्परा द्वारा चले आए ग्रन्थों में कुछ न्यूनाधिकता अथवा परिवर्त्तन-परिवर्द्धन की सम्भावना रहती है; अत: इससे बचने के लिए ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के

अन्त में स्वयं ही श्लोकसंख्या भी सूचित कर दी थी। सम्भवतः इसीलिए 'सिद्धसार-संहिता' में ऐसा कुछ परिवर्तन नगण्य ही रहा है। इस प्रकार हम आश्वस्त हैं कि 'सिद्धसार-संहिता' लगभग उसी रूप में सुरक्षित है, जिस रूप में इसे रचयिता ने बनाया था। वर्तमान संस्करण के १३१५ श्लोकों में सिद्धसार-निघण्टु के ९५ श्लोक जोड़ देने पर ग्रन्थ की सकल श्लोकसंख्या- १४१० बनती है।

सिद्धसार-संहिता के योगों की उत्कृष्टता-

'सिद्धसार-संहिता' में योगों (नुस्खों) का चयन बहुत ही उत्तम हुआ है। इसीलिए परवर्त्ती काल में वैद्य-समाज में इस ग्रन्थ के योगों का बहुत प्रचलन रहा है। इसके लिए यहां एक-दो उदाहरण देना प्रासंगिक होगा। कुष्ठ-चिकित्सा में आचार्य रविगुप्त ने निम्न योग प्रस्तुत किया है-

घर्मसेवी कदुष्णेन वारिणा वाकुचीं पिबेत्।
क्षीरभोजी त्रिसप्ताहात् कुष्ठरोगात् स मुच्यते।। (सिद्ध.१२.३४)

जो व्यक्ति तीन सप्ताह तक दुग्धाहार पर रहकर धूप का विशेष रूप से सेवन करता हुआ कदुष्ण (सुखोष्ण जल) के साथ बाकुची का पान करता है, वह कुष्ठ रोग से मुक्त हो जाता है। यह योग सिद्धसार-संहिता से 'चक्रदत्त' के कुष्ठचिकित्सा-प्रकरण (पद्य- ५५) में भी उद्धृत है। इस पर व्याख्याकार निश्चलकर कहते हैं- **'सहस्रशो दृष्टफलोऽयं योगः'** अर्थात् इस योग का फल हमने हजारों बार देखा है। नकसीर रोकने के लिए चार बहुत सरल एवं प्रभावकारी योग सिद्धसार-संहिता (७.२८) में इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं-

नस्यं दाडिमपुष्पोत्थो रसो दूर्वारसोऽथवा।
आम्रास्थिजः पलाण्डोर्वा नासिकास्रुतरक्तजित्।।

अर्थात् अनार के फूलों का रस अथवा दूर्वारस (दूब का रस) नस्य

के रूप में लेने से शीघ्र ही नकसीर रुक जाती है। इसी प्रकार आम की गुठली को पानी के साथ पीसकर नस्य लेने अथवा पलाण्डु (प्याज) के रस का नस्य लेने से भी नकसीर तुरन्त ही रुक जाती है। वैद्य लोग इस प्रकार के सरल किन्तु चमत्कारी योगों का प्रभाव अच्छी प्रकार से जानते हैं। 'सिद्धसार-संहिता' ऐसे सहज किन्तु चमत्कारी परम्परागत आयुर्वेदीय योगों का अद्‌भुत भण्डार है। इस ग्रन्थ का सम्यक् अभ्यास करने वाले वैद्य अवश्य ही चिकित्सा कर्म में सफल होकर यशोलाभ करते हैं। इस प्रकार वैद्यों के लिए यह ग्रन्थ संक्षिप्त, सुगम एवं सारपूर्ण होने से विशेष रूप से उपादेय है।

इसमें जहाँ-तहाँ छुटपुट योगों में मांस का उल्लेख मिलता है, उसे द्रव्यगुण-वर्णन की दृष्टि से देखना चाहिए, अपनाने के लिए नहीं। इस विषय में हमें अष्टांग-संग्रहकार वाग्भट का यह कथन सदा ध्यान में रखना चाहिए-

उपदिष्टे विचित्रेऽस्मिन् वक्तव्यार्थानुरोधत:।
कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्यं प्राणाबाधेऽपि नेतरत्।।

(अष्टांगसंग्रह, वाजीकरणविधि-४९.८८, अत्रिदेव-संस्करण, खण्ड- २, पृ.- ४३०)

अर्थात् वक्तव्य के अनुरोध से सिद्धान्त भर दिखाने के लिए भी कुछ योगों का उल्लेख आयुर्वेद में होता है, परन्तु उन्हें कदापि नहीं अपनाना चाहिए, प्रत्युत कर्त्तव्य एवं धर्म के अनुसार ही योगों को ग्रहण करना चाहिए। मृत्यु भले ही हो जाए, परन्तु हिंसात्मक एवं निर्दयतापूर्ण योगों को स्वीकार नहीं करना चाहिए।

सिद्धसार-निघण्टु-

प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्त में 'सिद्धसार-संहिता' में प्रयुक्त विशिष्ट ओषधियों के परिज्ञान हेतु आचार्य रविगुप्त ने पर्याय शब्दों का निर्देश करते हुए ९५ श्लोकों वाले 'सिद्धसार-निघण्टु' की रचना की है। आयुर्वेदीय-निघण्टु परम्परा में यह लघु रचना प्राचीनता एवं पर्याय-निर्देश शैली की दृष्टि से

बहुत दुर्लभ मानी जाती है। यह अति संक्षिप्त होते हुए भी विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि ओषधि-परिचय के बिना कोई भी वैद्य चिकित्सा-कर्म में सफल नहीं हो सकता, कहा भी है-

निघण्टुना विना वैद्यो विद्वान् व्याकरणं विना।
अनभ्यासेन धानुष्कस्त्रयो हास्यस्य भाजनम्।।

(राजनिघण्टु, ग्रन्थारम्भ-९)

अर्थात् निघण्टु (ओषधि-परिचय कोष) के बिना वैद्य, व्याकरण के बिना विद्वान् एवं अभ्यास के बिना धनुर्धर- ये तीनों उपहास के पात्र बनते हैं। अत: वैद्य के लिए निघण्टु-ज्ञान परमावश्यक है। इसीलिए अन्त में निघण्टु-भाग का समावेश करते हुए ग्रन्थकार ने प्रस्तुत रचना को सर्वांगपूर्ण बनाने का श्लाघनीय प्रयास किया है। इस प्रकार यह ग्रन्थ अपनी संक्षेपयुक्त विशिष्ट शैली एवं सारवत्ता के कारण आयुर्वेद-वाङ्मय के अति स्पृहणीय उज्ज्वल रत्न के रूप में मान्य रहा है। इसकी दिव्य प्रभा से चिरकाल तक परवर्ती ग्रन्थकार एवं वैद्यजन आलोकित होते रहे हैं।

ग्रन्थ का अन्वेषण एवं संशोधन-

आयुर्वेद के अनेक प्राचीन ग्रन्थों में 'सिद्धसार-संहिता' के बहुत से उद्धरण मिलते हैं। अनेक ग्रन्थकारों ने इसे प्रमाण रूप में उद्धृत किया है। आयुर्वेद के इतिहास-ग्रन्थों में भी 'सिद्धसार-संहिता' की चर्चा मिलती है, परन्तु अन्वेषण करने पर विदित हुआ कि भारत वर्ष में अभी तक इसका कोई प्रकाशन नहीं हुआ है। जर्मनी के **प्रो. आर. ई. इमेरिक** ने इस ग्रन्थ के अतिशय महत्त्व को ध्यान में रखते हुए नेपाल से प्राप्त इसके ताडपत्रीय हस्तलेखों के आधार पर रोमन लिपि (अंग्रेजी अक्षरों) में 'सिद्धसार-संहिता' के मूलपाठ का सम्पादन कर सन् १९८० ई. में प्रकाशित किया था। इस

जानकारी के मिलने पर हमने नेपाल में सुरक्षित इसके ताडपत्रीय हस्तलेख एवं जर्मनी में प्रकाशित रोमनलिपिबद्ध मूलपाठ वाला संस्करण मंगवाया। बहुत अन्वेषण करने पर भारतवर्ष में भी मद्रास विश्वविद्यालय के हस्त-लेखागार से 'सिद्धसार-संहिता' का एक कन्नड लिपि वाला ताडपत्रीय हस्तलेख हमें उपलब्ध हुआ है। इन सबके आधार पर सर्वप्रथम 'सिद्धसार-संहिता' के मूलपाठ का शोधित रूप तैयार किया गया; तदनन्तर जनसाधारण के उपयोगार्थ इसका सरल हिन्दी अनुवाद किया गया।

सम्पादन एवं अनुवाद में प्रयुक्त सहायक ग्रन्थ-

पाठशोधन एवं अर्थ के स्पष्टीकरण हेतु उन प्राचीन ग्रन्थों का सहयोग लिया गया है, जिनके आधार पर 'सिद्धसार-संहिता' रची गई थी। इनमें मुख्य हैं- 'सुश्रुत-संहिता', 'चरक-संहिता' व 'अष्टांगहृदय'।

इसके साथ ही अनेक अर्वाचीन ग्रन्थ भी सहायक सिद्ध हुए हैं, जिनमें 'सिद्धसार-संहिता' के बहुसंख्य उद्धरण उपलब्ध हैं। ये ग्रन्थ हैं- चन्द्रट-विरचित **'योगरत्न-समुच्चय'**[१], चक्रपाणिदत्त-विरचित **'चक्रदत्त'**, निश्चलकर-कृत **'चक्रदत्त-रत्नप्रभा'** एवं सोढल-रचित **'गदनिग्रह'**। आचार्य रविगुप्त की अति संक्षेपवती प्रतिपादन-शैली के कारण जहाँ कहीं अनुवाद करने में कुछ कठिनाई आई, वहां पूर्वोक्त आधारभूत प्राचीन ग्रन्थों एवं कुछ परवर्ती ग्रन्थों के सम्बन्धित प्रकरण देखने से अर्थ का स्पष्टीकरण हुआ। 'चक्रदत्त' में बहुत-से पद्य 'सिद्धसार-संहिता' से यथावत् लिए गए हैं। 'चक्रदत्त' की 'रत्नप्रभा' टीका में इसके रचयिता बहुश्रुत वैद्यराज निश्चलकर ने ऐसे स्थलों का स्पष्टतया उल्लेख किया है। चन्द्रट-रचित 'योगरत्नसमुच्चय' में भी 'सिद्धसार-संहिता' के बहुसंख्य पद्य मिलते हैं। सोढलकृत 'गदनिग्रह' में

१. **'योगरत्न-समुच्चय' (चन्द्रट-कृत)** का सम्पादन व प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ है। हमें इसके चार हस्तलेख मिले हैं, उनके आधार पर आयुर्वेद के इस अति महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का सम्पादन कार्य चल रहा है।

'सिद्धसार-संहिता' के बहुत-से श्लोक यथावत् मिलते हैं तथा कुछ थोड़े-से परिवर्तन के साथ मिलते हैं। इन सभी ग्रन्थों के सम्बद्ध स्थलों का अवलोकन करने से पाठ-सम्पादन एवं अनुवाद में विशेष सहयोग मिला है।

अर्वाचीन रचनाओं में केरल के बहुश्रुत वैद्यशिरोमणि अनन्तकुमार द्वारा रचित 'योगरत्नसमुच्चय' (तीन खण्डों में केरल से प्रकाशित) में भी 'सिद्धसार-संहिता' से शताधिक उद्धरण दिए गए हैं। ये भी प्रस्तुत कार्य में अतीव उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

'सिद्धसार-संहिता' का यह प्रामाणिक रूप में प्रकाशित प्रथम संस्करण व पहला हिन्दी अनुवाद है। अनुवाद यथासम्भव सरल रूप में किया गया है। संस्कृत के कठिन व अपरिचित शब्दों के अर्थ कोष्ठक में दिए गए हैं। जहाँ कहीं विशेष स्पष्टीकरण की आवश्यकता हुई, वहाँ टिप्पणियाँ भी दी गई हैं, जिससे विषय अधिकाधिक स्पष्ट हो सके। इस प्रकार सुसम्पादित रूप में हिन्दी अनुवाद के साथ 'सिद्धसार-संहिता' पहली बार प्रकाशित हो रही है। परमपिता परमेश्वर की असीम अनुकम्पा एवं आयुर्वेद-प्रणेता महर्षियों के शुभाशीर्वाद से यह प्राचीन ग्रन्थ अब सुन्दर सज्जा के साथ राष्ट्र की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। यह आयुर्वेद के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है, जो आयुर्वेद-जगत् के लिए निश्चय ही हर्ष का विषय है। इससे आयुर्वेद-वाङ्मय के शोधात्मक अनुशीलन में अवश्य ही एक नया आयाम जुड़ेगा।

परिशिष्ट भाग-

प्रस्तुत ग्रन्थ के परिशिष्ट भाग में **प्रथम परिशिष्ट** के अन्तर्गत सम्पादन में आधारभूत हस्तलिखित ग्रन्थ की प्रतिलिपियों का परिचय दिया गया है। इसमें एक प्रतिलिपि के कुछ आरम्भिक व अन्तिम पृष्ठों की प्रतिकृतियाँ भी प्रस्तुत की गई हैं। इसी के साथ अध्यायानुसार श्लोकसंख्या-विवरण भी दिया गया है। **द्वितीय परिशिष्ट** में सिद्धसार-संहिता के कुछ सुभाषित प्रस्तुत किए गए हैं। **तृतीय परिशिष्ट** 'आयुर्वेदीय शब्दावली' में शीर्षक से

ग्रन्थ में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दों का अर्थ सहित संग्रह किया गया है। इसके अनन्तर **चतुर्थ परिशिष्ट** में ग्रन्थोक्त 'मान' (माप-तौल) का विवरण देते हुए आधुनिक माप-तौल के साथ उसकी तुलना प्रस्तुत की गई है।

पञ्चम परिशिष्ट में 'सिद्धसार-निघण्टु' में वर्णित ओषधियों की नामानुक्रमणिका पर्याय सहित प्रस्तुत की गई है। **षष्ठ परिशिष्ट** में 'सिद्धसार-संहिता' के श्लोकों की अनुक्रमणिका दी गई है। **सप्तम परिशिष्ट** में 'सिद्धसार-निघण्टु' के श्लोकों की अनुक्रमणिका प्रस्तुत की है। **अष्टम परिशिष्ट** में उन सन्दर्भ- ग्रन्थों का विवरण दिया गया है, जिनके उद्धरण या सन्दर्भ भूमिका अथवा व्याख्या-भाग में प्रस्तुत किए गए हैं। इसी परिशिष्ट के अन्त में शब्दसंक्षेप-सूची भी दी है। इस प्रकार अनेक शोधोपयोगी विशिष्ट परिशिष्टों से विभूषित 'सिद्धसार-संहिता' का यह संस्करण उत्तम रूप में निष्पन्न हुआ है। आशा है यह ग्रन्थ आयुर्वेद के अध्येताओं, अध्यापकों एवं शोधार्थियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होगा। इस प्रयास से विस्मृति के गर्त्त में तिरोहित हुए आयुर्वेद के एक उज्ज्वल ग्रन्थरत्न का प्रकाश समाज को मिल सकेगा।
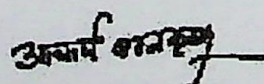
कृतज्ञता-ज्ञापन-

इस अवसर पर मैं **परम श्रद्धेय स्वामी रामदेव जी महाराज** के प्रति श्रद्धावनत हूँ, जिनके नेतृत्व में योग एवं आयुर्वेद के पुनरुद्धार एवं प्रचार-प्रसार का विराट उद्यम चल रहा है। योग एवं आयुर्वेद को जन-जन तक पहुँचाने हेतु चलाए जा रहे इस महाभियान के अंग के रूप में ही यह प्राचीन ग्रन्थोद्धार का उपक्रम भी चल रहा है। भारतीय अस्मिता एवं संस्कृति पर आघात करने वाली विदेशी शक्तियों को परास्त करने में विक्रमादित्य के समान पराक्रम करने वाले परम श्रद्धेय स्वामीजी महाराज के मार्गनिर्देशन, सत्प्रेरणा एवं शुभाशीर्वाद से यह प्रकल्प सफलता की ओर अग्रसर है, अतः मैं आपके चरणों में श्रद्धापूर्ण प्रणाम-पुष्पाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

इस अवसर पर **श्रीराष्ट्रिय अभिलेखागार' काठमाडौं (नेपाल)** के प्रति हम हार्दिक आभार व कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिसके सौजन्य एवं उदारतापूर्ण सहयोग से हस्तलिखित ताडपत्रीय प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुईं और यह सम्पादन कार्य उत्तम रूप में सम्पन्न हुआ। प्रस्तुत सम्पादन कार्य में स्वर्गीय **प्रो. आर. ई. इमेरिक** (जर्मनी) के रोमनलिपिबद्ध मूलपाठ-संस्करण का भी सहयोग लिया है। एतदर्थ हम उनके प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

अप्रकाशित प्राचीन दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थों के अनुवाद सहित सम्पादन व प्रकाशन का यह विशिष्ट उपक्रम बड़े उत्साह के साथ पतञ्जलि विश्वविद्यालय की ओर से चल रहा है। इसे मूर्त्तरूप देने में विशेष पुरुषार्थ व सहयोग के लिए वैदिक विद्वान् **प्रो. विजयपाल शास्त्री प्रचेता जी** व उनके सहयोगियों के लिए भूरिश: धन्यवाद।

ग्रन्थ के अनेक सन्दिग्ध व अस्पष्ट स्थलों के स्पष्टीकरण एवं अन्तिम संशोधन में मुम्बई-निवासी प्रसिद्ध वैद्य **श्री एस. डी. (सदानन्द दिगम्बर) कामत जी** ने विशेष सहयोग किया है। एतदर्थ हम श्री कामत जी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

'सिद्धसार-संहिता' की व्याख्या का यह प्रथम प्रयास है। इसे भी एक निश्चित समयावधि में प्रकाशित करने का लक्ष्य रखा गया था। अत: गम्भीर आशय वाले इस ग्रन्थ की व्याख्या में क्वचित् त्रुटियों का रहना सम्भव है। सदसद्विवेकी कृपालु विद्वज्जनों से अनुरोध है कि संशोधनीय स्थलों के दृष्टिगत होने पर अवश्य अवगत कराएं, जिससे आगामी संस्करण में परिष्कार किया जा सके।

आचार्य बालकृष्ण

(श्रावण शुदि ८), सं.- २०७१ वि. (आचार्य बालकृष्ण)

विषय-सूची

६. षष्ठ अध्याय- अतिसार, ग्रहणी, कृमि

सिद्धसार-संहिता के रचयिता

आचार्य रविगुप्त

'इति धन्वन्तरेर्वीक्ष्य मतमत्रिसुतस्य च'। (सिद्ध.- ३१.३०)

'एकत्रिंशदिमेऽध्याया निबद्धास्तन्त्रपद्धतौ'। (सिद्ध.- ३१.३१)

'धन्वन्तरि' एवं 'अत्रिसुत' (आत्रेय पुनर्वसु) के मत का सम्यक् अनुशीलन कर मैंने (रविगुप्त ने) आयुर्वेद-सागर में व्याप्त अगाध चिकित्साम्बु (चिकित्सा-ज्ञान) में से कुछ बिन्दु संगृहीत किए हैं- अर्थात् अति विस्तृत चिकित्सा-विषय को अल्प सामर्थ्य वाले जनों के लिए सुगम व संक्षिप्त शैली द्वारा ३१ अध्यायों में इस '**सिद्धसार-संहिता**' में निबद्ध किया है।

रविगुप्त-विरचिता

सिद्धसार-संहिता

प्रथम अध्याय

तन्त्र

(तन्त्र अर्थात् सूत्र रूप में आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त)

(मङ्गलाचरण)

सार्वं प्रणम्य सर्वज्ञं दुर्गगुप्तस्य सूनुना।
संहिता सिद्धसारेयं रविगुप्तेन वक्ष्यते।।१।।

सार्व- अर्थात् सर्वहितकारी एवं सर्वज्ञ (भगवान् बुद्ध) को प्रणाम कर 'दुर्गगुप्त' के पुत्र '**रविगुप्त**' द्वारा यह '**सिद्धसार-संहिता**' रची जा रही है।

बौद्ध-परम्परा में 'सार्व' एवं 'सर्वज्ञ' शब्दों से भगवान् बुद्ध को विशेषित किया जाता है। अमरकोष में 'सर्वज्ञ' शब्द बुद्ध के पर्यायवाची के रूप में उल्लिखित है- 'सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागतः' (अमर०-१.१३)। प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता आचार्य रविगुप्त बौद्ध थे, अतः उन्होंने ग्रन्थारम्भ में 'सार्व' एवं 'सर्वज्ञ' शब्दों से भगवान् बुद्ध का स्मरण करते हुए उन्हें प्रणाम किया है।

ग्रन्थ का प्रयोजन व अधिकारी

आयुर्वेदोदधिं तर्त्तुमशक्ता येऽल्पमेधसः।
तेषामियं प्रबोधाय विहिता तन्त्रपद्धतिः।।२।।

जो अल्प मेधा (ग्रहणशक्ति) वाले जन आयुर्वेद-सागर को पार करने में असमर्थ हैं, उनके प्रबोध हेतु यह संक्षिप्त तन्त्रपद्धति (शास्त्र की सरणि- अर्थात् पगडण्डी) बनाई है; क्योंकि संक्षिप्त व सुगम होने से अल्प सामर्थ्य वाले भी इसे सरलता-पूर्वक पार कर सकते हैं।

आयुर्वेद का प्रादुर्भाव व इसके आठ अंग

ब्रह्मा प्रोवाच यं स्वर्गे वेदमायुर्निबन्धनम्।
शिष्येभ्य: कथयामास काशिराजोऽपि तं क्रमात्।।३।।
तस्य त्वङ्गानि शालाक्य-कायभूतचिकित्सिते।
शल्यागद-वयोबालरक्षा-बीजविवर्धनम्।। ४।।

आयु (जीवन) को सुखी-स्वस्थ बनाने के लिए जिस वेद (आयुर्वेद) का प्रवचन ब्रह्मा जी ने स्वर्ग में किया था तथा जिसे परम्परा से प्राप्त कर काशिराज (धन्वन्तरि) ने अपने 'सुश्रुत' आदि शिष्यों को पढ़ाया था, उस आयुर्वेद के ये आठ अंग हैं-

१. शालाक्य- ऊर्ध्वजत्रु- अर्थात् गले के नीचे की हड्डी- हँसली से ऊपर वाले भाग के रोगों की चिकित्सा का वर्णन करने वाला आयुर्वेद का अंग। इसमें गला, नेत्र, नाक, कान, व सिर के रोगों की चिकित्सा का विधान है। इनमें शलाका-प्रवेश का भी उपयोग होता है। अत: इस अंग का नाम शालाक्य है।

२. काय-चिकित्सा- आयुर्वेद में काय शब्द अग्नि (जठराग्नि) के लिए भी प्रचलित है। इसकी विकृति से होने वाले ज्वर आदि रोगों की चिकित्सा काय-चिकित्सा नामक अंग के अन्तर्गत आती है।

३. भूत-चिकित्सा- रोगों को उत्पन्न करने वाले नानाविध जीवाणु-विषाणुओं को प्राचीनतम वैदिक भाषा में भूत, असुर, ग्रह आदि नामों से व्यवहृत किया गया है। इनसे होने वाले रोगों के प्रतिकार का वर्णन भूत-चिकित्सा नामक अंग के अन्तर्गत आता है। इसी में उन्माद आदि मानसिक रोगों की चिकित्सा भी वर्णित है।

४. शल्य (सर्जरी)- यह भी आयुर्वेद का एक प्रमुख अंग है, जो कि अति प्राचीन काल में बहुत उन्नत था। इसके अन्तर्गत शल्य-क्रिया से रोगों की चिकित्सा का विधान है।

५. अगद (विषतन्त्र)- आयुर्वेद के इस अंग में विभिन्न प्रकार के स्थावर (संखिया आदि) व जङ्गम (सर्पविष आदि) विषों की चिकित्सा का वर्णन है।

६. बालरक्षा (बाल-चिकित्सा/कौमारभृत्य)- आयुर्वेद के इस अंग के अन्तर्गत शिशु के उचित पालन-पोषण के वर्णन के साथ शिशुरोगों एवं प्रसूति-रोगों की चिकित्सा का विधान है। इसके लिए प्राचीन काल का अधिक प्रचलित शब्द '**कौमारभृत्य**' है, जिसका भाव है- कुमार का भरण-पोषण व उसमें बाधक रोगों का निराकरण करना।

७. वयोरक्षा (वयःस्थापन/रसायन तन्त्र- आयुर्वेद के इस अंग के अन्तर्गत जराव्याधि-निवारक एवं दीर्घायुष्य-कारक रसायन-चिकित्सा का वर्णन है, जिससे ढ़लती उम्र में भी व्यक्ति स्वस्थ, बलवान्, ऊर्जावान् एवं उत्साही बना रहता है।

८. बीजविवर्धन (शुक्रवृद्धि/वाजीकरण)- इसमें सन्तानोत्पत्ति-कारक बीज- अर्थात् शुक्र की पुष्टि, वृद्धि एवं शुद्धि का विधान है। इसके लिए आयुर्वेद में अधिक प्रचलित शब्द '**वाजीकरण**' है। वाज शब्द 'शुक्र' का वाचक है। 'अवाजी वाजी क्रियतेऽनेनेति वाजीकरणम्'- अर्थात् अवाजी (शुक्र रहित व्यक्ति) जिसके द्वारा वाजी (शुक्रसम्पन्न) सन्तानोत्पादन-समर्थ कर दिया जाए, वह चिकित्सा वाजीकरण कहलाती है।

उक्त आठ अंगों से युक्त होने के कारण ऋषियों द्वारा प्रणीत यह चिकित्सा शास्त्र 'अष्टाङ्ग आयुर्वेद' के रूप में प्रसिद्ध है।

रोगों के भेद

पुरुषो व्याध्यधिष्ठानं महाभूतगुणात्मकः।
शारीरा मानसागन्तु-सहजा व्याधयो मताः।।५।।
शारीरा ज्वरकुष्ठाद्याः क्रोधाद्या मानसाः स्मृताः।
आगन्तवो विघातोत्थाः सहजाः क्षुत्तृडादयः।।६।।

पञ्च महाभूतों से बना त्रिगुणमय पुरुष व्याधियों का अधिष्ठान (आधार) है। व्याधियाँ चार प्रकार की होती हैं- १. शारीर, २. मानस, ३. आगन्तु एवं ४. सहज। ज्वर, कुष्ठ आदि शारीरिक व्याधियाँ हैं; क्रोध आदि मानसिक व्याधियाँ हैं; विघात (चोट) आदि से होने वाली व्याधियाँ आगन्तु कहलाती हैं; भूख-प्यास आदि स्वाभाविक रूप से होने वाली सहज व्याधियाँ होती हैं।

काल का स्वरूप व विभाग

अनादिनिधनः कालो निमेषादिकलक्षणः।
विभागाः षट् समाख्याता ऋतवस्तस्य सन्ततम्।।७।।

निमेष (पल- अर्थात् पलक झपकने की अवधि) आदि लक्षण वाला काल अनादि व अनन्त है। उसके ऋतुओं के रूप में निरन्तर चलने वाले छह विभाग होते हैं।

प्रावृण्नभोनभस्यौ च इषोर्जौ च शरन्मतौ।
मार्गपोषौ च हेमन्तः शिशिरो माघफाल्गुनौ।।८।।
वसन्तश्चैत्रवैशाखौ निदाघः शुचिशुक्रभाक्।
त एते वर्षाशीतोष्णा रविवर्त्मवशात्त्रयः।।९।।

श्रावण व भाद्रपद मास में प्रावृट् (वर्षा) ऋतु होती है। आश्विन व कार्तिक में शरद् ऋतु होती है। मार्गशीर्ष व पौष में हेमन्त, माघ-फाल्गुन में शिशिर, चैत्र-वैशाख में वसन्त तथा ज्येष्ठ-आषाढ़ में ग्रीष्म ऋतु होती है। ये छहों विभाग सूर्य की गति के आधार पर स्थूलतया तीन रूप में भी जाने जाते हैं- वर्षाकाल, शीतकाल एवं उष्णकाल (गर्मी)। इनमें प्रत्येक काल चार-चार मास का होता है।

दोषों के सञ्चय व प्रकोप के काल

चयो वर्षाहिमोष्णेषु पित्तश्लेष्मनभस्वताम्।
कोपः शरद्वसन्ताम्बुवाहकालेषु कीर्त्तितः।।१०।।

सञ्चय काल- वर्षा काल (चौमासे) में पित्त का सञ्चय होता है, शीत काल

(हेमन्त-शिशिर) में कफ का सञ्चय होता है तथा उष्ण काल (वसन्त-ग्रीष्म) में वात का सञ्चय होता है।

प्रकोप काल- शरद् ऋतु में पित्त का प्रकोप होता है, वसन्त ऋतु में कफ का प्रकोप होता है एवं वर्षा ऋतु में वात का प्रकोप होता है।

अहोरात्र में दोषप्रकोप-काल

वायोः सायाह्नकाले तु जीर्णान्ते च विसर्पणम्।
पित्तस्याहर्निशस्यार्धे जीर्यमाणे च लक्षयेत्।।११।।
भुक्तमात्रे प्रदोषे च पूर्वाह्ने श्लेष्मणो भवेत्।
एवं द्वित्रिविभागेन दुष्टान् दोषान् विशोधयेत्।।१२।।

सायंकाल एवं भोजन पचने के उपरान्त वात का प्रकोप होता है। दिन व रात के मध्य भाग में तथा भोजन पचते समय पित्त का प्रकोप होता है। प्रदोष (रात्रि के आरम्भिक भाग) में, पूर्वाह्न (दिन के प्रारम्भिक भाग) में तथा भोजन करने के तुरन्त बाद कफ का प्रकोप होता है। इस प्रकार द्वित्रि-विभाग से दूषित (प्रकुपित) दोषों का यथासमय शोधन करना चाहिए। '**प्रारम्भो दोषायाः प्रदोषः**' दोषा- अर्थात् रात्रि के प्रारम्भिक भाग को 'प्रदोष' कहते हैं।

आरोग्य का लक्षण

दोषधातुमलाधारो देहिनो देह उच्यते।
तेषां समत्वमारोग्यं क्षयवृद्धी विपर्ययः।।१३।।

देहधारी व्यक्ति का देह (शरीर) ही वात आदि दोषों, रस-रक्त आदि धातुओं एवं मूत्र-पुरीष आदि मलों का आधार होता है। इन (दोष, धातु एवं मलों) का साम्यावस्था में रहना ही आरोग्य है तथा अतिक्षय या अतिवृद्धि होना अनारोग्य कहलाता है।

दोष, धातु, मल

रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राणि धातवः।
वातपित्तकफा दोषा विण्मूत्राद्या मला मताः।।१४।।

रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र- ये सात धातुएं होती हैं। ये शरीर को धारण किए रहती हैं- अर्थात् उसकी सत्ता बनाए रहती हैं; अत: 'धातु' कहलाती हैं। वात, पित्त व कफ- ये तीन दोष कहलाते हैं। ये असन्तुलित होने पर धातु व मलों को दूषित कर देते हैं; अत: दोष नाम से जाने जाते हैं। विट् (पुरीष), मूत्र व प्रस्वेद (पसीना) आदि मल होते हैं। इन्हें मल इसलिए कहते हैं, क्योंकि ये अधिक समय तक रहने से शरीर को मलिन कर देते हैं।

वात के गुण

वायुः शीतो लघुः सूक्ष्मः खरो रूक्षोऽस्थिरो बली।
प्राणापान-समानाख्योदान-व्यान-प्रभेदवान्।।१५।।

वायु (वात), शीत, लघु, सूक्ष्म, खर, रूक्ष, अस्थिर गुण वाला होता है। यह अन्य दोषों (पित्त व कफ) की अपेक्षा अधिक बलवान् होता है। वात-प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान नाम से पाँच प्रकार का होता है।

पित्त व कफ के गुण

पित्तमम्लं कटूष्णं च पक्त्योजोरागकारणम्।
मधुरो लवणः स्निग्धो गुरुः श्लेष्मातिपिच्छिलः।।१६।।

पित्त अम्ल, कटु व उष्ण होता है। यह पक्ति (भोजन के पाचन), ओज एवं राग (रस धातु को रञ्जित कर, उसे लाल बनाकर रक्त रूप में परिणत करने के गुण) का कारण होता है। कफ, मधुर, लवण, स्निग्ध एवं अति पिच्छिल (चिपचिपाहट युक्त) होता है।

दोषों के आश्रय-स्थान

गुदश्रोण्याश्रयो वायुः पित्तं पक्वाशयस्थितम्।
कफस्यामाशयः स्थानं कण्ठोरोमूर्धसन्धयः।।१७।।

वायु का आश्रय स्थान मुख्य रूप से गुदा व श्रोणी (कटि/कमर) होता

है। पित्त का आश्रय स्थान पक्वाशय होता है तथा कफ का आश्रय स्थान आमाशय, कण्ठ, छाती, मस्तिष्क एवं अंगों की सन्धियाँ होती हैं।

दोषों का शमन व शोधन

दोषस्थानगतं दोषं स्थानिवत् समुपाचरेत्।
आधिक्यं च परिच्छिद्य क्रिया कार्याविलम्बिता।।१८।।

किसी दोष के मुख्य स्थान में प्रविष्ट हुए अन्य दोष की चिकित्सा स्थानी (मूल स्थान वाले) दोष की चिकित्सा के समान ही करनी चाहिए। जैसे वात का स्थान वस्ति है, वहाँ पित्त प्रविष्ट हो जाए तो उसकी चिकित्सा वात के समान ही करनी चाहिए। यह आयुर्वेद का एक विशिष्ट सिद्धान्त है। जब दोषों की अधिकता या असन्तुलन का अनुभव हो तो बिना देर किए तुरन्त ही उन्हें सन्तुलित करने के लिए शोधन या शमन रूप क्रिया (चिकित्सा) करनी चाहिए। इसमें प्रमाद करना भयंकर व प्राणान्तक सिद्ध हो सकता है।

षड् रस

षड् रसा मधुराद्या ये सेवितास्ते विभागशः।
आरोग्यहेतवो नित्यमन्यथा तु विपर्ययः।।१९।।

मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त एवं कषाय- ये छह रस होते हैं। इनका उचित विभाग-पूर्वक सेवन करना आरोग्य का हेतु है। इसके विपरीत सेवन करने से ये अनारोग्य के हेतु बन जाते हैं।

षड् रस का त्रिदोष पर प्रभाव

कटुतिक्तकषायाश्च कोपयन्ति समीरणम्।
कट्वम्ललवणाः पित्तं स्वाद्वम्ललवणाः कफम्।।२०।।
एत एव विपर्यस्ताः शमायैषां प्रयोजिताः।
भवन्ति रोगिणां शान्त्यै स्वस्थानां सुखहेतवः।।२१।।

कटु, तिक्त एवं कषाय रस वात को कुपित करते हैं। कटु, अम्ल एवं लवण पित्त को तथा मधुर, अम्ल एवं लवण कफ को कुपित करते हैं।

ये रस विपर्यस्त (विपरीत) क्रम से प्रयोग में लाने पर उक्त दोषों का शमन करते हैं- अर्थात् मधुर, अम्ल व लवण वात का शमन करते हैं। मधुर, तिक्त व कषाय पित्त का शमन करते हैं एवं कटु, तिक्त व कषाय कफ का शमन करते हैं।

षड्रस-गुणवर्णन

चक्षुष्यो मधुरो ज्ञेयो रसो धातुविवर्धनः।
अम्लोऽनुलोमनो हृद्यः क्लेदी दीपनपाचनः।।२२।।

मधुर रस चक्षुष्य (नेत्रहितकारी) व धातु-विवर्धन (रस, रक्त आदि धातुओं को बढ़ाने वाला) होता है। अम्ल रस वात का अनुलोमन करने वाला, हृद्य, क्लेदी (आर्द्रता पैदा करने वाला) एवं दीपन-पाचन होता है।

शोधनः पाचनः क्लेदी लवणः शिथिलत्वकृत्।
स्थौल्यालस्यविषघ्नश्च कटुर्दीपनपाचनः।।२३।।

लवण रस शोधन, पाचन, क्लेदी व शिथिलता पैदा करने वाला होता है। कटु रस स्थौल्य (मोटापा), आलस्य एवं विष का निवारक तथा दीपन-पाचन होता है।

दीपनो ज्वरतृष्णाघ्नस्तिक्तः शोधनरोचनः।
पीडनो लेखन-स्तम्भी कषायो ग्राहि-रोपणः।।२४।।

तिक्त रस दीपन, ज्वर व तृष्णा का निवारक तथा शोधन एवं रोचन होता है। कषाय रस पीडन (खिंचाव पैदा कर व्रण आदि में पीड़ा बढ़ाने वाला), लेखन (मांस व मेद का कर्शन करने वाला- अर्थात् इन्हें कम कर शरीर को कृश बनाने वाला), स्तम्भन, ग्राही एवं रोपण (घाव भरने वाला) होता है।

द्रव्य, रस, वीर्य, विपाक

रसवीर्यविपाकानामाश्रयाद् द्रव्यमुत्तमम्।
उत्तरोत्तरसंश्लेषादितरेषां प्रधानता।।२५।।

रस, वीर्य, विपाक और द्रव्य- इनमें आश्रय रूप होने से द्रव्य ही सबसे उत्कृष्ट एवं मुख्य माना जाता है। इनमें पूर्व-पूर्व का उत्तरोत्तर से संसर्ग होने के कारण आगे वालों की प्रधानता होती है। भाव यह है कि रस से वीर्य, वीर्य से विपाक तथा विपाक से द्रव्य की प्रधानता होती है।

वीर्य का स्वरूप

रसपाकान्तरस्थायि द्रव्याधारव्यपाश्रयम्।
शीतोष्णलक्षणं वीर्यमथवा शक्तिरिष्यते।। २६।।

द्रव्य रूप आधार में स्थित तथा रस व विपाक के अन्दर रहने वाला, शीत एवं उष्ण लक्षण वाला तत्त्व वीर्य कहलाता है, अथवा यह कहना चाहिए कि द्रव्य की शक्ति ही वीर्य नाम से जानी जाती है। इसके द्विविध होने से प्रत्येक द्रव्य भी शीतवीर्य व उष्णवीर्य भेद से दो प्रकार का होता है।

विपाक

रसानां द्विविधः पाको मधुरः कटुरेव च।
गुरुराद्यस्तयोर्ज्ञेयो लघुत्वमितरस्य च।।२७।।

पहले छह रस बताए जा चुके हैं। इनका मधुर एवं कटु भेद से दो प्रकार का विपाक होता है। इन दोनों में पहला गुरु तथा दूसरा लघु होता है। इस प्रकार मधुर, अम्ल व लवण रस मधुर-विपाक होते हैं तथा कटु, तिक्त व कषाय रस कटु-विपाक होते हैं।

विपाक- भोजन के उपरान्त जठराग्नि के संयोग से पाचन-काल में आहार-द्रव्यों का जो रस परिणत होता है, उसे विपाक कहते हैं-

जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम्। रसस्य परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः।।

(अष्टांगहृदय, सूत्रस्थान- ९.२०)

चिकित्सा के चार अंग

भिषग्-भेषज-रोगार्त्त-परिचारकसम्पदः।
चिकित्साङ्गानि चत्वारि विपरीतान्यसिद्धये।।२८।।

भिषग् (वैद्य), भेषज (औषध), रोगार्त्त (रोग पीड़ित व्यक्ति) तथा परिचारक (रोगी की परिचर्या करने वाला व्यक्ति)- ये चार चिकित्सा के अंग माने जाते हैं। इन चारों अंगों के उत्तम होने पर चिकित्सा सफल होती है, अन्यथा विफल हो सकती है।

वैद्य एवं रोगी

भिषक् शास्त्रार्थकर्मज्ञो लघुहस्तः शुचिर्मतः।
द्रव्यायुःसत्त्वसम्पन्नः साध्यो रोगी सदात्मवान्।।२९।।

शास्त्र के अर्थ को जानने वाला एवं तदनुसार क्रिया करने में कुशल, सधे हुए हाथ वाला, शुचि (स्वच्छमना, कर्त्तव्यनिष्ठ व ईमानदार) वैद्य उत्तम माना जाता है। धन, आयु व उत्साह (मनोबल) से सम्पन्न एवं अपने ऊपर नियन्त्रण रखने वाला (संयमी) तथा रोग की साध्य अवस्था वाला रोगी उत्तम माना जाता है।

ओषधि एवं परिचारक

सुभूजं सुरसं श्रेष्ठं भेषजं कालसंहृतम्।
शुचिः स्निग्धोऽप्रमत्तश्च बलवान् परिचारकः।।३०।।

उत्तम भूमि में उत्पन्न, श्रेष्ठ रस से सम्पन्न व समय पर उखाड़ी गई ओषधि उत्तम मानी जाती है। शुचि (स्वच्छमना, कर्त्तव्यनिष्ठ व ईमानदार), स्निग्ध (रोगी के प्रति स्नेह रखने वाला), अप्रमादी- अर्थात् सदा जागरूक (चौकन्ना) रहने वाला, स्वस्थ एवं बलवान् परिचारक उत्तम माना जाता है।

चिकित्सापूर्व समीक्षा

देश-काल-वयो-वह्नि-सात्म्य-प्रकृति-भेषजम्।
देह-सत्त्व-बल-व्याधीन् दृष्ट्वा कर्म समारभेत्।।३१।।

चिकित्सक को चाहिए कि रोगी के देश, काल, अवस्था, वह्नि (पाचन-क्षमता), सात्म्य, प्रकृति, भेषज, देह, सत्त्व, बल एवं व्याधि की स्थिति को

देखकर चिकित्सा कर्म प्रारम्भ करे। देश आदि का स्वरूप आगे बताया जा रहा है।

त्रिविध देश एवं त्रिविध अवस्था

बहूदकनगोऽनूपः कफ-मारुत-रोगवान्।
जाङ्गलोऽल्पाम्बुशाखी च रक्तपित्तगदोत्तरः।।३२।।

उदक (जल) व नग (वृक्षों) की अधिकता वाला अनूप देश होता है। इसमें कफ एवं वात के रोग अधिक होते हैं। अल्प जल तथा अल्प वृक्षों वाला जाङ्गल देश कहलाता है। इसमें रक्तपित्त आदि रोग अधिक होते हैं।

संसृष्टलक्षणोपेतो देशः साधारणः स्मृतः।
वयोऽपि त्रिविधं ज्ञेयं बाल-मध्यम-वृद्धतः।।३३।।
आषोडशाद् भवेद् बालो यावत् क्षीरान्नवर्तनः।
मध्यमः सप्ततिं यावत् परतो वृद्ध उच्यते।।३४।।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के लक्षणों से युक्त स्थान साधारण देश कहलाता है। बाल, मध्यम एवं वृद्ध भेद से अवस्था तीन प्रकार की मानी जाती है।

१६ वर्ष तक बाल्यावस्था होती है, इसमें बालक प्रायः दुग्ध अथवा दुग्धबहुल अन्नाहार लेता है। इसके उपरान्त ७० वर्ष तक मध्यम अवस्था मानी जाती है तथा इसके आगे वृद्धावस्था होती है, जिसमें व्यक्ति वृद्ध कहलाता है।

कफपित्तानिलप्राया यथासंख्यमुदीरिताः।
क्षाराग्निरहिता मृद्वी बालप्रवयसोः क्रिया।।३५।।

बाल, मध्यम व वृद्ध क्रमशः कफबहुल, पित्तबहुल व वातबहुल होते हैं- अर्थात् बाल्यावस्था में कफ प्रबल होता है, मध्यमावस्था में पित्त तथा वृद्धावस्था में वात प्रबल होता है। इनमें बाल एवं वृद्ध की चिकित्सा में क्षार

व अग्नि जैसे तीक्ष्ण साधनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए; क्योंकि इनके प्रति कोमल उपचार क्रिया ही हितकर होती है।

देह, बल

कृशस्य बृंहणं कार्यं स्थूलदेहस्य कर्शनम्।
रक्षणं मध्यकायस्य देहभेदास्त्रयो मताः।।३६।।

देह तीन प्रकार का होता है- कृश, स्थूल एवं मध्यम। इनमें से कृशकाय व्यक्ति का बृंहण करना चाहिए, स्थूलकाय व्यक्ति का कर्शन करना चाहिए तथा मध्यमकाय व्यक्ति की अवस्था को यथावत् बनाए रखना चाहिए।

स्थूलो ह्यल्पबलः कश्चित् कृशश्च बलवान् भवेत्।
स्थैर्य-व्यायाम-सारत्वैर्बोद्धव्यं यत्नतो बलम्।।३७।।

कोई स्थूल व्यक्ति भी अल्पबल हो सकता है तथा कृश व्यक्ति भी बलवान् हो सकता है। अतः स्थैर्य (दृढ़ता), व्यायाम एवं सारता के आधार पर यत्नपूर्वक व्यक्ति के बल की परीक्षा करनी चाहिए।

सार- चरकसंहिता, विमान-स्थान, अध्याय-८ (अनुच्छेद- १०२-१४) में पुरुषों के बलाबल की परीक्षा हेतु आठ सार बताए हैं- १. त्वक्सार, २. रक्तसार, ३.मांससार, ४. मेदःसार, ५. अस्थिसार, ६. मज्जसार, ७. शुक्रसार एवं ८.सत्त्वसार।

सत्त्व

अविकारकरं सत्त्वं व्यसनाभ्युदयागमे।
अविषादी महोत्साहस्तद्योगात् सात्त्विको नरः।।३८।।

जो व्यसन (संकट) एवं अभ्युदय (उत्थान)- इन दोनों अवस्थाओं में समता बनाए रखता है- अर्थात् दैन्य या अभिमान आदि विकार को पैदा नहीं होने देता है, मन के उस गुण को सत्त्व कहते हैं। सत्त्व वाला व्यक्ति सात्त्विक होता है, वह सदा अविषादी (तनाव रहित) व उत्साहवान् बना रहता है।

सात्म्य

पानाहारादयो यस्य विरुद्धाः प्रकृतेरपि।
सुखत्वायोपकल्पन्ते तत् सात्म्यमिति गद्यते।।३९।।

जो खान-पान प्रकृतिविरुद्ध होने पर भी (निरन्तर अभ्यास से) व्यक्ति के लिए अनुकूल व सुखद बन जाते हैं, उन्हें 'सात्म्य' कहते हैं।

वातप्रकृति का लक्षण

कृशो रूक्षोऽल्पकेशश्च चलचित्तोऽनवस्थितः।
बहुवाग् व्योमगः स्वप्ने वातप्रकृतिको नरः।।४०।।

वात प्रकृति वाला मनुष्य कृशकाय, रूक्षतायुक्त, अल्पकेश (कम बालों वाला), चञ्चलचित्त, अस्थिर स्वभाव वाला व बहुत बोलने वाला होता है। वात प्रकृति वाले व्यक्ति को आकाश में उड़ने के सपने आते हैं।

पित्तप्रकृति का लक्षण

अकालपलितो गौरः प्रस्वेदी कोपनोऽबुधः।
स्वप्ने च दीप्तिमत्प्रेक्षी पित्तप्रकृतिरुच्यते।।४१।।

पित्त प्रकृति वाला व्यक्ति 'अकाल-पलित' होता है- अर्थात् इसके केश समय से पहले ही श्वेत हो जाते हैं। इसे पसीना अधिक आता है। यह स्वभाव में क्रोधी व अल्प समझ वाला होता है। पित्त प्रकृति वाले व्यक्ति को सपने में अग्नि या अग्नि से जलने के दृश्य दिखाई देते हैं।

कफप्रकृति का लक्षण

स्थिरचित्तः सुबद्धाङ्गः सुप्रजः स्निग्धमूर्धजः।
स्वप्ने जलसितालोची श्लेष्मप्रकृतिको नरः।।४२।।

कफ प्रकृति वाला मनुष्य स्थिरचित्त, अपेक्षाकृत शान्त, सुघटित (सुडौल) अंगों वाला, उत्तम सन्तान वाला, स्निग्ध (चिकने व कान्तिमान्) केशों वाला होता है। इसे सपने में जल के दृश्य, जल में तैरना आदि दिखाई

देते हैं। सपने में सित अर्थात् श्वेतवर्ण पदार्थों को अधिक देखता है।

मिश्रित प्रकृतियाँ

सम्मिश्रैर्लक्षणैर्ज्ञेया द्वि-त्रिदोषान्वया नराः।
दोषश्चेतरसद्भावेऽप्यधिकः प्रकृतिः स्मृतः।।४३।।

पूर्वनिर्दिष्ट तीन प्रकृतियों के अतिरिक्त दो-दो व तीनों दोषों के मिश्रित लक्षणों वाली प्रकृतियाँ भी मनुष्यों में दिखती हैं। ये प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं- १. वातपित्तप्रकृति, २. वातकफप्रकृति तथा ३. पित्तकफप्रकृति। तीनों दोषों की समता वाली- ४. समप्रकृति होती है। यह सबसे श्रेष्ठ मानी जाती है। इन चार के साथ पूर्वोक्त तीन प्रकृतियाँ जोड़ने से कुल सात प्रकार की प्रकृतियाँ बनती हैं। अन्य दोषों के रहते हुए भी जो दोष अधिक होता है, वही मनुष्य की प्रकृति के रूप में माना जाता है।

चतुर्विध जठराग्नि

मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः।
कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः।।४४।।
समस्य पालनं कार्यं विषमे वातनिग्रहः।
तीक्ष्णे पित्तप्रतीकारो मन्दे श्लेष्मविशोधनम्।।४५।।

जठराग्नि चार प्रकार की होती है- मन्द, तीक्ष्ण, विषम (कभी मन्द, कभी तीक्ष्ण) एवं सम। कफ की अधिकता से जठराग्नि मन्द रहती है, पित्त की अधिकता से यह तीक्ष्ण हो जाती है। अनिल- अर्थात् वात की अधिकता से जठराग्नि विषम हो जाती है। वात, पित्त, कफ- इन तीनों दोषों की समता से जठराग्नि भी सम रहती है। सम जठराग्नि ही उत्तम मानी जाती है।

सम जठराग्नि को बनाए रखना चाहिए। जठराग्नि के विषम होने पर वातनिग्रह (वातदोष का नियन्त्रण) करना चाहिए, तीक्ष्ण होने पर पित्त का प्रतिकार (शमन) करना चाहिए तथा मन्द होने पर श्लेष्मा (कफ) का विशोधन करना चाहिए।

अजीर्ण- सब रोगों का मूल

प्रभवः सर्वरोगाणामजीर्णं वह्निसादनम्।
आमाम्लरसविष्टब्धलक्षणं तच्चतुर्विधम्।।४६।।

अजीर्ण सब रोगों का उद्गम कारण होता है, क्योंकि यह जठराग्नि को नष्ट कर देता है। अजीर्ण के चार भेद होते हैं- आमाजीर्ण, अम्लाजीर्ण, रसाजीर्ण एवं विष्टब्धाजीर्ण।

आमाजीर्ण में कफ की अधिकता से अग्निमान्द्य रहता है। इसमें खाया हुआ अन्न 'आम' (अपक्व) रहता है, अतः इसका नाम 'आमाजीर्ण' है। विदग्धाजीर्ण में पित्त की अधिकता से अग्निमान्द्य रहता है। इसमें खाया हुआ अन्न अम्ल (एसिड) रूप में परिणत हो जाता है, अतः इसे 'विदग्धाजीर्ण' कहते हैं। 'विष्टब्धाजीर्ण' में वात की अधिकता से अग्निमान्द्य रहता है। इसमें खाया हुआ अन्न उदर में स्तम्भित होकर पड़ा रहता है तथा अपच बनी रहती है, अतः इसे विष्टब्धाजीर्ण कहते हैं। 'रसशेषाजीर्ण' में दूसरे आहार काल तक पूर्व भोजन का बिना पचा रस शेष रहता है तथा भोजन की इच्छा नहीं होती है।

आमाजीर्ण के उपद्रव तथा उनसे बचाव का उपाय

आमाद् विषूचिका-क्लेद-हृल्लासालसकादयः।
वचा-लवण-तोयेन च्छर्दनं तत्र कारयेत् ।।४७।।

आमाजीर्ण से विषूचिका (हैजा), क्लेद (चिपचिपाहट/नमी), हृल्लास (जी मिचलाना) व अलसक (गुम हैजा) आदि गम्भीर रोग हो जाते हैं। आमाजीर्ण होने पर वचा (बच) के चूर्ण व सैन्धव लवण मिले जल से वमन करवाना चाहिए। इससे आमाजीर्ण का निवारण हो जाता है।

अम्लाजीर्ण के उपद्रव तथा उनसे बचाव का उपाय

शुक्तोद्गारो भ्रमो मूर्छा तर्षोऽम्लात् सम्प्रवर्तते।
अवाक्त्वं तत्र शीताम्बुपानं वातनिषेवणम्।।४८।।

अम्लाजीर्ण में शुक्तोद्गार (खट्टी डकार), भ्रम, मूर्छा व तृषा (प्यास) विशेष रूप से होती है। अम्लाजीर्ण में अवाक्त्व (चुप रहना/मौन धारण करना) शीतल जल का पान एवं खुली हवा का सेवन करना चाहिए। इससे अम्लाजीर्ण शान्त हो जाता है।

रसाजीर्ण के उपद्रव और उनसे बचाव का उपाय

गात्रभङ्गो शिरोजाड्य-भक्तद्वेषादयो रसात्।
तस्मिन् स्वापो दिवा कार्यो लङ्घनं वातवर्जनम्।।४९।।

रसाजीर्ण में गात्रभङ्ग (अंगों में टूटन), शिरोजाड्य (शिर में जड़ता अर्थात्- सुन्नता), भक्तद्वेष (भोजन के प्रति प्रबल अनिच्छा) आदि उपद्रव होते हैं। रसाजीर्ण में उपवास करते हुए दिन में शयन करना चाहिए तथा निवात स्थान (जहाँ सीधी हवा न लगे, ऐसे स्थान) पर रहना चाहिए। ऐसा करने से रसाजीर्ण का निवारण हो जाता है।

विष्टब्धाजीर्ण के उपद्रव और उनसे बचाव का उपाय

शूलान्तर्ग्रन्थिविण्मूत्रसङ्गा विष्टब्धसूचनाः।
विधेयं स्वेदनं तत्र पानं च लवणोदकम्।।५०।।

विष्टब्धाजीर्ण में शूल, अन्तर्ग्रन्थि (गुल्म), मल-मूत्र का अवरोध आदि उपद्रव होते हैं। इसमें स्वेदन करना चाहिए- अर्थात् पसीना लेना चाहिए तथा सैन्धव लवण मिश्रित जल पीना चाहिए। इससे विष्टब्धाजीर्ण दूर हो जाता है।

अहिताशन से सब रोगों का उद्भव

अहिताशन-सम्पर्कात् सर्वरोगोद्भवो यतः।
तस्मात्तदहितं त्याज्यं न्याय्यं पथ्यनिषेवणम्।।५१।।

क्योंकि अहिताशन (अहितकर भोजन) करने से ही सब रोग पैदा होते हैं; अतः उसे छोड़ देना चाहिए तथा हितकर एवं मित भोजन करना चाहिए। ऐसा करने से व्यक्ति रोगों से बचा रहता है तथा चिकित्सा की नौबत ही नहीं आती है।

विरुद्ध आहार

एरण्डवह्नि-तत्तैलभृष्टौ बर्हिण-तित्तिरी।
गोधा: कपिञ्जलान् वापि नाद्यात्तुल्यघृतं मधु।।५२।।

संयोग-विरुद्ध आहार अपथ्य होने से सदा त्याज्य होता है। यहाँ इस प्रकार के विरुद्ध आहार का वर्णन किया जा रहा है- एरण्ड की लकड़ी की आग में भुने हुए अथवा एरण्ड के तेल में भर्जित (भुने) मोर या तीतर के मांस का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह प्राणान्तकर (जानलेवा) होता है। इसी प्रकार तैयार गोधा (गोह) व कपिञ्जल का मांस भी नहीं खाना चाहिए। सम मात्रा में मिलाए गए घृत एवं मधु का सेवन भी नहीं करना चाहिए।

दशरात्रस्थितं सर्पि: कांस्यपात्रे विवर्जयेत्।
उष्णाम्बुनानुपानं च माक्षिकस्य नभोऽम्भस:।।५३।।

काँसे के पात्र में दस दिन तक रखे हुए घृत का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए। मधु (शहद) के ऊपर उष्ण जल नहीं पीना चाहिए। इसी प्रकार मधु सेवन के उपरान्त वृष्टिजल (वर्षा का पानी) भी नहीं पीना चाहिए।

वाराहं पिशितं नाद्यान्मधुना मूलकं तथा।
बालाकं चापि मद्येन दध्ना च सह कुर्कुटान्।।५४।।

सूअर का मांस मधु के साथ नहीं खाना चाहिए। मधु के साथ कदापि मूली नहीं खानी चाहिए। बलाका (बगुली) का मांस कभी भी मद्य के साथ नहीं खाना चाहिए। दही के साथ कदापि कुक्कुट-मांस नहीं खाना चाहिए।

काकमाचीं गुडोपेतां मत्स्यानुपोदकान्वितान्।
शष्कुलीमारनालेन नाद्यान्मीनं गुडेन च।।५५।।

काकमाची (मकोय) को कभी भी गुड़ के साथ नहीं खाना चाहिए। मछलियाँ उपोदिका (पोई) शाक के साथ कभी नहीं खानी चाहिए। शष्कुली

(पूरी) को आरनाल (काञ्जी) के साथ कभी नहीं खाना चाहिए। मछली को गुड़ के साथ खाना भी घातक होता है।

शाकाम्लफल-पिण्याक-कुलत्थ-लवणैः सह।
करीर-दधि-मत्स्यैश्च प्रायः क्षीरं विरुध्यते।।५६।।

शाक, अम्लफल (खट्टे फल), पिण्याक (तिल आदि की खली), कुलत्थ (कुलथी), करीर (टींट), दही एवं मछली के साथ दूध का विरोध है। इनके साथ दूध का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए।

प्रियङ्गुकल्कदिग्धाङ्गः पायसं न समाचरेत्।
न जातु कटुतैलेन भृष्टानद्यात् कपोतकान्।।५७।।

प्रियङ्गु (कंगुनी) के कल्क से अङ्गों पर लेपन करने के उपरान्त व्यक्ति को पायस (खीर) का सेवन नहीं करना चाहिए। कटुतैल (सरसों के तेल) में भुने कपोत (कबूतर) के मांस को कभी नहीं खाना चाहिए, क्योंकि यह मारक होता है।

पिप्पलीर्मत्स्यतैलेन सुराकृशरपायसान्।
नाश्नीयादेकतो मीन-धानाः सर्पींष्युदश्विता।।५८।।

मछली के तेल के साथ पिप्पलियों का सेवन नहीं करना चाहिए। सुरा (मदिरा), कृशरा (खिचड़ी) एवं पायस (खीर)- इन तीनों को मिलाकर नहीं खाना चाहिए। मछली, धाना (भुने जौ) तथा घृत को छाछ के साथ भी नहीं खाना चाहिए।

विरुद्धाहार के दुष्परिणाम

विरुद्धरसवीर्याणि द्रव्याण्येवंविधानि यः।
भुङ्क्ते मोहात् स रोगार्त्तिं मृत्युं वा प्राप्नुयान्नरः।।५९।।

इस प्रकार के परस्पर विरुद्ध रस एवं विरुद्ध वीर्य वाले अन्य द्रव्यों को भी एक साथ नहीं खाना चाहिए। जो व्यक्ति मूढता के कारण पूर्वोक्त विरुद्ध द्रव्यों का एक साथ सेवन करता है, वह रोगजन्य नानाविध पीड़ा को प्राप्त करता है अथवा मर भी सकता है।

विरुद्धाहार-जन्य विकार के शमनोपाय

विरुद्धाशनजान् रोगान् विरेकच्छर्दनैर्जयेत्।
विरुद्धं न भवेत् सात्म्याद्दीप्ताग्नेर्बलशालिनः।।६०।।

पूर्वोक्त विरुद्धाहारजन्य रोगों को विरेक (विरेचन) एवं छर्दन (उल्टी) से दूर करना चाहिए। जो दीप्ताग्नि (प्रबल जठराग्नि वाले) तथा बलवान् व्यक्ति होते हैं, उनके द्वारा अभ्यास से सात्म्य बनाया हुआ विरुद्धाहार भी अधिक हानिकारक नहीं होता है।

।। इति तन्त्राध्यायः प्रथमः समाप्तः।।

द्वितीय अध्याय

द्रव्यगण

स्थिरादि गण

स्थिरा-पुनर्नवैरण्ड-झषर्भक-जीवकाः।
श्वदंष्ट्राभीरुलांगूली-विदारी-हंसपादिकाः।।१।।
बृहत्यौ वृश्चिकाली च द्वे सहे मर्कटी-सहाः।
शोष-गुल्मानिल-श्वास-कासपित्तहरो गणः।।२।।

सिद्धसार-संहिता के द्वितीय अध्याय में द्रव्यगण का वर्णन किया जा रहा है- स्थिरा (शालपर्णी), पुनर्नवा, एरण्ड, झषा (नागबला), ऋषभक, जीवक, श्वदंष्ट्रा (गोखरू), अभीरु (शतावरी), लांगूली (पृश्निपर्णी), विदारी, हंसपादिका, दोनों बृहती (छोटी व बड़ी कण्टकारी), वृश्चिकाली (बिच्छू घास), दोनों प्रकार की सहा (छोटी सहा=मुद्गपर्णी, बड़ी सहा=माषपर्णी), मर्कटी (केवांच), सहा (तीसरे प्रकार की सहा जो 'दण्डोत्पलक' नाम से भी जानी जाती है)- इन ओषधियों का यह गण शोष (क्षय रोग), गुल्म (वायु गोला), वातरोग, श्वास, कास एवं पित्त-विकारों को दूर करने वाला है।

न्यग्रोधादि गण

न्यग्रोधोदुम्बर-प्लक्ष-मधुकाश्वत्थतिन्दुकाः।
पियाल-बदरी-पार्थ-नन्दीवृक्षाम्र-वञ्जुलाः।।३।।
पलाशारुष्करश्वेतलोध्रजम्बूत्रयं गणः।
पित्तासृङ्मेहनुद् व्रण्यो दाहयोनिगदापहः।।४।।

न्यग्रोध (बड़), उदुम्बर (गूलर), प्लक्ष (पिलखन), मधुक (महुआ), अश्वत्थ (पीपल), तिन्दुक (तेन्दु), पियाल (चार/चिरौंजी), बदरी (बेर),

पार्थ (अर्जुन), नन्दीवृक्ष (बेलिया पीपल), आम्र, वञ्जुल (वेतस), पलाश (ढ़ाक), अरुष्कर (भल्लातक/भिलावा), श्वेत लोध्र, तीन प्रकार के जामुन- (महाजम्बू, स्वल्पफला जम्बू, जलजम्बू)- यह पित्तरक्त, प्रमेह, दाह एवं योनिरोग को दूर करने वाले एवं व्रण के लिए हितकर ओषधीय वृक्षों का गण है।

पिप्पल्यादि गण

पिप्पल्यग्नि-वचा-वत्स-कोल-ग्रन्थिक-मुस्तकाः।
विश्वैलातिविषा-कौन्ती-चव्योषण-यवानिकाः।।५।।
भार्गी-मूर्वा-महानिम्ब-फलाजाज्यः (स)सर्षपाः।
हिङ्गु तिक्ता विडङ्गं च वातश्लेष्महरो गणः।।६।।

पिप्पली (पीपल), अग्नि (चित्रक), वचा (बच), वत्स (टुण्टुक/श्योनाक), कोल (गजपिप्पली), ग्रन्थिक (पिप्पलीमूल), मुस्तक (मोथा), विश्वा (शुण्ठी), एला (छोटी इलायची), अतिविषा (अतीस), कौन्ती (रेणुकाबीज/निर्गुण्डीबीज), चव्य, ऊषण (कालीमिर्च), यवानी (अजवायन), हिङ्गु, तिक्ता- यह पिप्पल्यादि गण वातश्लेष्महर होता है।

एलादि गण

एला-वक्राम्बु-कौन्ती-त्वक्पत्रहेमास्र-चोरकाः।
चण्डायश्चलपुन्नाग-दारुगुच्छरसाः पुरम्।।७।।
सर्ज-शुक्ति-दधि-ध्याम-कुन्द-व्याघ्री-जटामयाः।
एलादिः पिडका-कण्डु-विषानिल-कफान्तकृत्।।८।।

एला (छोटी इलायची), वक्र (तगर), अम्बु (उदीच्य), कौन्ती (रेणुका), त्वक् (दालचीनी), पत्र (तेजपात), हेम (नागकेसर), अस्र (कुंकुम), चोरक (चोरपुष्पी), चण्डा, अयः (अगरु), चल (शिलारस), पुन्नाग (लाल नागकेसर), दारु (दारुहल्दी), गुच्छरसा, पुर (गुग्गुलु), सर्ज,

शुक्ति, दधि (श्रीवेष्टक), ध्याम (कत्तृण), कुन्द, व्याघ्री (छोटी कण्टकारी), जटा (जटामांसी), आमय (कूठ)- इन ओषधियों का यह एलादि गण पिडका, कण्डू, विष, वात एवं कफ का हरण करता है।

वरुणादि गण

वरुणार्त्तगलाभीरु-बिल्वजाविविषाणिकाः।
सैरीय-बृहतीयुग्म-दर्भ-पूतिक-शिग्रुकाः।।९।।
जयाग्निमन्थ-बिम्बाग्नि-नक्तमालाः समोरटाः।
वर्गोऽन्तर्विद्रधि-श्लेष्म-मेदो-गुल्म-शिरोऽर्त्तिनुत्।।१०।।

वरुण (वरणा), आर्त्तगला (नीलझिण्टी), अभीरु (शतावरी), बिल्व (बेल), अविविषाणिका (मेषशृंगी), सैरीय, बृहतीयुग्म (दोनों कण्टकारी- छोटी और बड़ी), दर्भ (डाभ), पूतिक, शिग्रुक (सहिजन), जया (जयन्ती), अग्निमन्थ (अरणी), बिम्ब (बिम्बी), अग्नि (चित्रक), नक्तमाल (करञ्ज), मोरट (मूर्वा)- इन ओषधियों का यह वरुणादि गण अन्तर्विद्रधि (शरीरान्तर्गत फोड़ा), श्लेष्म, मेद, गुल्म, शिरोऽर्त्ति (सिरदर्द) को दूर करता है।

आरग्वधादि गण

आरग्वधाग्नि-शार्ङ्गेष्टा-कण्टकी-निम्ब-पाटलाः।
मूर्वा-घोण्टामृता-राठ-पाठा-भूनिम्ब-कूलकाः।।११।।
करञ्जौ वत्स-सैरीय-सुषवी-सप्तपर्णकाः।
मेह-कुष्ठ-ज्वर-च्छर्दि-विष-श्लेष्महरो गणः।।१२।।

आरग्वध (अमलतास), अग्नि (चित्रक), शार्ङ्गेष्टा (काकजंघा/ काकतिक्ता), कण्टकी (कण्टकारी), निम्ब (नीम), पाटला, मूर्वा, घोण्टा (सुपारी/बदर), अमृता (गिलोय), राठ (मदनफल), पाठा (पापचेलिका), भूनिम्ब (चिरायता), कूलक (कड़वा परवल), करञ्जद्वय, वत्स (टुण्टुक), सैरीय (सहचर), सुषवी (करेला), सप्तपर्णक- इन ओषधियों का यह

आरग्वधादि गण प्रमेह, कुष्ठ, ज्वर, छर्दि, विष व श्लेष्मा (कफ) को दूर करता है।

लोध्रादि गण

लोध्रद्वय-प्लवाशोक-रम्भा-सालैलवालुकाः।
कदम्बो जिङ्गिनी चैव श्रीपर्णी सवसुस्रवाः।।१३।।
वर्गो लोध्रादिको नाम कफमेदोविशोषणः।
योनिदोषहरो व्रण्यः स्तम्भी सर्वविषापहः।।१४।।

लोध्रद्वय दोनों प्रकार के लोध्र एवं शाबर लोध्र (पट्टिका/पठानी लोध्र), प्लव (प्लक्ष), अशोक, रम्भा (केला), साल, एलवालुक (आलुवालु), कदम्ब, जिङ्गिनी (झिंगण), श्रीपर्णी (गम्भारी), वसुस्रवा (शल्लकी), यह लोध्रादि वर्ग कफ व मेद को सुखाने वाला, योनिदोषहर, व्रण्य (व्रण/घाव के लिए हितकर), स्तम्भन एवं सर्वविष-निवारक होता है।

अम्बष्ठादि गण

अम्बष्ठा-धातकी-लोध्र-समङ्गा-पद्मकेसरम्।
मधुकारलु-बिल्वं च पक्वातिसारहा गणः।।१५।।

अम्बष्ठा (पाठा), धातकी (धाय), लोध्र, समङ्गा (मञ्जिष्ठा), पद्मकेसर (कमलपुष्प का केसर), मधुक (महुआ), अरलु, बिल्व- इन ओषधियों का यह अम्बष्ठादि गण पक्वातिसारहर होता है।

आमलक्यादि गण

आमलक्यभया कृष्णा चित्रकश्चेत्ययं गणः।
सर्वज्वरकफातङ्कनोदी वृष्योऽतिदीपनः।।१६।।

आमलकी (आँवला), अभया (हरीतकी/हरड़), कृष्णा (पिप्पली), चित्रक- इन ओषधियों का यह आमलक्यादि गण सर्वज्वरहर, कफरोगों का नाशक, वृष्य एवं दीपन होता है।

त्रिफला के गुण

अक्षधात्र्यभया हन्ति त्रिफला विषमज्वरम्।
चक्षुष्या दीपनी मेहकुष्ठपित्तकफान्तकृत्।।१७।।

अक्ष (बहेड़ा), धात्री (आँवला) व अभया (हरड़) के मिश्रण से त्रिफला बनता है। यह विषम-ज्वर को नष्ट करता है तथा चक्षुष्य (नेत्रहितकारी) एवं दीपन होता है। त्रिफला प्रमेह, कुष्ठ, पित्तविकार व कफविकारों को नष्ट करता है।

बृहत्यादि गण

बृहती-धावनी-पाठा-यष्टीमधु-कलिङ्गकाः।
पाचनीयो बृहत्यादिः कृच्छ्रदोषत्रयापहः।।१८।।

बृहती (बड़ी कटेरी), धावनी (पृश्निपर्णी), पाठा (अम्बष्ठा), यष्टीमधु (मुलेठी), कलिङ्गक (इन्द्रयव)- यह बृहत्यादि गण पाचनीय, मूत्रकृच्छ्रहर एवं त्रिदोषहर होता है।

पटोलादि गण

पटोलं चन्दनं मूर्वा तिक्ता पाठामृता गणः।
पित्त-श्लेष्मारुचि-च्छर्दि-ज्वर-कण्डू-विषापहः।।१९।।

पटोल (परवल), चन्दन, मूर्वा, तिक्ता (कुटकी), पाठा (अम्बष्ठा) एवं अमृता (गिलोय)- इन ओषधियों का समूह पटोलादि गण कहलाता है। यह पित्त, कफ, अरुचि, छर्दि, ज्वर, कण्डू (खुजली) एवं विष का निवारण करता है।

गुडूच्यादि गण

गुडूची निम्बधान्याकमधुकं चन्दनान्वितम्।
तृष्णादाहारुचि-च्छर्दि-सर्वज्वरहरो गणः।।२०।।

गुडूची (गिलोय), निम्ब (नीम), धान्याक (धनिया), मधुक (मुलेठी)

व चन्दन- इन ओषधियों का समूह गुडूच्यादि गण कहलाता है। यह तृष्णा, अरुचि, छर्दि एवं सर्वविध ज्वर को नष्ट करता है।

काकोल्यादि गण (अतिबृंहण)

काकोल्यौ मधुकं शृङ्गी मेदे जीवक-ऋषभकौ।
प्रपौण्डरीक-मृद्वीका-ऋद्धि-वृद्धि-तुकाः सहे।।२१।।
पयस्या पद्मकं छिन्नेत्येष वर्गोऽतिबृंहणः।
स्तन्यश्च जीवनो वृष्यः पित्तस्रानिलनाशनः।।२२।।

काकोली एवं क्षीरकाकोली, मधुक (मुलेठी), शृङ्गी (कर्कटशृङ्गी), मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, प्रपौण्डरीक, मृद्वीका (मुनक्का), ऋद्धि, वृद्धि, तुका (वंशलोचन), सहा (मुद्गपर्णी), पयस्या (विदारीकन्द), पद्मक (पद्माख) एवं छिन्ना (गिलोय)- इन ओषधियों का समूह काकोल्यादि गण कहलाता है। यह अत्यन्त बृंहण, स्तन्य, जीवनीय, वृष्य, पित्तास्रहर व वातहर होता है। इस गण में अष्टवर्ग की सभी ओषधियाँ सम्मिलित हैं।

शारिवादि गण

शारिवा-पद्मकोशीर-मधूकं-चन्दनद्वयम्।
काश्मर्यं मधुकं चेति शारवादिरयं गणः।।२३।।
रक्तपित्तं निहन्त्याशु तृष्णां चातिप्रमाथिनीम्।
तीव्रपित्त-ज्वर-च्छर्दि-महादाह-विनाशनः।।२४।।

शारिवा (अनन्तमूल), पद्मक (पद्माख), उशीर (खस), मधूक (महुआ), चन्दनद्वय (श्वेत चन्दन व लाल चन्दन), काश्मर्य (काश्मरी फल/गम्भारी), मधुक (मुलेठी)- इन ओषधियों का समूह शारिवादि गण कहलाता है। यह शीघ्र ही रक्तपित्त को नष्ट कर देता है तथा प्रबल प्यास को भी शान्त करता है। यह तीव्र पित्तज्वर, छर्दि एवं तीव्र दाह का भी निवारण करता है।

अञ्जनादि गण

अञ्जन-तार्क्षज-श्यामा-नागपङ्कज-केसरम्।
मधुकं चेत्ययं वर्गः पित्तासृग्विषदाहनुत्।।२५।।

अञ्जन, तार्क्षज, श्यामा (त्रिवृत्/निशोथ), नागपङ्कज-केसर (नागकेसर एवं कमलकेसर) तथा मधुक (मुलेठी)- इस अञ्जनादि गण कहते हैं। यह पित्तरक्त, विष एवं दाह को शान्त करता है।'

वचादि गण एवं हरिद्रादि गण

वचा-मुस्ताभया-दारु-नागरातिविषा गणः।
हरिद्रा-कलशी-दारुनिशा-मधुक-वत्सकाः।।२६।।
एतौ वचा-हरिद्रादिगणौ दोष-विपाचनौ।
आमातिसारशमनौ स्तन्यदोष-विशोधनौ।।२७।।

वचा (बच), मुस्ता (मोथा), अभया (हरड़), दारु (देवदारु), नागर (सोंठ) एवं अतिविषा (अतीस)- यह वचादि गण है। हरिद्रा (हल्दी), कलशी (पृश्निपर्णी), दारुनिशा (दारुहल्दी), मधुक (मुलेठी) एवं वत्सक (कुटज)- यह हरिद्रादि गण है। ये दोनों गण (वचादि गण और हरिद्रादि गण) दोषों का पाचन करने वाले, आमातिसार का शमन करने वाले एवं स्तन्यदोष का निवारण करने वाले हैं।

ऊषादि गण

ऊष-सैन्धव-काशीसद्वय-हिङ्गु-शिलाजतु।
तुत्थकं चेति मेदोघ्नः शर्कराश्मरिनुद् गणः।।२८।।

ऊष (क्षारमृत्तिका), सैन्धव, दोनों काशीस (काशीस एवं पुष्पकाशीस), हिङ्गु (हींग), शिलाजतु (शिलाजीत) एवं तुत्थक (तूतिया)- इसे ऊषादि गण कहते है। यह मेदोघ्न (चर्बी कम करने वाला) तथा शर्करा एवं अश्मरी (पथरी) को दूर करता है।

वीरवृक्षादि गण

वीरवृक्षोऽग्निमन्थश्च काशवृक्षादनीकुशाः।
मोरण्टेन्दीवरी-सूर्यभक्ता-टुण्टुक-गोक्षुराः।।२९।।
वसुको वशिरो दर्भः सैरीयावश्मभेदकः।
अश्मरी-शर्करा-कृच्छ्र-मारुतार्त्तिहरो गणः।।३०।।

वीरवृक्ष (वीरतरु/वेल्लन्तर), अग्निमन्थ (अरणी), काश, वृक्षादनी (बांदा), कुशा, मोरण्ट, इन्दीवरी (नीलकमल), सूर्यभक्ता (हुरहुर), टुण्टुक (श्योनाक), गोक्षुर (गोखरू), वसुक, वशिर, दर्भ (डाभ), दोनों सैरीय (रक्त तथा पीत) एवं अश्मभेदक (पाषाणभेद)- इसे वीरवृक्षादि गण कहते हैं। यह अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र एवं वातरोगों को नष्ट करने वाला है।

मुष्ककादि गण

मुष्कक-त्रिफला-राठवृक्षकाग्नि-स्नुही-धवाः।
पलाश-शिंशपा-वर्गो मेदोऽर्शोऽश्मरिमेहहा।। ३१।।

मुष्कक (मोखा), त्रिफला, राठवृक्ष (मदनफल), अग्नि (चित्रक) स्नुही (थूहर), धव (धौरा), पलाश (ढाक), शिंशपा (शीशम)- इसे मुष्ककादि गण कहते हैं। यह मेद, अर्श, अश्मरी (पथरी) एवं प्रमेह का नाश करता है।

सालादि गण

साल-स्यन्दन-कालीय-धव-सर्जार्जुनासनाः।
शिरीष-शिंशपा-भूर्ज-खदिराश्चन्दनद्वयम्।।३२।।
कदरो वाजिकर्णश्च करञ्जः खपुरोऽगुरुः।
वर्गोऽयं कफपाण्डुत्व-कुष्ठमेहविनाशनः।।३३।।

साल, स्यन्दन (तिनिश), कालीय (पीत चन्दन), धव (धौरा), सर्ज, अर्जुन, असन, शिरीष, शिंशपा (शीशम), भूर्ज, खदिर (खैर), दोनों प्रकार के चन्दन (श्वेत चन्दन, लाल चन्दन), कदर (खदिर का भेद), वाजिकर्ण

(अश्वकर्ण), करञ्ज, खपुर (शल्लकी), अगुरु- इसे सालादि वर्ग/गण कहते हैं। यह कफ, पाण्डु, कुष्ठ एवं प्रमेह का नाश करने वाला होता है। यह गण सुश्रुतसंहिता (सूत्रस्थान-३८.८-९) में सालसारादिगण के रूप में निर्दिष्ट किया गया है।

उत्पलादि गण

उत्पलं कुमुदं पद्मं कह्लारं लोहितोत्पलम्।
मधुकं चेति पित्तासृक्तृड्-विषच्छर्दिहा गणः।।३४।।

उत्पल (नीलकमल), कुमुद, पद्म (पद्माख), कह्लार (कमल विशेष), लोहितोत्पल (लाल कमल), मधुक (मुलेठी)- इसे उत्पलादि गण कहते हैं। यह पित्त, तृषा, विष एवं छर्दि को दूर करने वाला होता है।

त्रपु आदि गण

त्रपुस्ताम्रमयः सीसं हेम रूप्यं च तन्मलाः।
वर्गस्तु गुल्म-हृद्रोग-पाण्डु-मेह-गरापहः।।३५।।

त्रपु (रांगा), ताम्र (ताँबा), अयस् (लोहा), सीसा, हेम (सोना), रूप्य (चाँदी) तथा इन धातुओं के मल- यह त्रपु आदि वर्ग गुल्म, हृदयरोग, पाण्डु, प्रमेह एवं विष को दूर करने वाला है।

सुरसादि गण

सुरसौ कासमर्दश्च फणिज्झार्जकभूस्तृणम्।
निर्गुण्डीसुरसीफञ्जीकुलाहलसुगन्धिकाः।।३६।।
क्षवकः कालमालश्च विषमुष्टिः प्रचीबलः।
विडङ्गं काकमाची च मरुवो मूषिकर्णिका।।३७।।
श्रीपर्णी चेति वर्गोऽयं कृमिश्लेष्मविनाशनः।
कासारुचि-प्रतिश्याय-श्वासहा व्रणशोधनः।।३८।।

दोनों प्रकार के सुरस (कृष्ण तुलसी व श्वेत तुलसी), कासमर्द

(कसौंदी), फणिज्झ, अर्जक, भूस्तृण, निर्गुण्डी, सुरसी (बिल्वपर्णी), फंजी (भार्गी), कुलाहल, सुगन्धिक, क्षवक, कालमाल, विषमुष्टि, प्रचीबल (काकजंघा), विडङ्ग, काकमाची, मरुव (मरुआ), मूषिकर्णिका (मूसाकानी), श्रीपर्णी (गम्भारी)-यह सुरसादि वर्ग कृमि-श्लेष्मनाशक है और कास, अरुचि, प्रतिश्याय एवं श्वास रोग को दूर करता है। यह वर्ग व्रणशोधन भी है।

परुषादि गण

परुषो दाडिमं द्राक्षा काश्मरी शाकजं फलम्।
राजादनं सधात्रीकं कतकेन समन्वितम्।।३९।।
परूषकादिको नाम्ना गणोऽयं वातनिग्रहः।
हृद्यो रुचिप्रदस्तृष्णा-मूत्रदोषविनाशनः।।४०।।

परुष (फालसा), दाडिम (अनार), द्राक्षा (अंगूर), काश्मरी (गम्भारी), शाकज फल (सागौन का फल), राजादन (खिरनी), धात्री (आँवला) एवं कतक (निर्मली)- इसे परुषादिगण कहते हैं। यह वातनाशक हृद्य रुचिप्रद तृष्णाहर एवं मूत्रदोष-नाशक होता है।

मुस्तादि गण

मुस्ता पाठा हरिद्रे द्वे तिक्ता हेमवती वचा।
द्रामिड्यतिविषा-कुष्ठ-भल्लातक-फलत्रयम्।।४१।।
शार्ङ्गेष्टा चेति वर्गोऽयं कफरोगनिषूदनः।
शोधनः पाचनः स्तन्यो योनिदोषहरो मतः।।४२।।

मुस्ता, पाठा, दोनों प्रकार की हरिद्रा, दोनों प्रकार की तिक्ता, हेमवती (वचा का भेद), वचा (बच), द्रामिडी/द्राविडी (एला/छोटी इलायची), अतिविषा (अतीस), कुष्ठ (कूठ), भल्लातक (भिलावा), त्रिफला, एवं शार्ङ्गेष्टा- इसे मुस्तादि वर्ग/गण कहते हैं। यह कफरोग-नाशक, शोधन, पाचन, स्तन्य एवं योनिदोषहर माना जाता है।

श्यामादि गण

श्यामा दन्ती द्रवन्ती स्नुग् महाश्यामामृता त्रिवृत्।
सप्तला शङ्खिनी श्वेता राजवृक्षः सबिल्वकः।।४३।।
कम्पिल्लकः करञ्जश्च हेमक्षीरीत्ययं गणः।
उदावर्त्तोदरानाह-विष-गुल्म-विनाशनः।।४४।।

श्यामा (काली निशोथ), दन्ती, द्रवन्ती, स्नुग् (थूहर), महाश्यामा (बड़ी निशोथ), अमृता (गिलोय), त्रिवृत् (निशोथ), सप्तला, शंखिनी, श्वेता (गिरिकर्णिका), राजवृक्ष, बिल्व, कम्पिल्लक (कबीला), करञ्ज एवं हेमक्षीरी (स्वर्णक्षीरी)- इसे श्यामादि गण कहते हैं। यह उदावर्त्त, आनाह, विष एवं गुल्म को नष्ट करने वाला होता है।

बिल्वादि गण (महापञ्चमूल)

बिल्वाग्निमन्थ-टुण्टूक-श्रीपर्णी-पाटला महत्।
दीपनं कफवातघ्नं पञ्चमूलमिदं स्मृतम्।।४५।।

बिल्व, अग्निमन्थ (अरणी), टुण्टुक (श्योनाक), श्रीपर्णी (गम्भारी), पाटला- यह महापञ्चमूल कहा जाता है। यह दीपन एवं कफवातघ्न होता है।

पृष्टपर्ण्यादि गण (लघु पञ्चमूल)

पृष्टपर्णी-स्थिरैरण्ड-बृहतीद्वय-संयुतम्।
बृंहणं वातपित्तघ्नं पञ्चमूलं कनिष्ठकम्।।४६।।

पृष्टपर्णी, स्थिरा, एरण्ड, दोनों बृहती (छोटी और बड़ी)- यह पृष्टपर्ण्यादि गण लघु पञ्चमूल के रूप में प्रसिद्ध है। यह बृंहण एवं वातपित्तघ्न होता है।

विदार्यादि गण (वल्लिज पञ्चमूल)

विदारी शारिवा छागशृङ्गी वत्सादनी निशा।
कृच्छ्रपित्तानिलान् हन्याद् वल्लिजं मूलपञ्चकम्।।४७।।

विदारी, शारिवा, छागशृङ्गी (अजशृङ्गी), वत्सादनी (गिलोय), निशा (हल्दी)- यह विदार्यादि गण वल्लिज (लता जैसे पौधों वाला) पञ्चमूल के

रूप में प्रसिद्ध है। यह मूत्रकृच्छ्र, पित्त एवं वातरोगों को नष्ट करने वाला कहा गया है।

गृध्रादि गण (कण्टकी पञ्चमूल)

गृध्रा हली श्वदंष्ट्रा च सैरीयः करमर्दिका।
एतच्छ्लेष्मानिलौ हन्ति कण्टकं मूलपञ्चकम्।।४८।।

गृध्रा (गृध्रनखी), हली (लाङ्गली), श्वदंष्ट्रा (गोखरू), सैरीय, एवं करमर्दिका (करौंदा)- यह गृध्रादि गण कण्टकी अर्थात्- काँटों वाले पञ्चमूल के रूप में प्रसिद्ध है। यह कफवात-नाशक होता है।

प्रस्तुत पद्य के अन्तर्गत कण्टकी पञ्चमूल में **'हली'** (लाङ्गली) का पाठ उचित नहीं है। इसके स्थान पर **'वरी'** (शतावरी) पाठ होना चाहिए; क्योंकि सुश्रुतसंहिता (सूत्रस्थान-३८.७३) में शतावरी का निर्देश है तथा यह कण्टकयुक्त भी होती है।

कुशादि गण (तृणपञ्चमूल)

कुश-काश-द्वयं दर्भो नडश्चेति तृणोद्भवम्।
पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं वस्तिविशोधनम्।।४९।।

कुश, दोनों प्रकार के काश, दर्भ (डाभ) एवं नड/नल- यह कुशादि गण 'तृण-पञ्चमूल' के रूप में प्रसिद्ध है। यह पित्त तथा मूत्रकृच्छ्र को दूर करने वाला एवं वस्ति-विशोधन होता है।

द्रव्यगणों के चिकित्सकीय उपयोग

एतैस्तैलानि सर्पींषि प्रलेपान् पानकान्यपि।
गणैर्विभज्य कुर्वीत यथाविधि भिषग्वरः।।५०।।

इन पूर्व निर्दिष्ट गणों से तेल, घृत, प्रलेपन एवं पानक आदि का यथाविधि निर्माण करना चाहिए।

स्नेहसिद्धि में क्वाथ आदि का परिमाण

क्वाथ्याच्चतुर्गुणं वारि पादस्थं स्याच्चतुर्गुणम्।
स्नेहात् स्नेहसमं क्षीरं कल्कश्च स्नेहपादिकः।।५१।।

आयुर्वेदीय पद्धति में विशिष्ट ओषधियों के साथ सिद्ध (पक्व) तैल एवं घृत आदि स्नेह का चिकित्सकीय प्रयोग होता है। इन स्नेहों को सिद्ध करने में स्नेह-द्रव्य के साथ क्वाथ, दूध एवं निर्धारित ओषधियों का कल्क मिलाया जाता है। मिलाए जाने वाले इन द्रव्यों की कितनी मात्रा होनी चाहिए, यह इस श्लोक द्वारा बताया जा रहा है-

स्नेह-द्रव्य से चार गुणा क्वाथ मिलाना चाहिए। स्नेह-द्रव्य के समान मात्रा में दूध मिलाना चाहिए तथा स्नेह-द्रव्य से चतुर्थांश मात्रा में कल्क मिलाना चाहिए। जो क्वाथ चार गुणा मिलाना होता है, उसे बनाने की विधि इस प्रकार है- क्वाथ्य अर्थात् जिस द्रव्य का क्वाथ बनाना हो, उससे चार गुणा जल डालकर उसे उबाल लें। चतुर्थांश शेष रहने पर क्वाथ बनता है। इसी क्वाथ को स्नेह-द्रव्य से चार गुणा मात्रा में लेना चाहिए।

औषधसिद्ध त्रिविध स्नेहपाक- सम, खर, मृदु

संवर्तितौषधपाको वस्तौ पाने भवेत् समः।
खरोऽभ्यङ्गे मृदुर्नस्ये सामान्येयं प्रकल्पना।।५२।।

वस्ति एवं पान में स्नेह का सम पाक (मध्यम पाक) होना चाहिए। अभ्यंग (मालिश) में खर एवं नस्य में मृदु पाक होना चाहिए। यह सामान्यतया तैल आदि की प्रकल्पना (निर्माण-विधि) है।

।। इति द्रव्यगणाध्यायो द्वितीयः समाप्तः।।

तृतीय अध्याय

अन्नपान-विधि

अन्नपान-विषयक ज्ञान की उपादेयता

अन्नपानादृते नान्यद् वर्तनं जगतो ह्यतः।
हिताहित-परिच्छित्त्यै विधिस्तस्य निगद्यते।।१।।

अन्नपान के अतिरिक्त जगत् का जीवन-साधन अन्य कुछ नहीं है। जिस अन्नपान पर जीवन निर्भर है, उसके हिताहित स्वरूप की जानकारी परमावश्यक है। एतदर्थ यहाँ अन्नपान-विधि का वर्णन किया जा रहा है।

शूकधान्य

रक्तशलिर्महाशालिः कलमाः शालिजातयः।
मधुराः शुक्रलाः स्निग्धाः स्वल्पमारुतवर्चसः।।२।।

रक्तशालि, महाशालि, कलम- ये शालि की मुख्य प्रजातियाँ हैं। ये शालि मधुर, शुक्रल, स्निग्ध तथा अल्प मात्रा में वातकारक एवं अल्पमल-कारक होते हैं।

रक्तशालिस्त्रिदोषघ्नस्तृष्णामेदोनिवारणः।
महाशालिः परं वृष्यः कलमः श्लेष्मपित्तहा।।३।।

रक्तशालि (लाल चावल) त्रिदोषघ्न, तृष्णाहर एवं मेदोनिवारक (चर्बी कम करने वाला) होता है। **महाशालि** परम वृष्य होता है तथा **कलम** नामक शालि कफपित्तहर होता है।

शीतोऽगुरुस्त्रिदोषघ्नो मधुरो गौरषष्टिकः।
किञ्चिद्धीनोऽसितस्मादवरो रसपाकतः।।४।।

गौर षष्टिक शीतल, लघु, त्रिदोषघ्न व मधुर होता है। **कृष्ण षष्टिक** उससे कुछ न्यून गुण वाला तथा रस एवं विपाक में अवर (हीन) होता है।

श्यामाकः शोषणो रूक्षो वातलः श्लेष्मपित्तहा।
तद्वत् प्रियङ्गु-नीवार-कोरदूषाः प्रकीर्त्तिताः।।५।।

श्यामाक नामक तृणधान्य शोषण (शरीर को सुखाने वाला, कृश करने वाला), रूक्ष, वातल एवं कफपित्तहर होता है। **प्रियङ्गु, नीवार** व **कोरदूष** नामक तृणधान्य भी इसी प्रकार के गुणों वाले होते हैं।

बहुवातशकृच्छीतः पित्तश्लेष्महरो यवः।
वृष्यः शीतो गुरुः स्वादुर्गोधूमो वातनाशनः।।६।।

यव (जौ) शीतल, वात एवं मल को अधिक मात्रा में बढ़ाने वाला तथा श्लेष्मपित्तहर होता है। **गोधूम** (गेहूँ) वृष्य, शीत, गुरु, मधुर एवं वातनाशक होता है।

शमीधान्य

कफपित्तास्रजिन्मुद्गः कषायो मधुरो लघुः।
माषो बहुमलो वृष्यः स्निग्धोष्णो वातहृद् गुरुः।।७।।

मुद्ग (मूँग) कफहर, पित्तरक्त-नाशक, कषाय, मधुर व लघु होता है। **माष** (उड़द) स्निग्ध, उष्ण, वातहर एवं गुरु होता है। इसके सेवन से मल अधिक बनता है।

अवृष्यः श्लेष्मपित्तघ्नो राजमाषोऽनिलार्त्तिकृत्।
कुलत्थः श्वासहिक्कार्शःकफशुक्रानिलापहः।।८।।

राजमाष (राजमा) कफपित्तहर, वातरोग-कारक एवं अवृष्य होता है। **कुलत्थ** श्वास, हिक्का, अर्श, कफ, शुक्र एवं वात का नाशक होता है।

रक्तपित्तज्वरोन्माथी शीतो ग्राही मकुष्ठकः।
पुंस्त्वासृक्कफपित्तघ्नश्चणको वातलः स्मृतः।।९।।

मकुष्ठ (मोठ), रक्तपित्त एवं ज्वर को दूर करने वाला, शीत व ग्राही होता है। **चणक** (चना) पुंस्त्वहर (शुक्रनाशक), असृक्-शमन (रक्तपित्त को शान्त करने वाला), कफपित्तहर एवं वातकर होता है।

मसूरो मधुरः शीतः संग्राही कफपित्तहा।
सतीनश्चैवमुद्दिष्टः कलायश्चातिवातलः।।१०।।

मसूर मधुर, शीत, संग्राही एवं कफपित्तहर होता है। **सतीन** (मटर) भी इसी प्रकार के गुणों वाला होता है। **कलाय** (खेसारी नाम से प्रसिद्ध शिम्बीधान्य) तो बहुत अधिक वातकारक होता है।

सक्षारो मधुरः स्निग्धो बल्योष्णो पित्तकृत्तिलः।
बलघ्ना रूक्षणाः शीता विविधाः शिम्बजातयः।।११।।

तिल क्षारसहित, मधुर, स्निग्ध, बल्य, उष्ण व पित्तकर होता है। इनके अतिरिक्त अन्य (सेम आदि) शिम्ब-जातियाँ सामान्यतया बलनाशक, रूक्षण (शरीर में रूक्षता लाने वाली) एवं शीत गुणयुक्त होती हैं।

मांस

नातिशीतगुरुस्निग्धं छागं क्रव्यमदोषलम्।
विष्टम्भि मधुरं शीतमाविकं गुरु बृंहणम्।।१२।।

छाग क्रव्य (बकरे का मांस) अदोषल, विष्टम्भी, मधुर व शीत होता है। **आविक** (भेड़ का मांस) गुरु व बृंहण होता है।

स्वप्नशुक्रकरं स्निग्धं बृंहणं माहिषं गुरु।
वृष्यं वातहरं मांसं वाराहं स्वेदनं गुरु।।१३।।

महिष (भैंसे) का मांस नींद लाने वाला, शुक्रवर्धक, स्निग्ध, बृंहण व गुरु होता है। **वराह** (सूअर) का मांस वृष्य, वातहर, गुरु एवं स्वेदन (अधिक पसीना लाने वाला) होता है।

वह्निकृत् कफपित्तघ्नो वातसाधारणः शशः।
त्रिदोषशमनश्चैणो बद्धविण्मूत्रशीतलः।।१४।।

शशक (खरगोश) का मांस जठराग्नि-वर्द्धक, कफपित्तहर व वात-साधारण होता है। **एण** (कृष्णसार हरिण/काला हिरन) का मांस त्रिदोषहर, शीतल एवं मल-मूत्र को बांधने वाला होता है।

वातघ्नः श्रोत्रदृग्वर्णस्वरशुक्रप्रदः शिखी।
उष्णो वातहरः स्निग्धो गुरुर्वृष्यश्च कुर्कुटः।।१५।।

शिखी (मोर) का मांस वातनाशक, श्रोत्र, नेत्र, वर्ण एवं स्वर के लिए हितकर तथा शुक्रवर्धक होता है। **कुर्कुट** (कुक्कुट) का मांस उष्ण, वातहर, स्निग्ध, गुरु एवं वृष्य होता है।

गुरूष्णमधुरो नाति तित्तिरिः सर्वदोषहा।
दीपनाः सन्निपातघ्ना लाव-वर्त्तीर-वर्त्तकाः।।१६।।

तीतर का मांस थोड़ा-थोड़ा गुरु, उष्ण व मधुर होता है। इसे सर्वदोषहर माना जाता है। इसके अतिरिक्त **लाव** (लावा पक्षी), **वर्त्तीर** (कपिञ्जल के सदृश पक्षिविशेष) एवं **वर्त्तक** (बटेर) का मांस दीपन व सन्निपात-निवारक होता है।

चटकः सन्निपातघ्नः कफशुक्रविवर्धनः।
श्लेष्मासृक्पित्तहृच्छैत्याल्लाघवाच्च कपिञ्जलः।।१७।।

चटक (चिड़े) का मांस सन्निपातहर एवं कफशुक्र-वर्धक होता है। **कपिञ्जल** (गौर तीतर) का मांस शीतल व लघु होने से कफहर एवं रक्तपित्त-नाशक होता है।

रक्तपित्तहरः शीतो गुरुः पारावतो मतः।
तस्माल्लघुत्तरः किञ्चिद्धारीतस्सकपोतकः।।१८।।

पारावत (परेवा) का मांस रक्तपित्तहर, शीत व गुरु होता है। **हारीत**

(हरियल) एवं **कपोत** (कबूतर) का मांस उस से कुछ लघु होता है।

स्निग्धोष्णगुरवो वृष्या वातघ्ना जलपक्षिणः।
हंसो वृष्यतरस्तेषां प्रायस्तिमिरनाशनः।।१९।।

जलपक्षियों का मांस स्निग्ध, उष्ण, गुरु, वृष्य एवं वातनाशक होता है। उनमें भी **हंस** विशेष रूप से वृष्य होता है, इसका मांस प्रायः तिमिरहर (तिमिर- अर्थात् रतौंधी रोग को नष्ट करने वाला) माना जाता है।

स्निग्धोष्णगुरवो मत्स्या वातघ्ना रक्तपित्तलाः।
वातपित्तहरा वृष्या बुलूकी-कूर्म-कर्कटाः।।२०।।

मत्स्य (मछलियों) का मांस स्निग्ध, उष्ण, गुरु, वातनाशक व रक्तपित्तकर होता है। **बलूकी, कूर्म** (कछुए) एवं **कर्कट** (केकड़े) का मांस वातपित्तहर होता है।

शाक

काकमाची त्रिदोषघ्नी स्तन्या वृष्या कलम्बुका।
चाङ्गेरी कफवातघ्नी सार्षपं सर्वदोषलम्।।२१।।

काकमाची (मकोय) त्रिदोषहर होती है। **कलम्बुका** (जलशाक-विशेष) स्तन्य अर्थात् दूध को बढ़ाने वाले एवं वृष्य होती है। **चांगेरी** कफवात-नाशक होती है। **सार्षप** (सरसों का शाक) सब दोषों को बढ़ाने वाला होता है। अत एव आयुर्वेद के अनुसार यह सब शाकों में निकृष्ट होता है।

वास्तुकः पोतिका चिल्ली पालङ्क्या तण्डुलीयकः।
मन्दवातकफाः सृष्टविट्काः पित्तास्रनाशनाः।।२२।।

वास्तुक (बथुआ), **पोतिका** (पोई), **चिल्ली** (गौर वास्तुक), **पालंक्या** (पालक), **तण्डुलीय** (चौलाई)- ये पत्रशाक थोड़े वातकफ-

कारक, पित्तरक्त-नाशक एवं मलवर्धक होते हैं।

मूलकं दोषकृत्त्वामं स्विन्नं वातकफापहम्।
सर्वदोषहरं हृद्यं कण्ठ्यं तद् बालमिष्यते।।२३।।

मूली बिना पकाए खाने पर दोषकारक होती है। पकाकर खाने पर वातकफ-नाशक होती है। **बाल मूलक** (कच्ची मूली) सर्वदोषहर, हृद्य (हृदय के लिए हितकर) व कण्ठ्य (कण्ठ के लिए हितकर) होती है।

कर्कोटकं सवार्ताकं पटोलं कारवेल्लकम्।
कुष्ठमेहज्वरश्वास-कासपित्तकफापहम्।।२४।।

कर्कोटक (ककोड़ा), **वार्त्ताक** (बैंगन), **पटोल** (परवल), **कारवेल्ल** (करेला)- ये फलशाक कुष्ठ, प्रमेह, ज्वर, श्वास (दमा), कास (खांसी) एवं पित्तकफ को दूर करते हैं।

सर्वदोषहरं हृद्यं कूष्माण्डं वस्तिशोधनम्।
कलिङ्गालाबुनी पित्तनाशने वातकारणे।।२५।।

कूष्माण्ड (पेठा) सर्वदोषहर, हृद्य एवं वस्तिशोधन (मूत्राशय को शुद्ध करने वाला) होता है। **कलिंग** (तरबूज) एवं **अलाबु** (लौकी/घीया)- ये दोनों पित्तशामक एवं वातकारक होते हैं।

त्रपुषैर्वारुके वातश्लेष्मले पित्तवारणे।
करीराभीरु-वेत्राग्र-केम्बुकं कफपित्तजित्।।२६।।

त्रपुस (खीरा) और **एर्वारुक** (ककड़ी)- ये दोनों वात एवं कफ को बढ़ाने वाले तथा पित्तशामक होते हैं। **करीर** (टींट), **अभीरु** (शतावर), **वेत्राङ्कुर** (वंशांकुर), **केम्बुक** (केउंवा)- ये सब कफपित्त-नाशक होते हैं।

बिस-शालूक-शृङ्गाटमालुकं सकसेरुकम्।
रक्तपित्तहरं वृष्यं स्तन्यं च गुरु शीलम्।। २७।।

बिस (कमलनाल), शालूक (कमलकन्द), श्रृंगाट (सिंघाडा), आलू व कसेरु- ये सब रक्तपित्तहर, वृष्य, स्तन्य, गुरु एवं शीतल होते हैं।

फल

वातघ्नं दाडिमं ग्राहि कफपित्ताविरोधि च।
तद्वदामलकं वृष्यं मधुरानुरसं सरम्।।२८।।

दाडिम (अनार) भी वातघ्न होता है; परन्तु कफ-पित्त का अविरोधी है- अर्थात् इन्हें बढ़ाता नहीं है। दाडिम के समान ही आमलक (आँवला) भी वातघ्न होता है, यह वृष्य, मधुरानुरस (खाने के उपरान्त मधुर लगने वाला) एवं सर होता है।

गुल्मवातकफश्वास-कासघ्नं बीजपूरकम्।
कपित्थं ग्राहि दोषघ्नं पक्वं गुरु विषापहम्।।२९।।

बीजपूरक (बिजौरा निम्बू) गुल्म, वात, कफ, श्वास एवं कास को नष्ट करता है। **कपित्थ** (कैंथ) ग्राही एवं दोषहर होता है। पका कपित्थ गुरु एवं वृष्य होता है।

पक्वाम्रं वातनुन्मांस-शुक्र-वर्ण-बलप्रदम्।
वातलं कफपित्तघ्नं ग्राहि विष्टम्भि जाम्बवम्।।३०।।

पका **आम** वातहर होता है तथा मांस, शुक्र व बल को बढ़ाता है एवं रंग को निखारता है। **जामुन** वातकारक, कफपित्त-नाशक, ग्राही एवं विष्टम्भी होता है।

तिन्दुकं कफपित्तघ्नं बदरं वातपित्तजित्।
विष्टम्भि वातलं बिल्वं पियालं पवनापहम्।।३१।।

तिन्दुक (तेंदु) कफपित्तहर होता है। **बदर** (बेर) वातपित्तहर होता है। **बिल्व** विष्टम्भी एवं वातकर होता है। **पियाल** (चार/चिरौंजी) वातहर होता है।

तालं राजादनं मोचं पनसं नालिकेरकम्।
शुक्रमांसकराण्याहुः स्वादुस्निग्धगुरूणि च।।३२।।
द्राक्षा-मधूक-खर्जूर-काश्मर्यं सपरूषकम्।
वातपित्तास्रजिद् दृष्टं केशघ्नं च शमीफलम्।।३३।।

ताल, राजादन (खिरनी), मोचफल (केला), पनस (कटहल) एवं नालिकेर (नारियल)- ये सब मधुर, स्निग्ध, व गुरु होते हैं तथा शुक्र एवं मांस को बढ़ाते हैं। इसी प्रकार के गुण द्राक्षा (अंगूर), मधूक (महुआ), खर्जूर, काश्मर्य (गम्भारी) व परूषक (फालसा) में भी हैं। ये सब वात, पित्त एवं अस्र (रक्तपित्त) को नष्ट करते हैं। शमीफल (जाँटी/खेजड़ी का फल, जो हरित अवस्था में सांगर व सूखने पर झींझ नाम से जाना जाता है), यह केशघ्न (बालों को नष्ट करने वाले) के रूप में जाना जाता है।

कोशाम्राम्रातकं दन्तशठं सकरमर्दकम्।
रक्तपित्तकरं विद्याद् गुल्मनुत् पीलुजं फलम्।।३४।।

कोशाम्र (कोशम), आम्रातक (आमड़ा), दन्तशठ (निम्बू), करमर्दक (करौंदा)- ये सब रक्तपित्तकर होते हैं। पीलुफल गुल्म-निवारक होता है।

उपस्कर (मसाले)

शुण्ठी-मरिच-पिप्पल्यः कफवातजितो मताः।
अवृष्यं मरिचं विद्यादितरे वृष्यसम्मते।।३५।।

सोंठ, कालीमिर्च और पिप्पली कफवात-नाशक होती हैं। इन तीनों में से कालीमिर्च अवृष्य होती है, शेष दोनों (शुण्ठी एवं पिप्पली) तो वृष्य मानी जाती हैं।

गुल्मशूलविबन्धघ्नं हिङ्गु वातकफापहम्।
यवानीधान्यकाजाज्यो वातश्लेष्मनुदः परम्।।३६।।

हींग गुल्म, शूल तथा विबन्ध को नष्ट करने वाली और वातकफहर

होती है। यवानी (अजवायन), धान्यक (धनिया) एवं अजाजी (जीरा)- ये तीनों विशेष रूप से वातकफ-नाशक होते हैं।

लवण

चक्षुष्यं सैन्धवं वृष्यं त्रिदोषशमनं स्मृतम्।
सौवर्चलं विबन्धघ्नमुष्णं हृच्छूलनाशनम्।।३७।।

सैन्धव लवण चक्षुष्य, वृष्य एवं त्रिदोष-शामक माना जाता है। **सौवर्चल लवण** (सोंचर नमक) विबन्ध-नाशक, उष्ण एवं हृदयशूलहर होता है।

उष्णं शूलहरं तीक्ष्णं विडं वातानुलोमनम्।
रोमकं चाणु तस्मात्स्यात् सामुद्रं क्लेदनं गुरु।।३८।।

विड लवण उष्ण, शूलहर, तीक्ष्ण एवं वातानुलोमन होता है। रोमक, अणु व सामुद्र लवण क्लेदन एवं गुरु होता है।

क्षार

हृत्पाण्डुगलदोषघ्नो यवक्षारोऽग्निदीपनः।
दहनो दीपनस्तीक्ष्णः स्वर्जिक्षारो विदारणः।।३९।।

यवक्षार हृदयरोग, पाण्डुरोग एवं कण्ठ विकारों को नष्ट करता है तथा अग्निदीपन होता है। **स्वर्जिकाक्षार** दाह करने वाला, दीपन, तीक्ष्ण एवं विदारण (भेदन) करने वाला होता है।

आकाशजल (वर्षा का पानी)

दोषघ्नं नाभसं वारि लघु हृद्यं विषापहम्।
नानाभूपात्रसंश्लेषाद् भिद्यते तद्रसान्तरैः।।४०।।

नाभस वारि (आकाश से बरसने वाला वर्षा जल) दोषघ्न, लघु, हृद्य एवं विषहर होता है। वह अनेक प्रकार की भूमि पर गिरने से उसके संसर्ग

से तथा विभिन्न प्रकार के पात्रों में रखने से उनके संसर्ग से भिन्न-भिन्न गुण वाला हो जाता है।

नदी एवं झील आदि का जल

नादेयं वातलं रूक्षं सारसं मधुरं लघु।
वातश्लेष्महरं वाप्यं ताडागं वातलं स्मृतम्।।४१।।

नदीजल वातकारक एवं रूक्ष होता है। **सारस जल** (झील का पानी) मधुर एवं लघु होता है। **वाप्य जल** (बावड़ी का पानी) वातश्लेष्महर होता है। **ताडाग जल** (तालाब का पानी) वातकारक माना जाता है।

चौड्यमग्निकरं रूक्षं कफघ्नं लघु नैर्झरम्।
दीपनं वातलं कौप्यमौद्भिदं पित्तनाशनम्।।४२।।

चौड्य जल अग्निदीपन व रूक्ष होता है। **निर्झर** (झरने) का जल कफघ्न व लघु होता है। **कूप का जल** दीपन एवं वातकारक होता है। **औद्भिद** (भूमि का भेदन कर धारा रूप में निकला हुआ) जल पित्तनाशक होता है।

ग्राह्य, अग्राह्य जल

कलुषं कृमिशैवालदूषितं सूर्यवर्जितम्।
अग्राह्यमुदकं ग्राह्यमेभिर्दोषैर्विवर्जितम्।।४३।।

त्याज्य जल- कलुष (मलिन), कृमि एवं शैवाल (सेवार) से दूषित, सूर्यवर्जित (सूर्य की धूप से वञ्चित) जल अग्राह्य होता है। अतः उक्त दोषों से रहित जल ही लेना चाहिए।

उष्ण एवं शृतशीत जल के गुण

उष्णं वारि ज्वरश्वासमेदोऽनिलकफापहम्।
शृतशीतं त्रिदोषघ्नमुषितं तच्च दोषलम्।।४४।।

उष्ण जल ज्वर, श्वास, मेद (मोटापा), वात व कफ का निवारण करता है। **शृतशीत** (उबालकर शीतल किया हुआ) जल त्रिदोषघ्न होता है;

परन्तु यही बासी होने पर त्रिदोष-कारक बन जाता है।

गाय एवं भैंस का दूध

गोक्षीरं वातपित्तघ्नं स्निग्धं गुरु रसायनम्।
गव्याद् गुरुतरं स्निग्धं माहिषं वह्निनाशनम्।।४५।।

गाय का दूध वातपित्तहर, स्निग्ध, गुरु एवं रसायन होता है। गाय के दूध से **भैंस का दूध** अधिक गुरु एवं स्निग्ध होता है। यह अति गुरु होने से अग्नि को मन्द करता है।

बकरी एवं भेड़ का दूध

छागं रक्तातिसारघ्नं कासशोषज्वरापहम्।
सेकेनानिलरक्तघ्नं पित्तश्लेष्मलमाविकम्।।४६।।

बकरी का दूध रक्तातिसार-नाशक, कासशोषहर एवं ज्वरहर होता है। इसका शरीर पर सेचन करने से वातरक्त का भी निवारण होता है। **भेड़ का दूध** पित्तश्लेष्म-वर्द्धक होता है।

ऊष्ट्रीक्षीर, नारीक्षीर

औष्ट्रं शोफोदरानाहकृम्यर्शः कफपित्तनुत्।
चक्षुष्यं जीवनं स्त्रीणां रक्तपित्ते च नावनम्।।४७।।

ऊँटनी का दूध शोफ, उदररोग, आनाह, कृमि, अर्श एवं कफपित्त को हरता है। **स्त्री का दूध** विशेष रूप से नेत्र-हितकारी तथा जीवनीय होता है। यह रक्तपित्त में नावन (नस्य) के रूप में लेने से हितकर होता है।

दधि, मस्तु

बल्यं वातहरं वृष्यं पित्तश्लेष्मकरं दधि।
त्रिदोषं मन्दजातं तु मस्तु स्रोतोविशोधनम्।।४८।।

दही बल्य, वातहर, वृष्य एवं पित्त तथा कफ को बढ़ाता है। **मन्दजात**

(कम जमा हुआ) दही त्रिदोषकारक होता है। अच्छी प्रकार से जमे हुए दही के ऊपर आया पानी मस्तु कहलाता है। यह स्रोतो-विशोधन (रस आदि का वहन करने वाले शरीरगत स्रोतों को शुद्ध करने वाला) होता है।

नवनीत, किलाट

ग्रहण्यर्शोऽर्दितार्त्तिघ्नं नवनीतं नवोद्धृतम्।
विकाराश्च किलाटाद्या गुरवः कुष्ठहेतवः।।४९।।

ताजा निकाला नवनीत (मक्खन), ग्रहणी, अर्श (बवासीर) व अर्दित (मुख का लकवा) को नष्ट करता है। दूध के किलाट (दधिकूर्चिका आदि का पिण्डाकार ठोस भाग/छेना) इत्यादि अन्य विकार (परिवर्तित रूप) गुरु होते हैं और अधिक सेवन से कुष्ठ रोग के कारण बनते हैं।

तक्रगुण

ग्रहणीगरशोफार्शःपाण्ड्वतीसारगुल्मनुत्।
त्रिदोषशमनं तक्रमुद्धृतस्नेहमादिशेत्।।५०।।

घृत निकालकर तैयार गया किया तक्र (छाछ) त्रिदोष-शामक होता है। यह ग्रहणी, विष, शोफ, अर्श, पाण्डु, अतिसार एवं गुल्म को दूर करता है।

घृतगुण

विपाके मधुरं सर्पिर्वातपित्तविषापहम्।
गव्यं मेध्यं च चक्षुष्यं तत्संस्कारात्त्रिदोषजित्।।५१।।
अपस्मार-गरोन्माद-मूर्छाघ्नमनवं घृतम्।
अजादीनां च सर्पींषि विद्यात् स्वक्षीरवद् गुणैः।।५२।।

घृत विपाक में मधुर, वातपित्तहर एवं विषनाशक होता है। गाय का घृत मेध्य और चक्षुष्य होता है। संस्कार करने से यह त्रिदोषजित् बन जाता है। पुराना घृत, अपस्मार, उन्माद, विष एवं मूर्च्छा को दूर करता है। बकरी आदि के घृत के गुण उनके दूध के समान ही जानने चाहिए।

मूत्र

कफवातहरं मूत्रं सर्वं कृमिविषापहम्।
पाण्डुत्वोदरकुष्ठार्श:शोफगुल्मप्रमेहनुत्।।५३।।

गाय आदि के मूत्र में विशेष औषधीय गुण होते हैं। यहाँ संक्षेप के कारण गाय आदि के मूत्र का पृथक् पृथक् वर्णन न कर मूत्रसामान्य के गुण बताए जा रहे हैं- सभी प्रकार का मूत्र कफवातहर, कृमिनाशक एवं विष-निवारक होता है। यह पाण्डुता (पीलिया), उदररोग, कुष्ठ, अर्श, शोफ, गुल्म एवं प्रमेह को नष्ट करता है।

तिलतैल, सर्षपतैल

वातश्लेष्महरं त्वच्यं तैलं केश्यं तिलोद्भवम्।
सार्षपं कृमिकण्डूघ्नं कफमेदोऽनिलापहम्।।५४।।

तिल का तेल वातश्लेष्महर, त्वच्य (त्वचा के लिए हितकर) एवं केश्य (केशों के लिए हितकर) होता है। **सरसों का तेल** कृमि एवं कण्डू (खुजली) को नष्ट करता है। यह कफ, मेद एवं वात को हरता है।

क्षौम (अलसी) का तैल

क्षौमतैलमचक्षुष्यं पित्तकृद्वातनाशनम्।
आक्षजं कफपित्तघ्नं केश्यं दृक्छ्रोत्रतर्पणम्।।५५।।

क्षौम (क्षुमा से बना हुआ) तेल अचक्षुष्य (नेत्रों के लिए हानिकर), पित्तवर्धक एवं वातनाशक होता है। **आक्षज** (बहेड़े से बना) तेल कफपित्त-नाशक, केशों के लिए हितकर तथा नेत्र व श्रोत्र के लिए तर्पण होता है।

मधु

त्रिदोषघ्नं मधु प्रोक्तमन्ये शंसन्ति वातलम्।
हिक्काश्वासकृमिच्छर्दि-मेहतृष्णाविषापहम्।।५६।।

मधु (शहद) त्रिदोषघ्न होता है। अन्य आचार्य उपादान कारण के आधार

पर इसे वातकारक कहते हैं। यह हिक्का, श्वास, कृमि, छर्दि, प्रमेह, तृष्णा एवं विष का निवारक होता है।

इक्षु, इक्षुरस

इक्षवो रक्तपित्तघ्ना बल्या वृष्याः कफप्रदाः।
दन्तजस्तद्रसः पथ्यो विष्टम्भी यान्त्रिको गुरुः।।५७।।

इक्षु (ईख) रक्तपित्त-नाशक, बल्य, वृष्य एवं कफप्रद होता है। दाँतों से चूसा गया इक्षुरस पथ्य (हितकर) होता है। यन्त्र से पीड़कर निकाला गया इक्षुरस गुरु एवं विष्टम्भी होता है।

गुड

नातिपित्तहरो वृष्यो वातघ्नः कफकृद् गुडः।
स पित्तघ्नः परं पथ्यः पुराणोऽसृक्प्रसादनः।।५८।।

गुड़ कुछ पित्तहर, वृष्य, वातनाशक एवं कफकारक होता है। (एक से तीन वर्ष तक) पुराना गुड़ पथ्य एवं असृक्प्रसादन (रक्तपित्त को शान्त करने वाला) होता है।

गुडशर्करा

रक्तपित्तहरी वृष्या सस्नेहा गुडशर्करा।
छर्द्यतीसारनुद् रूक्षा ह्लादनी मधुशर्करा।।५९।।

गुडशर्करा (गुड़िया शक्कर) रक्तपित्तहर, वृष्य एवं स्निग्ध होती है। मधुशर्करा (मधु के सूख जाने पर उससे बनी शर्करा) हृद्य, अतिसारहर, रूक्ष एवं चित्ताह्लादक होती है।

मद्य

सर्वं पित्तकरं मद्यमम्लत्वात् कफवातनुत्।
दीपनं हर्षणं बल्यं पीतं युक्त्यान्यथा विषम्।।६०।।

सभी प्रकार का मद्य पित्तवर्धक होता है। अम्ल होने के कारण यह

कफवात-नाशक होता है। युक्तिपूर्वक पीने से मद्य दीपन, हर्षण व बल्य होता है, अन्यथा तो वह विष बन जाता है।

गौडी, ऐक्षवी, मार्द्वीक सुरा

सुरार्श:कार्श्यवातघ्नी गौडी स्रंसनपाचनी।
ऐक्षवी श्लेष्ममेदोघ्नी मार्द्वीकं वातपित्तनुत्।।६१।।

गौडी (गुड़ से बनी) सुरा अर्श, कृशता एवं वातविकारों को नष्ट करती है। यह मल का स्रंसन व अन्न का पाचन करती है। **ऐक्षवी** (इक्षुरस से बनी सुरा) श्लेष्म व मेद (चर्बी/मोटापे) को दूर करती है। **मार्द्वीक** (मृद्वीका अर्थात् मुनक्का से बनी) सुरा वातपित्तहर होती है।

मधूकपुष्पासव, शुक्त, सौवीर

वातपित्तकरो रूक्षो मधूककुसुमासवः।
रक्तपित्तकरास्तीक्ष्णाः शुक्तसौवीरजातयः।।६२।।

मधूककुसुमासव (मधूकपुष्पों- अर्थात् महुआ के फूलों से बना हुआ आसव/मद्य) रूक्ष एवं वातपित्त-कारक होता है। **शुक्त** (सिरका) एवं **सौवीर** (काञ्जी) आदि मद्य के प्रकार रक्तपित्त-कारक एवं तीक्ष्ण होते हैं।

ओदनमण्ड, पेया

पाचनो दीपनः पथ्यो मण्डः स्याद् भृष्टतण्डुलैः।
वातानुलोमनी लघ्वी पेया वस्तिविशोधनी।।६३।।

भुने हुए चावलों से तैयार किया गया **मण्ड** पाचन, दीपन एवं पथ्य होता है। तण्डुलों से बनी **पेया** हल्की, वातानुलोमनी एवं वस्ति-विशोधनी (मूत्राशय को शुद्ध करने वाली) होती है।

विलेपी, पायस, कृशरा

ग्राहिणी तर्पणी हृद्या विलेपी बलवर्द्धनी।
पायसः कफकृद् बल्यः कृसरा वातनाशनी।।६४।।

विलेपी ग्राही, तृप्तिकारक, हृद्य व बलवर्द्धक होती है। **पायस** (खीर) कफकारक एवं बलवर्द्धक होती है। **कृसरा** (खिचड़ी) वातनाशक होती है।

ओदन

सुधौत: प्रस्रुत: स्विन्न: कवोष्णो लघुरोदन:।
कन्दमांसफलस्नेहै: साधितो बृंहणो गुरु:।।६५।।

चावलों को अच्छी प्रकार से धोकर पकाया गया तथा पानी निकाला हुआ कवोष्ण (थोड़ा गर्म) **ओदन** (भात) पचने में लघु होता है। यही ओदन आलू आदि कन्द, मांस, फल अथवा घृत आदि स्नेह के साथ पकाने पर बृंहण व गुरु होता है।

सूप, शाक

ईषद्भृष्टो गतत्वक्को लघु: सूप: सुसाधित:।
स्विन्नं निष्पीडितं शाकं हितं स्नेहाभिसंस्कृतम्।।६६।।

मूँग आदि को थोड़ा भूनकर एवं छिल्का उतारकर, हींग, जीरा, अदरक आदि से संस्कारित कर अच्छी प्रकार से पकाई गई **सूप** (दाल) लघु होती है। पकाकर निचोड़ा हुआ एवं घृत आदि स्नेह से संस्कारित किया हुआ **शाक** हितकर होता है।

यूष

दाडिमामलकैर्यूषो वह्निकृद्वातपित्तहा।
श्वासकासप्रतिश्याय-कफघ्नो मूलकै: कृत:।।६७।।

दाडिम, आमलक आदि के साथ तैयार किया गया मूंग आदि के **यूष** (सूप) जठराग्नि दीपन एवं वातपित्त-नाशक होता है। मूली के साथ पकाया गया मूंग आदि का यूष श्वास, कास, प्रतिश्याय (जुकाम) एवं कफ को नष्ट करता है।

यव-कोल-कुलत्थानां यूष: कण्ठ्योऽनिलापह:।
मुद्गामलकजो ग्राही पित्त-श्लेष्म-विनाशन:।।६८।।

यव (जौ), कोल (बेर) एवं कुलत्थ (कुलथी) का यूष कण्ठ्य (गले के लिए हितकर) एवं वातहर होता है। मूँग एवं आँवले को मिलाकर बनाया हुआ यूष ग्राही एवं पित्तकफ-नाशक होता है।

रागषाडव

लघवो बृंहणा रुच्याश्छर्दिघ्ना रागषाडवाः।
रसाला बृंहणी वृष्या वातहृत् सगुडं दधि।।६९।।

रागषाडव, बृंहण, रुचिकर एवं छर्दिनाशक होते हैं। रसाला (शिखरण) बृंहण एवं वृष्य होती है। गुड़ युक्त दही वातहर होता है।

रागषाडव- **स तु दाडिममृद्वीकायुक्तः स्याद्रागषाडवः।**
रुचिकृल्लघुपाकश्च दोषाणामविरोधकृत्।।
(वैद्यकशब्दसिन्धु, पृ. ८८५)

दाडिम (अनार) एवं मृद्वीका (मुनक्का) से युक्त व्यञ्जन 'रागषाडव' होता है। यह रुचिकर, लघुपाक (पचने में हल्का) एवं दोषों का अविरोधी होता है।

सत्तू, यावक, अपूप, वाट्य

सक्तवो भेदिनो रूक्षा वातला बल्यतर्पणाः।
यावकापूपवाट्याश्च मेहोदावर्त्तनाशनाः।।७०।।

सत्तू मलभेदनकारी, रूक्ष, वातकारक, बल्य एवं तर्पण (तृप्तिकारक) होते हैं। **यावक** (जौ का दलिया), **जौ का अपूप** (पूआ) एवं **वाट्य** (निस्तुष/छिल्का रहित एवं दले हुए जौ का माँड सहित दलिया)- ये प्रमेह तथा उदावर्त्त को नष्ट करते हैं।

वाट्य- क्षुण्णशुष्कयवानां मण्डरहित ओदनो यवौदनः। वाट्यः स एव समण्डो निस्तुषोद्दलितानां यवानां भवति। (चरकसंहिता, चिकित्सास्थान- ६.१९ चक्रपाणिदत्त-टीका)।

विविध भक्ष्यों के गुण- गुड़ से बने भक्ष्यों के गुण

गुरवो गौडिका भक्ष्या बृंहणा वातनाशनाः।
वातपित्तहरो वृष्यो घृतपूरोऽग्निदीपनः।।७१।।

गौडिक (गुड़ से बने) **भक्ष्य** गुरु, बृंहण एवं वातनाशक होते हैं। **घृतपूर** (घेवर) वातपित्तहर, वृष्य एवं अग्निदीपन होता है।

समिता (मैदा) से बने भक्ष्यों के गुण

बृंहणाः सामिता भक्ष्या बल्याः पित्तानिलापहाः।
पिशितैर्वेसवाराद्यैः सम्पूर्णा गुरुतर्पणाः।।७२।।

समिता-भक्ष्य (मैदा से बने भोज्य) बृंहण एवं वातपित्तहर होते हैं। **मांस** तथा **वेसवार** आदि से युक्त भोज्य पदार्थ गुरु एवं तर्पण होते हैं।

पिष्ट (आटे) व वैदल (दलहन) से बने भक्ष्यों के गुण

पैष्टिका गुरवो भक्ष्या वीर्योष्णाः कफपित्तलाः।
वैदलाः श्लेष्मला ज्ञेया गुरवो भिन्नवर्चसः।।७३।।

पैष्टिक (आटे से बने) **भक्ष्य** गुरु, कफपित्त-कारक व उष्णवीर्य होते हैं। **वैदल** (दलहन) से बने **भक्ष्य** कफकारक, गुरु एवं मलभेदनकारी होते हैं।

घृत व तैल से बने भक्ष्यों के गुण-दोष

वातपित्तहरा वर्णदृष्टिदा घृतपाकिमाः।
भक्ष्यास्तैलकृता दृष्टिवातघ्नाः पित्तकोपनाः।।७४।।

घृतपाकिम (घी के साथ पकाए गए भोज्य पदार्थ) वातपित्तहर, वर्णप्रसाद-कारक एवं नेत्रज्योतिवर्द्धक होते हैं। **तैलकृत** (तेल में पकाए गए भोज्य पदार्थ) नेत्रज्योति को क्षीण करते हैं। ये वातहर तथा पित्तप्रकोप-कारक होते हैं।

भोजनानुपान के गुण

प्रीणनं जरणं हृद्यं बल्यं रोचनबृंहणम्।
भक्तं हि [illegible] मतो हितम् ।।७५।।

भोजन के उपरान्त लिया जाने वाला (छाछ, दूध या रस) आदि का **अनुपान** प्रीणन (तृप्ति देने वाला), जरण (पाचन करने वाला), हृद्य (हृदय के लिए प्रिय व हितकर), बल्य, रोचन एवं बृंहण होता है। यह खाए हुए अन्न को पचा देता है, अत: हितकर होता है।

वात आदि में हितकर अनुपान

स्निग्धोष्णमनिले शस्तं पित्ते सुस्वादु शीतलम्।
कफेऽनुपानं रूक्षोष्णं क्षये क्रव्यरस: शुभ:।।७६।।

वात में स्निग्ध एवं उष्ण अनुपान प्रशस्त होता है। पित्त की अधिकता होने पर मधुर व शीतल अनुपान प्रशस्त होता है तथा कफ की अधिकता में रूक्ष व उष्ण अनुपान उत्तम माना जाता है। क्षयरोग में मांसरस को अनुपान के रूप में हितकर माना गया है।

क्लान्त, कृश व स्थूल के लिए हितकर अनुपान

स्त्र्यध्वोपवास-भाष्योष्णक्लान्तानां क्षीरमिष्यते।
स्थूले मधुयुतं तोयमनुपानं कृशे सुरा।।७७।।

स्त्रीसंग, मार्गश्रम, भाष्य (भाषणश्रम) एवं गर्मी से क्लान्त व्यक्तियों के लिए क्षीर का अनुपान अभीष्ट होता है। स्थूल व्यक्ति के लिए मधुमिश्रित जल का अनुपान हितकर होता है। कृश व्यक्ति के लिए सुरा का अनुपान उत्तम माना ज़ाता है।

अनुपान के अयोग्य व्यक्ति

विहतोर:स्वरश्वास-कासहिक्काप्रसेकिनाम्।
ऊर्ध्वजत्रुगदार्त्तानामनुपानं न शस्यते।।७८।।

उर:क्षत, स्वरभंग, श्वास, कास, हिक्का एवं प्रसेक वाले व्यक्तियों के लिए अनुपान उपयोगी नहीं होता है। इसी प्रकार ऊर्ध्वजत्रु रोगों से पीड़ित व्यक्तियों के लिए भी अनुपान उचित नहीं होता है।

गुरु व लघु अन्न की मात्रा

गुर्वल्पं लघु चानल्पमद्यान्मात्राग्निकालवित्।
ज्ञात्वा संस्कारसात्म्याग्नीन् भुक्तं स्याल्लघु गुर्वपि।।७९।।

मात्रा अग्नि एवं काल को दृष्टिगत रखते हुए व्यक्ति को गुरु पदार्थों को अल्पमात्रा में तथा लघु भोज्यों को अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में सेवन करना चाहिए। संस्कार, सात्म्य एवं पाचन-क्षमता को ध्यान में रखते हुए खाया गया गुरु अन्न भी लघु बन जाता है।

चिकित्सा में अन्नपान-विषयक ज्ञान का महत्त्व

अन्नपानानि यो युक्त्या योजयत्यागमाश्रयात् ।
भिषक् स्वस्थातुरेषूच्चैः स लोके लभते यशः।।८०।।

जो वैद्य शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक स्वस्थ व आतुरजनों (रोगियों) को अन्नपान का प्रयोग कराता है, वह चिकित्सा में सफल होकर इस लोक में उन्नत यश प्राप्त करता है। भाव यह है कि उचित अन्नपान ही स्वस्थ की स्वास्थ्य-रक्षा एवं रोगी के रोग-निवारण का मुख्य कारण होता है। अतः आयुर्वेदप्रोक्त अन्नपानविधि की जानकारी परमावश्यक है।

।। इत्यन्नपानविधिः तृतीयोऽध्यायः समाप्तः।।

चतुर्थ अध्याय

अरिष्ट

चिकित्सक के लिए अरिष्टज्ञान की उपादेयता

मोहाद् गतायुषि न्यस्ता श्रमायैव क्रिया यतः।
तस्मादायुः परिज्ञेयं दूतारिष्टनिमित्ततः।।१।।

मूढता के कारण गतायु (जिसकी आयु क्षीण हो चुकी है, ऐसे) रोगी की चिकित्सा आयास मात्र (व्यर्थ श्रम) के लिए ही होती है; क्योंकि उसमें सफलता नहीं मिलती, अतः वैद्य को चाहिए कि किसी रोगी की चिकित्सा प्रारम्भ करने से पहले दूत और अरिष्टों से उसकी आयु-परीक्षा करे।

अरिष्ट-लक्षण

शीलदेहेन्द्रियाचिन्त्य-विकृतिर्या मरिष्यताम्।
अरिष्टमिति तां विद्यात् समासेन भिषग्वरः।।२।।

शीघ्र मरने वाले रोगियों के देह, इन्द्रियों व शील (स्वभाव) में अचिन्त्य विकृतियाँ आ जाती हैं, भिषग्वर (सूझबूझ वाला उत्तम वैद्य) उन्हें अरिष्ट रूप में जाने। यही संक्षेप में अरिष्ट का लक्षण है।

अरिष्ट से मरने वाले रोगी की मुख्य पहचान

यो गृह्णातीन्द्रियैरर्थान् विपरीतान् स मृत्युभाक्।
भिषङ्-मित्र-गुरुद्वेषी प्रियारातिश्च यो भवेत्।।३।।

जो रोगी इन्द्रियों से (अविद्यमान का दिखना, विद्यमान का न दिखना इत्यादि) विपरीत अर्थों को ग्रहण करता है, वह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। जो रोगी भिषग् (वैद्य), मित्र एवं गुरु से द्वेष करने लगता है तथा

शत्रु से प्रेम करता है, वह भी मृत्यु के निकट ही होता है; क्योंकि ऐसी प्रवृत्ति आसन्नमृत्यु व्यक्ति की ही होती है।

विविध अरिष्टों का वर्णन

यः पश्यत्यमले व्योम्नि घनेन्द्रायुधविद्युतः।
विमानयान-सञ्छन्नं वियद्वा न स जीवति।।४।।

जो रोगी निर्मल आकाश में मेघ, बिजली व इन्द्रधनुष देखता है अथवा जो आकाश को विमानों द्वारा ढ़का हुआ देखता है, वह रोगी जीता नहीं है।

नेक्षतेऽरुन्धतीं देवीं ध्रुवमाकाशनिम्नगाम्।
मुमूर्षुः प्रेक्षते चैव भुवमष्टापदोपमाम्।।५।।

जो रोगी आकाशगंगा में स्थित अरुन्धती तारा को नहीं देख पाता है तथा भूमि को अष्टापद (चौपड़) के आकार में देखता है, समझ लो वह शीघ्र ही मरने वाला है।

यः पश्यति दिवा ताराश्चित्रभानुसमन्विताः।
रूपिणं च नभस्वन्तं परासुं तं विनिर्दिशेत्।।६।।

जो रोगी दिन में सूर्य के साथ तारे देखता है और वायु को रूप सहित देखता है, उसे मरा हुआ ही जानें।

उद्यन्तं भास्करं छिद्रं पश्यन्ति विगतप्रभम्।
निर्वाणदीपंगन्धं च न जिघ्रन्ति मुमूर्षवः।।७।।

जो रोगी उगते हुए सूरज को प्रभाहीन व छिद्रसहित देखते हैं तथा बुझते दीपक के धुएं की गन्ध को नहीं सूंघ पाते हैं, वे शीघ्र ही मरने वाले होते हैं।

दर्पणादिषु यश्छायां व्यङ्गां पश्यत्यथो न वा।
नाना-सत्त्वाकृतिं चाशु तस्य वासोऽन्तकक्षये।।८।।

जो रोगी दर्पण आदि में अपने प्रतिबिम्ब को नहीं देख पाता अथवा देखने

पर भी उसे कुछ अंगों से रहित देखता है। इसी प्रकार जो नाना प्राणियों की आकृतियाँ देखता है, उसका निवास शीघ्र ही यमलोक में हो जाता है।

वामाक्षि-मज्जनं जिह्वा श्यावा नासा विकारिणी।
कृष्णौ स्थानच्युतावोष्ठौ पूत्यास्यं यस्य तं त्यजेत्।।९।।

जिस रोगी की बायीं आँख अन्दर धँस जाए। जीभ काली पड़ जाए तथा नासिका विकारयुक्त हो जाए, ओठ काले होकर अपने स्थान से हट जाएं तथा जिसका मुख दुर्गन्धियुक्त हो जाए, ऐसे रोगी को छोड़ देना चाहिए- अर्थात् उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिए; क्योंकि वह शीघ्र ही मरने वाला होता है।

रक्तस्त्रस्तस्त्रुतस्तब्ध-विषमे द्वे विलोचने।
स्यातां भ्रुवौ च संक्षिप्ते विषमे दीर्घशायिनः।।१०।।

जिसके लाल हुए दोनों नेत्र अपने स्थान से हट गए हों, उनसे पानी टपकता हो तथा दोनों भौहें सिकुड़ कर विषम हो गई हों, उसे आसन्नमृत्यु समझना चाहिए।

छाया रक्ता सिता पीता श्यामा वा यस्य दृश्यते।
ह्री-कान्ति-स्मृति-हानिश्च तं वदन्ति गतायुषम्।।११।।

जिस रोगी को छाया लाल, श्वेत, पीली या काली दिखाई देती है, जिसकी ह्री (लज्जा) तथा कान्ति व स्मृति क्षीण हो जाती है, उसे गतायु समझना चाहिए।

मूर्ध्नि गोमयचूर्णाभा दृश्यन्ते सान्द्ररेणवः।
विवर्णाः पुष्पवन्तश्च नखदन्ता गतायुषः।।१२।।

जिसके मस्तिष्क पर सूखे गोबर के चूर्ण के समान दाने दिखाई देते हैं तथा जिसके नाखून व दाँत पुष्पवान् दिखते हैं, उसे भी गतायु जानना चाहिए।

पिङ्ग-धूम्रारुण-श्याम-सितासितनिभाः सिराः।
ललाटे यस्य दृश्यन्ते स याति यम-मन्दिरम्।।१३।।

जिसके ललाट की सिराएं पीली, धूम्रवर्ण, लाल, श्याम व श्वेत दिखाई देती हैं, वह शीघ्र ही यम-सदन को चला जाता है।

ललाट-तट-सर्पिण्यो यूका ध्वांक्षा बलिद्विषः।
निद्रा निद्राविनाशो वा भवत्यति कृशायुषाम्।।१४।।

जिन रोगियों के मस्तक पर यूका (जूँ), कौए एवं बलिद्विट् झपटते हैं, जिन्हें बहुत अधिक नींद आती है या नींद सर्वथा समाप्त हो जाती है, उनकी आयु क्षीण समझनी चाहिए।

गुल्फजानुललाटांसं सगण्डं हनुबन्धनम्।
स्रस्तं स्थानच्युतं यस्य स जहात्यचिरादसून्।।१५।।

जिसके गुल्फ (टखने), जानु (घुटने), ललाट (माथा), कन्धे, गण्ड (गाल) एवं हनु (ठोडी)- ये लटक जाते हैं या अपने स्थान से हट जाते हैं, वह रोगी शीघ्र ही प्राण छोड़ देता है।

क्षीणस्य स्वरवृद्धिः स्यात् स्वरहानिर्बलीयसः।
केशाः सीमन्तिनो यस्य तं विद्यात् कालपाशितम्।।१६।।

क्षीण (दुर्बल) होते हुए भी जिसके स्वर की वृद्धि हो जाती है। बलवान् होने पर भी जिसका स्वर क्षीण हो जाता है तथा जिसके केश स्वयं ही सीमन्त युक्त (मांग सहित) हो जाते हैं, उसे कालपाश-ग्रस्त समझना चाहिए।

भुञ्जानस्य बलध्वंसो विवृद्धिश्च विनाशनात्।
परासोराननं स्निग्धं भवेद्वर्णविकारिता।।१७।।

प्रतिदिन भोजन करने पर भी जिसका बल क्षीण होने लगता है तथा बिना भोजन के भी बल की वृद्धि हो जाती है, मुख स्निग्ध (चिकना) दिखता है एवं

रंग अलग प्रकार का ही हो जाता है, उसे क्षीणायु जानना चाहिए।

गन्धोऽकस्माद् भवेद्यस्य सुरभिः कुथितोऽथवा।
सेव्यते यश्च नीलाभिर्मक्षिकाभिः स मृत्युभाक्।।१८।।

जिसे अकस्मात् बहुत अच्छी सुगन्ध आने लगती है अथवा अकस्मात् ही दुर्गन्ध आने लगती है तथा जिसके ऊपर नीली मक्खियाँ मंडराने लगती हैं, वह शीघ्र ही मृत्यु का भागी बन जाता है।

अनिष्ट-सूचक विविध स्वप्न

स्नेहाक्तस्य निशि स्वप्ने दक्षिणस्यां प्रयाणकम्।
वराह-महिष-व्याल-गर्दभोष्ट्रैर्न शस्यते।।१९।।

सपने में स्नेह (तेल आदि) से लिप्त अवस्था में सूअर, भैंसे, व्याल (दुष्ट हाथी), गर्दभ (गधा) या ऊँट की सवारी करते हुए दक्षिण दिशा में प्रस्थान करना अशुभ-सूचक (मृत्यु-सूचक) होता है।

मुक्तकेश्यासितरक्तवाससा हाससम्मितम्।
नेष्यते दक्षिणा यस्य बद्धस्याकर्षणं स्त्रिया।।२०।।

मुक्तकेशी (बिखरे बालों वाली), काले एवं लाल वस्त्र पहने, हंसती हुई स्त्री द्वारा बाँधे हुए जिस व्यक्ति को दक्षिण की ओर खींचा जाना इष्ट नहीं होता, परन्तु वह उसे हठात् खींचती है, ऐसा स्वप्न भी मरण-सूचक होता है।

प्रेतप्रव्रजितैः श्लेषः पानं च मधुतैलयोः।
नर्तनं पङ्कदिग्धस्य तच्छ्लेषो वा न शर्मणे।।२१।।

स्वप्न में प्रेतों या प्रव्रजितों (भिक्षुओं) के साथ आलिङ्गन, मधु एवं तैल का पान, पंकलिप्त अवस्था में नृत्य करना अथवा पंकलिप्त व्यक्ति का आलिङ्गन करना- ये सब रोगी के अशुभ-सूचक हैं।

पतनं पर्वतादिभ्यो बन्धनं च पराजयः।
काकाद्यैर्लुञ्चनं पातस्तारादीनां विरुध्यते।।२२।।

स्वप्न में पर्वत से गिरना, बन्धन या पराजय होना, काक (कौए) आदि पक्षियों द्वारा लुञ्चन (नोचना), तारे आदि को गिरते हुए देखना- ये सब अशुभ सूचक होते हैं।

यूप-किंशुक-वल्मीक-पारिभद्राभिरोहणम्।
तैल-कर्पास-पिण्याक-लोहावाप्तिर्विपत्तये।।२३।।

स्वप्न में यूप (खम्बा), किंशुक (ढाक के पेड़) एवं वल्मीक (बाँम्बी के ऊपर चढ़ना), तेल, कपास, पिण्याक (खल) एवं लोह की प्राप्ति होना मृत्यु-सूचक है।

विवाहकरणं स्वप्ने रक्तस्रग्वस्त्रधारणम्।
स्रोतसा हरणं नेष्टं पक्वमांसस्य भोजनम्।।२४।।

स्वप्न में विवाह करना, लाल वस्त्र व लाल माला धारण करना, स्रोत द्वारा बहाया जाना एवं पके मांस का भोजन मृत्यु-सूचक होता है।

स्वप्नानेवंविधान् दृष्ट्वा विविधानपरानपि।
स्वस्थो व्याधिमवाप्नोति व्याधितश्च भवान्तरम्।।२५।।

पूर्ववर्णित अथवा इसी प्रकार के अन्य स्वप्नों को देखकर स्वस्थ व्यक्ति अस्वस्थ हो जाता है तथा अस्वस्थ व्यक्ति परलोक को प्राप्त हो जाता है।

आरोग्यप्राप्ति के सूचक शुभ स्वप्न

देव-विप्र-ध्वज-च्छत्र-वृष-पङ्कज-पार्थिवान्।
शुक्लपुष्पाम्बर-स्वच्छनीरोच्छिखहुताशनम्।।२६।।

देव, विप्र (विद्वान् ब्राह्मण), ध्वज, छत्र, वृष (बैल), पंकज (कमल), पार्थिव (राजा), शुक्ल पुष्प, शुक्ल वस्त्र, स्वच्छ जल एवं प्रज्ज्वलित अग्नि

को देखना शुभ-सूचक होता है।

ध्रियमाणसुहृत्साधु-प्रशस्ताभरणाङ्गना:।
वृषभ-पर्वत-क्षीरिफलवृक्षाभिरोहणम्।।२७।।
दर्पणामिषमाल्याप्तिं तरणं च महाम्भसाम्।
दृष्ट्वा स्वप्नेऽर्थलाभ: स्याद्व्याधिमोक्षश्च सत्वरम्।।२८।।

जीवित मित्र, साधु, प्रशस्त आभूषणों वाली नारी का अवलोकन, वृषभ (बैल), पर्वत एवं क्षीरी (दूध वाले बड़, पीपल, गूलर आदि) फलदार वृक्षों पर चढ़ना, दर्पण, आमिष (अभीष्ट वस्तु) व माला की प्राप्ति और विशाल जलाशय का पार करना- इन बातों को स्वप्न में देखने से अर्थलाभ होता है तथा शीघ्र ही रोगमुक्ति हो जाती है।

अशुभ-सूचक दूत

विजाति-व्यङ्ग-पाषण्ड-पाशदण्डायुधोद्धृता:।
रक्तासितविजीर्णैकवस्त्रा नेष्टाभिधायिन:।।२९।।
करावमर्दि-मुक्ताश्रु-स्नेहाभ्यक्तास्तृणच्छिद:।
स्त्री-नपुंसक-बाह्याङ्ग-देशसंश्लिष्टपाणय:।।३०।।
खरोष्ट्रमहिषारूढा: प्लुतगद्गदभाषिण:।
एते दूता विरुध्यन्ते प्रशस्ताश्च विपर्यया:।।३१।।

विजाति, विकलांग एवं पाषण्ड दूत, पाश (फन्दा) तथा दण्ड व आयुध को हाथ में उठाकर आए दूत, लाल, काले और जीर्ण वस्त्रों वाले रोगी के दूत शुभसूचक नहीं होते हैं।

करावमर्दी (हाथ मसलने वाले), मुक्ताश्रु (आँसू बहाने वाले), स्नेह (तेल आदि) से लिप्त, तिनका तोड़ने वाले, स्त्री, नपुंसक, बाह्यांग-देशसंशलिष्टपाणि (?), गधे, ऊँट व भैंसे पर चढ़े हुए, प्लुत स्वर वाले एवं गद्गद (लड़खड़ाती वाणी से) भाषण करने वाले- ये दूत शुभ के विरोधी होते

हैं- अर्थात् रोगी का अनिष्ट सूचित करते हैं। इनसे ठीक विपरीत अवस्था वाले दूत शुभ-सूचक होते हैं।

वैद्य के लिए शुभ शकुन

प्रयाणे गज-जीमूत-दुन्दुभिध्वनिरिष्यते।
रत्न-स्रगामिष-च्छत्र-पूर्णकुम्भादि-दर्शनम्।।३२।।

वैद्य के चिकित्सार्थ प्रस्थान करते समय गज (हाथी), जीमूत (मेघ) एवं दुन्दुभि की ध्वनि शुभसूचक होती है तथा रत्न, माला, आमिष (मनपसन्द वस्तु), छत्र एवं पूर्ण कुम्भ का दर्शन भी शुभसूचक होता है।

पुन्नामानः खगा वामाः स्त्र्याख्या दक्षिणसंश्रयाः।
प्रस्थाने फलदा ज्ञेयाः प्रवेशे च विलोमगाः।।३३।।

प्रस्थान काल में पुरुष नाम वाले (पुल्लिङ्ग संज्ञा वाले) पक्षियों का वाम भाग में स्थित होना तथा स्त्रीलिङ्ग नाम वाले पक्षियों का दक्षिण भाग में स्थित होना शुभफल-दायक होता है। नगर आदि में प्रवेश करते समय तो इन पक्षियों की पूर्वोक्त स्थिति से विपरीत स्थिति होना ही शुभ-सूचक होता है- अर्थात् प्रवेशकाल में पुन्नामा पक्षी दक्षिण भाग में तथा स्त्रीनामा पक्षी वामभाग में दिखने पर शुभ-सूचक होते हैं।

तोरण-ध्वज-सक्षीर-फल-पुष्पतरुस्थिताः।
सव्यापसव्यगाः शस्ताः सर्वे वल्गुरुताः खगाः।।३४।।

तोरण, ध्वज एवं सक्षीर वृक्ष (दूध वाले वृक्ष- बड़, पीपल आदि) के ऊपर बैठे हुए, फल व पुष्प वाले वृक्ष पर बैठे हुए तथा दाँई ओर अथवा बाँई ओर मधुर ध्वनि करते हुए पक्षियों का दिखना शुभसूचक होता है।

प्रदक्षिणेतरं शस्तं गमनं श्व-शृगालयोः।
दर्शनं सततं नेष्टं गोधा-सरट-भोगिनाम्।।३५।।

कुत्ते एवं गीदड़ का बाँई तरफ जाना शुभ-सूचक होता है। गोधा (गोह), सरट (छिपकली) एवं सर्पों का दिखना शुभ-सूचक नहीं होता है।

अरिष्टज्ञान से चिकित्सा में सफलता

एवं परीक्ष्य यत्नेन यः कुर्यात् कर्म निश्चितम्।
स बिभर्ति यशोमालामम्लानां साधुसंसदि।। ३६।।

इस प्रकार के निमित्तों से रोगी की आयु-परीक्षा करने के उपरान्त जो वैद्य चिकित्सा का निर्णय लेता है, वहीं सज्जनों के समूह में अम्लान (उज्ज्वल) यशोमाला के धारण करता है, अर्थात् चिकित्सा में सफल होकर यशस्वी बनता है।

।। इति अरिष्टाध्यायः चतुर्थः समाप्तः।।

पञ्चम अध्याय

ज्वर

ज्वर की उत्पत्ति एवं भेद

दक्षापमानसंक्रुद्ध-रुद्रनिःश्वाससम्भवः।
ज्वरोऽष्टधा पृथग् द्वन्द्वसङ्घातागन्तुजः स्मृतः।।१।।

दक्ष द्वारा किए गए अपमान से क्रुद्ध भगवान् रुद्र के निश्वास से ज्वर उत्पन्न हुआ था, ऐसी परम्परागत मान्यता है, वस्तुतः यह एक प्रतीकात्मक कथन है; जिस प्रकार अत्यधिक क्रोध होने पर जठराग्नि काम करना बन्द कर देती है और शरीर में सन्ताप प्रकट हो जाता है, उसी प्रकार मलों के कुपित होने पर भी जठराग्नि काम करना बन्द कर देती है तथा शरीर में ताप प्रकट हो जाता है, यही ज्वरोत्पत्ति की प्रक्रिया है।

यह ज्वर आठ प्रकार का होता है- १. वातज, २. पित्तज, ३. कफज, ४. वातपित्तज, ५. वातकफज, ६. कफपित्तज, ७. संघातज, ८. आगन्तुज (चोट आदि के प्रभाव से होने वाला)।

ज्वर-निदान

मिथ्याहार-विहारोत्था दोषा ह्यामाशयाश्रयाः।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः।।२।।

मिथ्या आहार विहार से उत्पन्न आमाशयगत दोष कोष्ठाग्नि (जठराग्नि) को बाहर निकालकर ज्वर पैदा कर देते हैं। ये तीनों दोष रसानुग (रसानुगामी) होते हैं।

वातिक ज्वर के लक्षण

शीतकम्प-भ्रमोल्लाप-रोमहर्ष-विजृम्भणम्।
शिर:कट्यूरुपाश्वर्वार्त्तिः पिण्डिकोद्वेष्टनं तृषा।।३।।
नेत्रत्वङ्-नख-निष्यन्द-कृष्णतास्यकषायता।
हनुरुक्-शुष्ककासौ च वातिकज्वरलक्षणम्।।४।।

शीत (सर्दी लगना), कम्प (कम्पन होना), भ्रम (चक्कर आना), उल्लाप (कातरध्वनि/पीड़ा के कारण कराहना), रोमहर्ष (रोंगटे खड़े होना), विजृम्भण (जम्भाई आना), सिर, कमर, ऊरु (जंघा) व पार्श्व (बगल) में पीड़ा, पिण्डिकोद्वेष्टन (पिण्डलियों का ऐंठना), तृषा (अधिक प्यास लगना), नेत्र, त्वचा एवं नखों से निष्यन्द (स्राव) होना, इनका कालापन, मुख का कसैलापन, हनुरुक् (ठोडी में पीड़ा होना) एवं सूखी खाँसी- ये वातिकज्वर के लक्षण होते हैं।

पैत्तिक ज्वर के लक्षण

तीव्रोष्णदाहतृण्मूर्छा-स्वेदास्यकटुताभ्रमाः।
प्रलापो घ्राणकण्ठोष्ठमुखपाकोऽक्षिसाश्रुता।।५।।
शीताभिलाषिता पीतमलनेत्रनखत्वचः।
तिक्तोद्गारातिसारौ च पैत्तिकज्वरलक्षणम्।।६।।

तीव्र उष्णता (ताप), दाह (जलन), तृषा, मूर्छा, स्वेद, मुख का चरपरापन, भ्रम, प्रलाप तथा नाक, गला, ओठ व मुख का पकना, आँखों से आँसू आना, शीताभिलाषिता (शीतल भोज्य पदार्थों के खाने की इच्छा), मल, नेत्र, नख व त्वचा का पीलापन, तिक्तोद्गार (कड़वी डकार आना) एवं अतिसार (दस्त होना)- ये पैत्तिक ज्वर के लक्षण होते हैं।

कफज ज्वर के लक्षण

श्वासकासप्रतिश्याय-प्रसेकारुचिच्छर्दयः।
निद्रा-गुरुत्व-हल्लास-स्तैमित्यं मधुरास्यता।।७।।

शीतरोमाञ्चता श्वैत्यं मलाक्षि-करज-त्वचाम्।
उष्णाभिलाषिता चेति श्लैष्मिकज्वरलक्षणम्।।८।।

श्वास, कास, प्रतिश्याय, प्रसेक, अरुचि, छर्दि, निद्रा, गुरुत्व, हल्लास, स्तैमित्य (स्तब्धता), मधुरास्यता (मुँह का मीठा होना), शीत के कारण रोंगटे खड़े होना, नेत्र, नख, त्वचा एवं मल का श्वेत होना, उष्णाभिलाषिता (गर्म पदार्थ खाने की इच्छा)- ये कफज ज्वर के लक्षण होते हैं।

पित्तज्वर के लक्षण

तृष्णा-विदाह-कण्ठास्य-शोष-हर्ष-प्रजागरैः।
छर्दि-पर्व-शिरोभङ्गैर्वातपित्तज्वरं वदेत्।।९।।

तृष्णा, विदाह, कण्ठ व मुँह का सूखना, हर्ष, प्रजागर, छर्दि, पर्वभंग, एवं शिरोभंग- इन लक्षणों से वातपित्तजन्य ज्वर की पहचान करनी चाहिए।

वातकफज ज्वर के लक्षण

तन्द्रा-स्तैमित्य-सन्ताप-पर्व-मूर्धार्त्तिगौरवैः।
शीत-कासारुचि-स्वेदैर्विद्याद्वातकफात्मकम्।।१०।।

तन्द्रा, स्तैमित्य, सन्ताप, पर्व (जोड़ों) में एवं सिर में पीड़ा एवं गौरव (भारीपन), शीत (सर्दी लगना), कास (खांसी आना), अरुचि (भोजन के प्रति अनिच्छा) एवं स्वेद- इन लक्षणों से वातकफात्मक ज्वर की पहचान करें।

कफपित्तज ज्वर के लक्षण

शीतदाहारुचि-स्वेद-कासतन्द्रास्य-तिक्तता।
मोह-साद-पिपासाश्च कफपित्त-ज्वराकृतिः।।११।।

शीत, दाह, अरुचि, स्वेद, कास, तन्द्रा, आस्यतिक्तता (मुँह का कड़वापन), मोह, साद (अंगों में टूटन) एवं पिपासा- ये कफपित्तज ज्वर के लक्षण हैं।

सन्निपात ज्वर के लक्षण

सन्ध्यस्थि-मूर्धरुग्दाह-शीततन्द्रारुचिभ्रमाः।
कण्ठकूजन-कर्णार्त्ती रक्तनिर्भुग्ननेत्रता।।१२।।
पित्तास्रष्ठीवनं मूर्छा तृष्णा निद्राक्षयो निशि।
जिह्वा दग्धा खरस्पर्शा श्यावरक्ताङ्ग-कोठता।।१३।।
विपाकगुरुता श्वासः सन्निपातज्वराकृतिः।
सर्वरूपान्वितोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्योऽन्यथा मतः।।१४।।

सन्धि, अस्थि एवं सिर में दर्द होना, दाह, शीत, तन्द्रा, अरुचि, भ्रम, कण्ठकूजन, कान में दर्द, आँखों की लालिमा, थूक में पित्त मिले खून का आना, मूर्छा, तृष्णा, रात को नींद न आना, जिह्वा का जला हुआ-सा होना, जिह्वा का स्पर्श में कठोर हो जाना, श्याव (कृष्ण) एवं रक्त वर्ण के कोठ (चकत्ते) हो जाना, विपाकगुरुता (पचने में भारीपन/देर से पाचन) तथा श्वास- ये सन्निपात-ज्वर- अर्थात् तीनों दोषों के एक साथ कुपित होने से उत्पन्न ज्वर के लक्षण होते हैं। विविध रूपों से युक्त यह ज्वर असाध्य अथवा कृच्छ्रसाध्य माना जाता है।

आगन्तु ज्वर का स्वरूप

अभिघाताभिचाराभ्यामभिष्वङ्गाच्च शापतः।
आगन्तुर्जायते दोषैर्यथास्वं तं विनिर्दिशेत्।।१५।।

अभिघात (चोट लगने) से, अभिचार (तन्त्र-मन्त्र आदि की अभिचार क्रिया) से, अभिष्वङ्ग (विषयों में इन्द्रियों की आसक्ति) से तथा किसी के शाप (आक्रोश) से आगन्तुज ज्वर होता है। उसके लक्षण भी पूर्वोक्त प्रकार से दोषों के अनुसार ही समझने चाहिए।

उचित-अनुचित लङ्घन के परिणाम

बलाविरोधि निर्दिष्टं ज्वरादौ लङ्घनं ज्वरात्।
ऋतेऽनिलश्रमक्रोध-शोक-कास-क्षयोद्भवात्।।१६।।

ज्वर की चिकित्सा करते समय आरम्भ में बलाविरोधी (शक्ति के अनुसार) लंघन (उपवास) करना चाहिए, परन्तु वातजन्य ज्वर में लंघन नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार श्रम, क्रोध, शोक अथवा कास से उत्पन्न ज्वर में भी लंघन नहीं करना चाहिए।

क्षुत्तृण्मलानुलोमत्वं लाघवं साधु लङ्घिते।
शोषतन्द्राभ्रम-श्वास-क्लमाः स्युरतिलङ्घिते।।१७।।

विधिवत् लंघन से भूख-प्यास लगने लगती है। मलों का अनुलोमन हो जाता है तथा शरीर में हल्कापन व स्फूर्ति आती है। अतिलंघन से शोष (तपेदिक/टी.बी.), तन्द्रा, भ्रम, श्वास व क्लम जैसे कष्ट पैदा हो जाते हैं। अत: लंघन सीमित ही करना चाहिए।

ज्वर में जल पीने की विधि

कफवातज्वरे देयं जलमुष्णं पिपासवे।
पित्तमद्यविषोत्थेषु तिक्तकैः शृतशीतलम्।।१८।।

कफवात-जन्य ज्वर में प्यास की स्थिति में रोगी को उष्ण जल देना चाहिए। पित्तजन्य, मद्यजन्य व विषजन्य ज्वर में तिक्त पदार्थों के साथ उबालकर शीतल किया हुआ जल देना चाहिए।

विश्वाम्बु-पर्पटोशीर-घन-चन्दनसाधितम्।
दद्यात् सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वरदाहनुत्।।१९।।

इसी प्रकार पित्तजन्य ज्वर में विश्वा (शुण्ठी), अम्बु (उदीच्य), पर्पट, उशीर, मुस्तक एवं चन्दन के साथ उबालकर अच्छी तरह शीतल किया हुआ जल देना चाहिए। यह तृषा, छर्दि, ज्वर एवं दाह को दूर कर देता है।

ज्वर में पेया का विधान

लङ्घिताय हिता पेया यथास्वं पाचनैः कृता।
सविश्वो वाट्यमण्डो वा शाल्यन्नं वाच्छयूषवत्।।२०।।

ज्वर के कारण लंघन (उपवास) कर चुके रोगी के लिए दोषों के अनुसार पाचन-द्रव्यों से साधित पेया देनी चाहिए अथवा सोंठ युक्त वाट्यमण्ड (चार गुना पानी में पकाए तुषरहित यव का मण्ड) देना चाहिए। इसी प्रकार ज्वर के कारण लंघन कर चुके व्यक्ति के लिए उत्तम यूष के साथ शाल्यन्न (भात) देना भी उपयोगी होता है।

ज्वर में पाचन व शमनीय द्रव्य देने का समय

पाचनं शमनीयं वा पातव्यं सप्तमे दिने।
तदेव पीतमत्यर्थं दोषकृत् तरुणे ज्वरे।।२१।।

पाचन या शमनीय द्रव्य सातवें दिन पीना चाहिए। यदि तरुण ज्वर में इसका सेवन किया जाता है तो यह अतीव दोषवर्धक होता है। क्योंकि प्राय: छह दिन तक लंघन या अति लघु भोज्य लेने से दोषों का परिपाक हो चुका होता है। अत: ऐसी स्थिति में पाचन व शमनीय द्रव्य हितकर होते हैं, इससे पहले दोषों व मलों की अपरिपक्व अवस्था में नहीं। अन्यत्र भी कहा है-

ज्वराभिभूते षडहादनन्तरं विपक्वदोषे कृतलङ्घनादिभि:।
यद् भेषजं वैद्यवर: प्रयोजयेदसंशयं हन्त्यचिरेण रोगान्।।

अर्थात् ज्वरग्रस्त होने पर छह दिन तक लंघन आदि से दोषों के विपक्व होने पर वैद्यजन जिस उचित भेषज (औषध) का प्रयोग करते हैं, वह नि:सन्देह शीघ्र ही रोग को नष्ट कर देता है।

वातज्वर में दोषपाचन योग

बिल्वादिपञ्चमूलस्य क्वाथ: स्याद्वातिके ज्वरे।
पाचनं पिप्पलीमूल-गुडूची-विश्वजोऽथवा।।२२।।

वातिक ज्वर में बिल्वादि पञ्चमूल का क्वाथ देना चाहिए अथवा पिप्पलीमूल, गुडूची एवं सोंठ से युक्त पाचनक्वाथ पिलाना चाहिए।

वातज्वर-नाशक योग

क्वाथोऽमृताब्ददु:स्पर्शविश्वानामनिले ज्वरे।
धात्र्यब्दपञ्चमूलोत्थ: सामृताधान्यकोऽपर:।।२३।।

वातज्वर में अमृता, अब्द (मुस्तक), दुस्पर्श (यवास/जवासा) एवं सोंठ का क्वाथ देना चाहिए। इसी ज्वर में धात्री (आँवला), अब्द (मुस्तक) एवं गिलोय व धनिया सहित पञ्चमूल का क्वाथ देना चाहिए।

किराताब्दामृतोदीच्य-बृहतीद्वय-गोक्षुरै:।
सस्थिराकलशीविश्वै: क्वाथो वातज्वरापह:।।२४।।

चिरायता, अब्द (मुस्तक), अमृता (गिलोय), उदीच्य (सुगन्धबाला), छोटी-बड़ी कण्टकारी, गोखरू, स्थिरा, कलशी एवं सोंठ का क्वाथ वातज्वर-नाशक होता है।

शारिवापिप्पली-द्राक्षा-शतपुष्पा-हरेणव:।
दारु वृक्षादनी रास्ना सरलं सैलवालुकम्।।२५।।
अमृतांशुमतीद्राक्षा वाट्यालक-समन्विता:।
रास्नामधुकशम्याक-काश्मरी-शाल्मली-बला:।।२६।।
त्रायमाणा समृद्वीका श्रीपर्णी-शारिवामृता:।
क्वाथा: श्लोकार्धिका वातज्वरघ्ना: स्युर्गुडान्विता:।।२७।।

निम्नलिखित पाँच वर्गों की ओषधियों के गुड़ मिश्रित क्वाथ का सेवन वातज्वर को नष्ट कर देता है-

१. शारिवा, पिप्पली, द्राक्षा, शतपुष्पा एवं हरेणु।
२. देवदारु, वृक्षादनी (बान्दा लता), रास्ना, सरल एवं एलवालु।
३. अमृता, अंशुमती, द्राक्षा एवं वाट्यालक।
४. रास्ना मधुक, शम्याक, काश्मरी, शाल्मली एवं बला।
५. त्रायमाणा, मृद्वीका (मुनक्का), श्रीपर्णी, शारिवा एवं अमृता।

पित्तज्वर में पाचन योग

धात्रीद्राक्षाम्बुभूनिम्ब-क्वाथः स्यात् पाचनं ज्वरे।
पैत्तिके कटुका-निम्ब-द्राक्षा-मधुकजोऽपि वा।।२८।।

पैत्तिक ज्वर में धात्री (आँवला) एवं द्राक्षा (मुनक्का), अम्बु (उदीच्य) तथा भूनिम्ब (चिरायता) का क्वाथ पाचन होता है। इसी प्रकार कटुका (कुटकी), निम्ब, द्राक्षा एवं मधुक (मुलेठी) का क्वाथ भी पित्तज्वर में पाचन होता है।

पित्तज्वर-नाशक योग

पित्तज्वरेऽब्ददुस्पर्श-किरातपर्पटोद्भवः।
कषायो वत्सतिक्ताब्दैरपरो मधुसंयुतः।।२९।।

पित्तज्वर में अब्द (मुस्तक), दुस्पर्श (जवासा), किरात (चिरायता) एवं पर्पट (पित्तपापड़ा) का क्वाथ उपयोगी होता है। इसी प्रकार वत्स (सोनापाठा), तिक्ता (कुटकी) एवं अब्द (मुस्तक) का क्वाथ बनाकर मधु के साथ देने से भी पित्तज्वर शान्त होता है।

लोध्रोत्पलामृतापद्मशारिवाणां सशर्करः।
क्वाथः पित्तज्वरं हन्यादथवा पर्पटोद्भवः।।३०।।

लोध्र, उत्पल, अमृता, पद्म एवं शारिवा का शर्करा सहित क्वाथ पित्तज्वर को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार पित्तपापड़ा का क्वाथ भी पित्तज्वर को नष्ट करता है।

त्रायन्तीपर्पटोदीच्यतिक्ताभूनिम्बदुःस्पृशात्।
कषायो मधुसंयुक्तः पित्तज्वरमुदस्यति।।३१।।

त्रायन्ती, पर्पट (पित्तपापड़ा), उदीच्य (सुगन्धबाला), तिक्ता (कुटकी), भूनिम्ब (चिरायता), दुस्पर्श (जवासा)- इनका मधुयुक्त कषाय पित्तज्वर को दूर कर देता है।

तिक्ताकट्फलवत्साब्दनिर्यूहः पैत्तिके ज्वरे।
गणयोर्वा सितायुक्तः शारिवोत्पलपूर्वयोः।।३२।।

तिक्ता, कट्फल, वत्स एवं मुस्तक का निर्यूह पैत्तिकज्वर में देना चाहिए। पूर्वनिर्दिष्ट शारिवादिगण व उत्पलादिगण का शर्करायुक्त क्वाथ भी पित्तज्वर-नाशक होता है।

निर्यूहोऽब्दाभयाद्राक्षातिक्ताशम्याकपर्पटात्।
ससिताकल्कपेष्या वा तिक्तापित्तज्वरे मता।।३३।।

अब्द (मुस्तक), अभया, द्राक्षा, तिक्ता, शम्याक एवं पर्पट (पित्तपापड़ा) से बनाया हुआ निर्यूह पित्तज्वर में देना चाहिए। इसी प्रकार सिता (शर्करा) सहित तिक्त रस वाली कल्क के साथ बनाई पेया पित्तज्वर में उपयोगी होती है।

तिक्तायासकभूनिम्बश्यामापर्पटवासकैः।
शृतं जलं सितायुक्तं रक्तपित्तज्वरं जयेत्।।३४।।

तिक्ता, यासक, भूनिम्ब, श्यामा, पर्पट एवं वासक के साथ उबाला हुआ शर्करायुक्त जल रक्तपित्त-ज्वर को दूर कर देता है।

कफज्वर में पाचन योग

मातुलुंगशिफाविश्व-वयस्थाग्रन्थिकोद्भवम्।
कफज्वरेऽम्बु सक्षारं पाचनं वा कणादिजम्।।३५।।

मातुलुंगशिफा (निम्बू की जड़) विश्वा (शुण्ठी), वयस्था (हरड़) एवं ग्रन्थिक (पिप्पलीमूल) से बनाया क्वाथ कफज ज्वर में देना चाहिए। पिप्पल्यादि गण से बनाया क्षारसहित क्वाथ भी पाचन होता है। अतः कफज्वर में हितकर होता है।

कफज्वर-नाशक योग

तिक्ताहरीतकीचव्यदेवदारुनिशाः समाः।
अम्बष्ठाकटुकामूर्वा-करञ्जारिष्टकूलकाः।।३६।।

नागरातिविषाकुष्ठदारुदु:स्पर्शमुस्तका:।
शोषणो नक्तमालश्च श्रीपर्णीसरलामृता:।।३७।।
नागपुष्पं हरिद्रे द्वे व्योषतिक्ते सवत्सके।
शुण्ठी दुरालभावासामुस्तकेन समन्विता।।३८।।
शम्याकं कौटजं वल्कं मूर्वा-सुरस-केम्बुकम्।
श्लोकार्धसम्मिता ह्येते योगा: श्लेष्मज्वरापहा:।।३९।।

निम्न सात वर्गों में निर्दिष्ट ओषधियों द्वारा बनाया गया क्वाथ श्लेष्मज्वर-नाशक होता है।

१. तिक्ता, हरीतकी, चव्य, देवदारु, हल्दी।
२. अम्बष्ठा, कटुका, मूर्वा, करञ्ज, अरिष्ट एवं कुलक।
३. नागर, अतिविषा, कुष्ठ, दारु, दुस्पर्श एवं मुस्तक।
४. शोषण (श्योनाक), नक्तमाल, श्रीपर्णी, सरल एवं अमृता।
५. नागपुष्प, दोनों हरड़, व्योष (त्रिकटु), तिक्ता एवं वत्सक।
६. शुण्ठी, दुरालभा, वासा एवं मुस्तक।
७. शम्याक, कुटजवल्क, मूर्वा, सुरस एवं केम्बुक।

निम्बविश्वामृता-दारुशटीभूनिम्बपौष्करम्।
पिप्पल्यो बृहती चैव क्वाथो हन्ति कफज्वरम्।।४०।।

निम्ब, विश्वा (शुण्ठी), अमृता (गिलोय), दारु (दारुहल्दी), शटी, भूनिम्ब (चिरायता), पौष्कर, पिप्पली, बृहती- इनका क्वाथ कफज्वर को नष्ट करता है।

सप्तपर्णामृतानिम्बस्फूर्जकै: साधितं जलम्।
पेयं माक्षिकसंयुक्तं बलासज्वरशान्तये।।४१।।

सप्तपर्ण, अमृता, निम्ब, स्फूर्जक- इनसे साधित क्वाथ को मधु के साथ मिलाकर पीना चाहिए। इससे कफज्वर शान्त हो जाता है।

वातपित्तज्वर-नाशक योग

निदिग्धिकाबलारास्ना-त्रायमाणामृतायुतैः।
मसूरविदलैः क्वाथो वातपित्तज्वरं हरेत्।।४२।।

निदिग्धिका (कण्टकारी), बला, रास्ना, त्रायमाणा एवं अमृता के साथ मसूर की दाल मिलाकर बनाया गया क्वाथ वातपित्त-ज्वर को नष्ट कर देता है।

त्रिफलाशाल्मलीरास्ना-राजवृक्षाटरूषकैः।
शृतमम्बु हरेत् तूर्णं वातपित्तोद्भवं ज्वरम्।।४३।।

त्रिफला, शाल्मली, रास्ना, राजवृक्ष (आरग्वध) एवं आटरूषक (वासा) से बनाया गया क्वाथ शीघ्र ही वातपित्त-ज्वर को हर लेता है।

रक्तपित्तज्वर-नाशक योग

मधुकं शारिवे द्राक्षा मधूकं चन्दनोत्पलैः।
काश्मरीपद्मकलोध्रं त्रिफलापद्मकेसरम्।।४४।।
परूषकं मृणालं च न्यसेदुत्तमवारिणि।
मधुलाजासितायुक्तं तत्पीतमुषितं निशि।।४५।।
वातपित्तज्वरे दाह-तृष्णामूर्छावमिभ्रमान्।
शमयेद् रक्तपित्तं च जीमूतमिव मारुतः।।४६।।

मधुक (मुलेठी), शारिवा, द्राक्षा, मधूक (महुआ), चन्दन, उत्पल, काश्मरी, पद्मक, लोध्र, त्रिफला, पद्मकेसर, परूषक एवं मृणाल को उत्तम स्वच्छ जल में डाल दें, इसमें मधु, लाजा एवं शर्करा मिलाकर रातभर रखें। इस प्रकार तैयार किए गए जल के पीने से वातपित्त-ज्वर, दाह, तृष्णा, मूर्छा, वमि एवं भ्रम इत्यादि विकार ठीक उसी प्रकार से नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार वायुवेग से मेघ।

कफवातजज्वर-नाशक योग

समधुः स्यात्कणाद्राक्षाक्वाथो वातकफज्वरे।
राजवृक्षगणोत्थो वा पेष्याजाजीगुडेन वा।।४७।।
दारुपर्पटभार्ग्यब्द-वचा-धान्यक-कट्फलैः।
साभयाविश्वभूतिकैः क्वाथो हिंगुमधूत्कटः।।४८।।
कफवातज्वरे पीतो हिक्काश्वासगलग्रहान्।
कासशोषप्रसेकांश्च हन्यात् तरुमिवाशनिः।।४९।।

राजवृक्ष-गण के साथ तैयार किया गया अथवा पेष्या, अजाजी एवं गुड़ से तैयार किया गया- दारु (दारुहल्दी), पर्पट, भार्गी, अब्द (मुस्तक), वचा, धान्यक (धनिया), कट्फल, हरड़, सोंठ, भूतिक (अजवायन)- इनका हींग व मधु के साथ मिश्रित क्वाथ कफज्वर में पीना चाहिए। यह हिक्का, श्वास, गलग्रह, कास, शोष एवं प्रसेक आदि विकारों को ठीक उसी प्रकार से नष्ट कर देता है, जिस प्रकार से बिजली पेड़ को नष्ट कर देती है।

कफपित्तज्वर-नाशक योग

यष्टीमधुबलारिष्ट-पटोलत्रिफलाशृतः।
निर्यूहः कफपित्तोत्थं ज्वरं क्षिप्रमपोहति।।५०।।

यष्टीमधु (मुलेठी), बला, अरिष्ट, पटोल एवं त्रिफला को उबालकर तैयार किया गया निर्यूह कफपित्तजन्य ज्वर को शीघ्र ही दूर कर देता है।

निशाद्वयाम्बुदोशीर-मधुकारग्वधोद्भवः।
माक्षिकाढ्यः कषायोऽयं कफपित्तज्वरान्तकृत्।।५१।।

दोनों हल्दी (हल्दी एव दारुहल्दी), अम्बुद (मुस्तक), उशीर (खस), मधुक (मुलेठी) एवं आरग्वध (अमलतास) से तैयार किया गया मधुमिश्रित कषाय कफपित्तजन्य ज्वर को नष्ट कर देता है।

त्रिदोषज्वर-नाशक योग

दोषस्यैकस्य संवृद्ध्या शमनेनोच्छ्रितस्य वा।
श्लेष्मस्थानानुवृत्त्या वा ज्वरं हन्यात्त्रिदोषजम्।।५२।।

यह योग इनमें से क्षीण हुए किसी दोष की वृद्धि एवं बढ़े हुए किसी दोष का शमन करते हुए तथा कफ को अपनी सहज स्थिति में स्थापित करते हुए त्रिदोषज ज्वर को नष्ट कर देता है।

ध्यामक-त्रिफला-दारु-पद्मकोशीर-चन्दनैः।
तिक्तापरूषकाद्यैः स्यात्सन्निपातेषु साधितम्।।५३।।
व्योषाब्दत्रिफलातिक्तापटोलारिष्टवत्सकैः।
सभूनिम्बामृतापाठैस्त्रिदोषज्वरहृज्जलम्।।५४।।

ध्यामक (कत्तृण), त्रिफला, दारु (दारुहल्दी), पद्मक (पद्माख), उशीर (खस), चन्दन, तिक्ता (कुटकी) एवं परुषकादि गण के द्रव्यों से साधित क्वाथ का सान्निपातिक ज्वरों में प्रयोग करना चाहिए।

त्रिकटु, अब्द (मुस्तक), त्रिफला, तिक्ता (कुटकी), पटोल, अरिष्ट (नीम), वत्सक, भूनिम्ब (चिरायता), अमृता (गिलोय) एवं पाठा से साधित क्वाथ त्रिदोषजन्य ज्वर को नष्ट करता है।

त्रिदोषज्वरानन्तरभावी कर्णमूल-शोथ की चिकित्सा

तस्यान्ते कर्णमूले स्याच्छोफः कृच्छ्रप्रतिक्रियः।
तं जयेच्छोणितस्राव-घृतपान-प्रलेपनैः।।५५।।

इस (सन्निपात-जन्य) ज्वर के अन्त में कर्णमूल में सूजन हो जाती है, जिसका प्रतिकार कठिन होता है। उसे शोणितस्राव (रक्तमोक्षण), घृतपान एवं प्रलेपन से दूर करना चाहिए।

त्रिदोष ज्वरजन्य अभिन्यास की चिकित्सा

त्रयो दोषाः समाक्षिप्य चेष्टा वाग्देहचेतसाम्।।
अभिन्यासं प्रकुर्वन्ति प्राणायतनगोचराः।।५६।।
तेन ग्रस्तं नरं क्षिप्रं प्रत्याख्याय मृतोपमम्।
प्रगृहणीयादलब्धान्तं मज्जत् पात्रमिवाम्भसि।।५७।।
मातुलुङ्गरसं तस्य हिङ्गुशुण्ठीयुतं मुखे।
दद्यात् प्रबोधनं तीक्ष्णकटुतिक्तोपसंहितम्।।५८।।

तीनों दोष शरीर, वाणी व चित्त की चेष्टाओं को खींचकर मर्मस्थानों में स्थापित कर देते हैं। इस प्रकार के विकट रोग से ग्रस्त मृततुल्य व्यक्ति को बचाने के लिए उसके मुख में हींग व सोंठ से युक्त मातुलुंग रस डालना चाहिए, अथवा तीक्ष्ण एवं कटु व तिक्त रस सहित अन्य प्रबोधन द्रव्य मुख में डालने चाहिए। यह योग उसके निकलते प्राणों को ठीक उसी प्रकार पकड़ लेता है, जिस प्रकार से कोई जल में डुबते हुए पात्र को पकड़ लेता है।

मधूकसारसिन्धूत्थवचोषणकणाः समाः।
श्लक्ष्णं पिष्ट्वाम्भसा नस्यं कुर्यात्सञ्ज्ञाप्रबोधनम्।।५९।।

मधूकसार (मधूकरस), सैन्धव लवण, वचा, कालीमिर्च, पीपल- इन्हें समान मात्रा में मिलाकर पानी में पीस लें। सन्निपात ज्वर से संज्ञाहीन (चेतनाहीन) रोगी को इनका नस्य दें, यह उसकी चेतना को लौटा देता है।

शिरीषबीज-गोमूत्र-कृष्णा-मरिच-सैन्धवैः।
अञ्जनं स्यात् प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः।।६०।।

सन्निपात ज्वर में शिरीषबीज, गोमूत्र, कृष्णा, मिर्च एवं सैन्धव लवण, लहसुन, शिला (रसाञ्जन) एवं वचा से तैयार किया गया अञ्जन भी अचेत हुए व्यक्ति की चेतना लौटा देता है- अर्थात् बेहोशी दूर कर देता है।

कृते क्रियाविधावेवं सञ्ज्ञा यस्य न जायते।
पादयोस्तल्ललाटे वा दहेल्लोहशलाकया।।६१।।

इस प्रकार की क्रियाविधि करने पर भी जिस रोगी की चेतना नहीं लौटती, उसके पैरों व ललाट पर गर्म की हुई लोह-शलाका (लोहे की छड़) लगानी चाहिए। इससे रोगी की चेतना लौट आती है।

व्याघ्री दुरालभा भार्गी शटी श्रृंगी सपौष्करम्।
पक्वाम्बु श्लेष्महृत् पेयमभिन्यासप्रशान्तये।।६२।।

व्याघ्री (कण्टकारी), दुरालभा, भार्गी, शटी, श्रृंगी एवं पौष्कर का क्वाथ अभिन्यास (बेहोशी) की निवृत्ति के लिए पिलाना चाहिए।

मातुलुङ्गाश्मभिद्-बिल्वव्याघ्रीपाठोरुवूकजः।
क्वाथो लवणमूत्राढ्योऽभिन्यासानाहशूलनुत्।।६३।।

मातुलुंग, अश्मभिद् (पाषाणभेद), बिल्व, व्याघ्री, पाठा तथा उरुवूक (एरण्ड) से बने क्वाथ में लवण व गोमूत्र मिलाकर पिलाने से अभिन्यास, आनाह व शूल दूर होते हैं।

कारवी पौष्करैरण्डत्रायन्तीवासकामृताः।
दशमूलशटीश्रृंगीयासभार्गीपुनर्नवाः।।६४।।
तुल्या मूत्रेण निष्क्वाथ्य पीताश्चेतोविबोधनाः।
अभिन्यासज्वरायासमाशु घ्नन्ति समुद्धतम्।।६५।।

कारवी (मंगरैल), पौष्कर (पुष्करमूल), एरण्ड, त्रायन्ती (त्रायमाणा), वासक, अमृता, दशमूल, शटी (कपूरकचरी), श्रृंगी, यास, भार्गी व पुनर्नवा को समान मात्रा में लेकर गोमूत्र के साथ उबालकर पिलाने से मूर्छा दूर हो जाती है एवं चेतना लौट आती है। गोमूत्र के साथ प्रयुक्त ये ओषधियाँ प्रबल अभिन्यास-ज्वर को शीघ्र ही नष्ट कर देती हैं।

करञ्जवह्निमञ्जिष्ठा-त्रायन्तीबिल्वकूलकम्।
बृहत्यौ सुषवी व्योषं क्वाथः स्याद्गलशोधनः।।६६।।

करञ्ज, चित्रक, मञ्जिष्ठा, त्रायन्ती, बिल्व, कूलक (पटोल), दोनों प्रकार की बृहती (छोटी व बड़ी कण्टकारी) सुषवी (कारवल्ली/करेला) एवं व्योष (त्रिकटु) से बनाया हुआ क्वाथ गले को शुद्ध करता है। यह प्रबल अभिन्यास-ज्वर को शीघ्र ही नष्ट कर देता है।

पञ्चविध विषमज्वरों की चिकित्सा

धातुस्थानगतैर्दोषैर्जायन्ते विषमज्वराः।
सन्ततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ।।६७।।

धातुस्थान में पहुँचे दोषों से विषमज्वर पैदा होते हैं। ये सन्तत सतत, अन्येद्यु, तृतीयक व चतुर्थक नाम से जाने जाते हैं।

निम्बामृताभयाभद्रापटोलेन्द्रयवाः समाः।
त्रायन्तीकटुकापाठा-शारिवाद्वययोजिताः।।६८।।
पटोलारिष्टमृद्वीका-शम्याकत्रिफलावृषाः।
चन्दनोशीरधान्याब्दा गुडूचीविश्वभेषजाः।।६९।।
देवदारुः स्थिरा शुण्ठी वासा धात्री हरीतकी।
घ्नन्ति पञ्च ज्वरान् पञ्च योगा मधुसितोत्कटाः।।७०।।

आगे लिखी ओषधियों के पाँच वर्गों से बनाए गए क्वाथ में मधु व शर्करा मिलाकर पीने से सन्तत, सतत, अन्येद्यु, तृतीयक एवं चतुर्थक नामक पाँचों प्रकार के विषम ज्वर नष्ट हो जाते हैं- अर्थात् नीचे लिखा प्रत्येक क्वाथ मधु एवं शर्करा के साथ पीने से पाँचों प्रकार के विषम ज्वर को नष्ट कर देता है। इनमें सभी ओषधियों को समान मात्रा में लेना अपेक्षित है-

१. नीम, अमृता, अभया, भद्रा, पटोल, इन्द्रयव।
२. त्रायन्ती, कटुका, पाठा तथा दोनों प्रकार की शारिवा।

३. पटोल, अरिष्ट, मृद्वीका, शम्याक, त्रिफला व वृष (वासक)।
४. चन्दन, उशीर, धान्यक, मुस्तक, गिलोय एवं शुण्ठी (सोंठ)।
५. देवदारु, स्थिरा, शुण्ठी, वासा, धात्री, हरीतकी।

ज्वर में पक्वदोष के निर्हरण हेतु विरेचन

पक्वो ह्यनिर्हृतो दोषो ज्वरिणां स्यान्महात्ययः।
तस्मात् पक्वामकोष्ठानां युक्त्या कार्यं विरेचनम्।।७१।।

ज्वर-रोगियों का पक्व तथा बाहर न निकाला हुआ दोष महात्यय (अति दोषकारक) हो जाता है। इसलिए पक्व आमदोष से युक्त कोष्ठ वाले रोगियों को युक्तिपूर्वक विरेचन कराना चाहिए।

विरेचन योग- १.

मधुकारग्वधद्राक्षातिक्तापाठाफलत्रिकैः।
सपटोलैर्जलं भेदि ज्वरनुच्चेतकी युतम्।।७२।।

मधुक, आरग्वध, द्राक्षा, तिक्ता, पाठा, त्रिफला एवं पटोल तथा 'चेतकी' नामक हरड़ के साथ क्वथित जल भेदी- अर्थात् विरेचक होता है। भाव यह है कि इस योग से पक्व आम दोष वाले रोगी को विरेचन देना चाहिए।

विरेचन योग- २.

पटोलारग्वधतिक्ताविशालात्रिफलात्रिवृत्।
सक्षारो भेदनः क्वाथः सर्वज्वरविशोधनः।।७३।।

पटोल, आरग्वध, तिक्ता, विशाला, त्रिफला एवं त्रिवृत् में क्षार (यवक्षार) मिलाकर बनाया हुआ क्वाथ विरेचक होता है और सभी ज्वरों का निवारण करता है।

विरेचन योग- ३

तिक्ताभया-त्रिवृद्दन्ती-त्रायन्ती-राजवृक्षजः।
क्षाराज्यसैन्धवोपेतः क्वाथो भेदी ज्वरापहः।।७४।।

तिक्ता, अभया, त्रिवृत्, दन्ती, त्रायन्ती, राजवृक्ष, यवक्षार, घृत एवं सैन्धव को मिलाकर बनाया हुआ क्वाथ विरेचक एवं ज्वरहर होता है।

मोदकं त्रिफला कृष्णा त्रिवृच्छ्यामा सिता मधु।
सन्निपातज्वरं शोफं रक्तपित्तं निरस्यति।।७५।।

त्रिफला, तृष्णा, त्रिवृत्, श्यामा से बनाया गया तथा शर्करा एवं मधु के साथ बनाया गया मोदक (लड्डू) सन्निपात ज्वर, शोफ एवं रक्तपित्त ज्वर को दूर कर देता है।

जीर्णज्वर में दूध पथ्य, नवज्वर में विषतुल्य

जीर्णज्वरे कफे क्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपमम्।
तदेव तरुणे पीतं विषवद्धन्ति मानवम्।।७६।।

जीर्ण ज्वर में तथा कफ के क्षीण होने पर दूध अमृत तुल्य होता है। वही नए ज्वर में पीने से विषतुल्य बना हुआ रोगी को मार डालता है। भाव यह है कि नए ज्वर में दूध नहीं पीना चाहिए।

दूध से बने ज्वरहर योग

पञ्चमूल्या शृतं क्षीरं चतुर्गुणजलेन वा।
शिंशपागण्डकाभिर्वा धारोष्णं वा ज्वरापहम्।।७७।।

पञ्चमूली के साथ उबाला हुआ दूध ज्वरहर होता है। चार गुना जल के साथ उबाला हुआ दूध भी ज्वर में हितकर होता है। शिंशपा एवं गण्डकाओं के साथ धारोष्ण दूध का सेवन भी ज्वर-निवारक होता है।

कणा-मधुक-मृद्वीका-बला-चन्दन-शारिवाः।
निष्क्वाथ्य पयसा पीताः क्षिप्रं ज्वरनिवारणाः।।७८।।

पिप्पली, मधुक (मुलेठी), मृद्वीका (मुनक्का), बला, चन्दन एवं शारिवा को जल/दूध के साथ उबालकर पीने से ज्वर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

साधितं बिल्वपेशीभिर्मूलेनामण्डकस्य वा।
सद्यो हन्ति पयः पीतं ज्वरं सपरिकर्तिकम्।।७९।।

बिल्व फल की पेशियों के साथ अथवा आमण्डक (एरण्ड) के मूल के साथ दूध को उबालकर पीने से ज्वर एवं परिकर्त्तिका नष्ट हो जाते हैं।

गुडविश्वबलाव्याघ्रीश्वदंष्ट्राभिः श्रृतं पयः।
श्वयथुज्वरविण्मूत्रविबन्धोपशमं पिबेत्।।८०।।

गुड़, सोंठ, बला, व्याघ्री एवं श्वदंष्ट्रा (गोखरू) के साथ उबालकर पीया हुआ दूध सूजन, ज्वर तथा मल-मूत्र के अवरोध को दूर कर देता है।

ज्वरचिकित्सा में घृत के योगों की उपयोगिता

ज्वरोष्मापीतसाराणां कुर्यात् क्षीरात् परं क्रमम्।
यथाग्निबलमाज्येन सम्पक्वेनेतरेण वा।।८१।।

ज्वरोष्मा (ज्वर के सन्ताप) से आपीतसार (क्षीण हो चुके) मनुष्यों के लिए दूध के अनन्तर अग्निबल (पाचनशक्ति) के अनुसार विशेष प्रकार से सिद्ध घृत के सेवन का क्रम बनाना चाहिए अथवा इसी प्रकार का अन्य बलवर्द्धक भोज्य देना चाहिए।

द्राक्षा आदि से सिद्ध घृतों का वर्णन

द्राक्षासिद्धं पिबेत् सर्पिर्बलया मधुकेन वा।
फलत्रयेण वा सद्यो गुडूच्या वा ज्वरापहम्।।८२।।

द्राक्षा के साथ सिद्ध किए गए घृत का पान करने से सभी ज्वरों का

निवारण हो जाता है। बला, मधुक, त्रिफला या गुडूची (गिलोय) के साथ सिद्ध किया घृत भी शीघ्र ही ज्वरों का निवारण करता है।

वासारिष्टामृताभार्गीपञ्चमूलीफलत्रिकैः।
सयास-मधुकद्राक्षा-काश्मर्यैरक्षसम्मितैः।।८३।।
घृतप्रस्थं विपक्तव्यमेभिर्मात्रामतः पिबेत्।
बृहद्वासाघृतं प्रोक्तमेतत् सर्वज्वरापहम्।।८४।।

वासा, अरिष्ट (नीम), अमृता, भार्गी, पञ्चमूली, त्रिफला, यास, मधुक, द्राक्षा एवं काश्मरी- इन सभी को एक-एक अक्ष परिमाण में लेकर इनके साथ एक प्रस्थ घृत पकाना चाहिए; तदनन्तर उसे मात्रा में पीना चाहिए। यह 'बृहद्वासा घृत' नामक योग सभी ज्वरों को दूर कर देता है।

वृषस्य क्वाथकल्काभ्यां सर्पिः पक्वं समाक्षिकम्।
पानाज्ज्वर-क्षय-श्वास-कास-पाण्ड्वस्र-पित्तनुत्।।८५।।

वृष (वासक) के क्वाथ व कल्क के साथ घृत पकाना चाहिए। इसमें मधु मिलाकर पान करने से यह ज्वर, क्षय, श्वास, कास, पाण्डु एवं रक्तपित्त को दूर कर देता है।

कल्याणक घृत

कुष्ठैलावक्रतालीस-दन्तीदार्वेलवालुकाः।
चन्दनोत्पलमञ्जिष्ठा विशाला बृहतीद्वयम्।।८६।।
हरिद्रे शारिवे पर्ण्यौ कौन्ती पद्मककेसरैः।
विडङ्गस्त्रिफला श्यामा जातीपुष्पं सदाडिमम्।।८७।।
अक्षांशैः सर्पिषः प्रस्थं पचेत् तोयचतुर्गुणे।
एतत् कल्याणकं नाम बलवर्णप्रजाकरम्।।८८।।
ज्वरापस्मारमेहार्शःशोफोन्मादविषापहम्।
वातासृक्पाण्डुतागुल्मश्वासहिक्कोग्रकृच्छ्रनुत्।।८९।।

कूठ, एला (छोटी इलायची), वक्र (तगर), तालीस, दन्ती, दारु, एलवालुक, चन्दन, उत्पल, मञ्जिष्ठा, विशाला (इन्द्रवारुणी), दोनों बृहती, दोनों हरिद्रा, दोनों शारिवा, दोनों पर्णी, कौन्ती, पद्मक, केसर, विडंग, त्रिफला, श्यामा, जातिपुष्प- इन्हें एक-एक अक्ष परिमाण में लेकर इनके साथ चतुर्गुण जल में एक प्रस्थ घृत पकाएं। यह 'कल्याणक' नामक घृत बलदायक, वर्णप्रसादकारक एवं प्रजाकर (सन्तानोत्पत्ति का सामर्थ्य देने वाला) होता है। यह ज्वर अपस्मार, प्रमेह, अर्श, शोफ, उन्माद एवं विष का निवारण करता है। यह घृत वातरक्त, पाण्डुता, गुल्म, श्वास, हिक्का एवं प्रबल मूत्रकृच्छ्र को दूर करता है।

महाकल्याणक घृत

जीवनीयान्वितं पक्वं क्षीरेण दशमूलवत्।
एतदेवाखिलार्त्तिघ्नं महाकल्याणकं स्मृतम्।।९०।।

यही कल्याण घृत जीवनीय ओषधियों व दशमूल को मिलाकर दूध के साथ पकाने से 'महाकल्याण घृत' कहलाता है। यह भी पूर्वोक्त सभी रोगों को नष्ट करता है।

वत्सोशीरस्थिरातिक्ता-चन्दनातिविषाम्बुदाः।
त्रायन्तीशारिवाबिल्व-द्राक्षातामलकीकणाः।।९१।।
धात्री निदिग्धिका चैतैः सिद्धं सर्पिर्ज्वरापहम्।
क्षय-सन्ताप-कासघ्नं हलीमकशिरोर्त्तिनुत्।।९२।।

वत्स, उशीर, स्थिरा, तिक्ता, चन्दन, अतिविषा, अम्बुद (मुस्तक), त्रायन्ती (त्रायमाणा), शारिवा, बिल्व, द्राक्षा, तामलकी, कणा (पिप्पली), धात्री व निदग्धिका (कण्टकारी)- इनके साथ सिद्ध किया घृत ज्वर को नष्ट करता है। यह क्षय, दाह, कास, हलीमक एवं सरदर्द को भी दूर करता है।

घनारिष्ट-स्थिरा-यास-बला-पर्पट-गोक्षुरैः।
त्रायन्ती-धावनी-व्याघ्री-कलशीभिः शृते जले।।९३।।
कल्कश्च पौष्करं द्राक्षा मेदा धात्र्यझटा शटी।
पक्वं घृतं ज्वरं हन्ति क्षय-कास-शिरोरुजाः।।९४।।

मुस्तक, अरिष्ट (निम्ब), स्थिरा, यास, बला, पर्पट, गोक्षुर (गोखरू), त्रायन्ती, धावनी (कण्टकारी), व्याघ्री (बृहती) एवं कलशी (पृष्टपर्णी) के साथ क्वथित जल में पौष्कर कल्क, द्राक्षा, मेदा, धात्री, अझटा (भूम्यामलकी/भुई आंवला) एवं शटी (कपूरकचरी) के साथ पकाया घृत क्षय, कास एवं शिरोवेदना को नष्ट करता है।

ज्वरचिकित्सा में वस्तिप्रयोग

जीर्णज्वरेषु सर्वेषु दोषे पक्वाशयाश्रिते।
स्नेहवस्तिः प्रयोक्तव्यः सनिरूहो यथाविधि।।९५।।

सभी जीर्ण ज्वरों में दोष के पक्वाशय में आश्रित होने पर निरूह सहित स्नेहवस्ति का विधिवत् प्रयोग कराना चाहिए।

चन्दनोत्पलकाश्मर्यमधुकागुरुकूलकैः।
सिद्धं तैलं विधातव्यं वस्तौ सर्वज्वरापहम्।।९६।।

चन्दन, उत्पल (कमल), काश्मरी (गम्भारी), मधुक (मुलेठी), अगरु (अगर) एवं कूलक (पटोल) के साथ सिद्ध किए तैल का वस्ति में प्रयोग करने से सभी प्रकार के ज्वर नष्ट हो जाते हैं।

पटोलमदनारिष्टगुडूचीमधुकैः शृतम्।
एतज्ज्वरहरं तैलमनुवासनयोगतः।।९७।।

पटोल, मदन, अरिष्ट (नीम), गुडूची एवं मधुक (मुलेठी) के साथ पकाए गए तैल का अनुवासन लेने से ज्वर नष्ट हो जाता है।

धावनी-वृष-दार्वेला-पाठा-रास्ना-बला-वचाः।
जीवकर्षभकौ मेदे कुष्ठं पर्ण्यौ कणामृताः।।९८।।
श्वदंष्ट्रा-मदन-शृंगी-मधुकारिष्ट-यासकाः।
अश्वगन्धेति तैलस्य कार्षिकैराढकं पचेत्।।९९।।
अनुवासनिकं तैलं सर्वज्वरविनाशनम्।
कृत्स्नान् वातविकारांश्च नाशयत्येतदुद्धतान्।।१००।।

धावनी (कण्टकारी), वृष (वासा/अडूसा), दारुहल्दी, एला (छोटी इलायची), पाठा, रास्ना, बला, वचा, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, कूठ, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, कणा (पिप्पली), अमृता (गिलोय), श्वदंष्ट्रा (गोखरू), मदन, शृंगी, मधुक (मुलेठी), अरिष्ट (नीम), यासक एवं अश्वगन्धा- इन सबका एक-एक कर्ष लेकर इनके साथ आढक परिमाण में तैल पकाएं। इस तैल का अनुवासन लेने से यह सर्वज्वरों को नष्ट करता है तथा सभी प्रबल वातविकारों को भी उन्मूलित कर देता है।

पटोलं मदनं तिक्ताश्वदंष्ट्रारग्वधस्थिराः।
बलारिष्टाम्बुदोशीरं पचेत् क्षीरेऽर्धवारिणि।।१०१।।
क्षीरावशेषितं क्वाथं मधुसर्पिःसमन्वितम्।
मदनाब्दकणा-वत्स-यष्टीकल्क-प्रकल्पितम्।।१०२।।
सर्वज्वरविनाशाय वस्तिमेतं प्रयोजयेत्।
दोषच्युतविशुद्धाङ्गः क्षणाद्भवति निर्ज्वरः।।१०३।।

पटोल, मदन, तिक्ता (कुटकी), श्वदंष्ट्रा (गोखरू), आरग्वध (अमलतास), स्थिरा, बला, अरिष्ट, अम्बुद (मुस्तक), उशीर (खस) को आधा जल मिले दूध में पकाएं। जब दुग्धमात्र शेष रह जाए तब इसमें मधु एवं घृत मिलाएं। मदनफल, मुस्तक, पिप्पली, वत्स एवं यष्टी (मुलेठी) के कल्क के साथ मिलाए। इस प्रकार से सिद्ध क्वाथ की वस्ति का प्रयोग सर्वविध ज्वर के नाश के लिए करना चाहिए। इसके प्रयोग से दोषों से रहित,

विशुद्ध अंग वाला व्यक्ति शीघ्र ही ज्वरमुक्त हो जाता है।

मदनारग्वधोशीर-यष्टीपर्णीचतुष्टयात्।
क्वाथः श्यामाशताह्वाब्दयष्टीमदनकल्कितः।।१०४।।
मधुसर्पिर्गुडोपेतो निरूहोऽयमनुत्तमः।
सर्वजीर्णज्वरायासान् सद्यो हन्यात् प्रयोजितः।।१०५।।

मदनफल, आरग्वध (अमलतास), उशीर (खस), यष्टी (मुलेठी), चतुर्विध पर्णी- मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी का क्वाथ बनाएं। इसमें श्यामा (निशोथ), शताह्वा (सौंफ), मुस्तक, यष्टी (मुलेठी) एवं मदनफल का कल्क बनाकर मिलाएं। पुनः इसमें मधु, घृत एवं गुड़ मिलाकर तैयार किया गया निरूह सर्वोत्कृष्ट होता है। इसका प्रयोग करने से सर्वविध ज्वर एवं उनके उपद्रव नष्ट हो जाते हैं।

पृष्टपर्णी-स्थिरा-राठ-बलाभिः क्वथितं जलम्।
कृष्णा-मदन-यष्ट्यब्द-कल्कितं साज्यमाक्षिकम्।।१०६।।
साधुमांसरसोपेतमीषल्लवणसङ्गतम्।
दद्याज्ज्वरहरं वस्तिं रुचिस्वेदबलप्रदम्।।१०७।।

पृष्टपर्णी, स्थिरा, राठ (मदनफल) एवं बला के साथ जल को क्वथित करें। इसमें कृष्णा (पिप्पली), मदनफल, यष्टी (मुलेठी), अब्द (मुस्तक) का कल्क मिलाएं तथा घृत व मधु भी मिलाएं। इसे उत्तम मांसरस व थोड़े लवण के साथ मिश्रित करें और इसकी वस्ति दें। यह वस्ति ज्वरहर, रुचिप्रद, बलकारक व स्वेदजनक होती है।

विषमज्वर-नाशक क्षीरपिप्पली योग एवं वर्धमानपिप्पली योग

उपकुल्यां पिबेत् पिष्टां क्षीरेण सुसमाहितः।
पिप्पलीवर्धमानं वा विषमज्वर-पीडितः।।१०८।।

विषम ज्वर से पीड़ित रोगी को उपकुल्या (पिप्पली) को पीसकर एवं

दूध में पकाकर पीना चाहिए अथवा पिप्पली-वर्धमान योग का सेवन करना चाहिए। इस योग में पिप्पली का सेवन क्रमशः बढ़ाते हुए निर्दिष्ट अवधि तक करना होता है। पुनः क्रमशः घटाते हुए प्रयोग पूर्ण किया जाता है। इस विषय में विशेष विवरण के लिए चरकसंहिता, चिकित्सास्थान- १.३, श्लोक- ४० द्रष्टव्य है।

विषमज्वर-नाशक अन्य योगों का वर्णन

मधुसर्पिःसिताकृष्णाः शृते क्षीरे विलोडिताः।
विषमज्वरहृद्रोगक्षतकास-क्षयापहाः।।१०९।।

मधु, घृत, शर्करा, पिप्पली- इन्हें उबाले दूध में मिलाकर रोगी को पान कराएं। इससे विषमज्वर, हृद्रोग, क्षत, कास एवं क्षयरोग नष्ट हो जाते हैं।

वन्दाकं बिल्वजं पेयं सर्पिषा मथितेन वा।
विषमज्वरनाशाय क्षीरं वा गोमयान्वितम्।।११०।।

वन्दाक एवं बिल्वज को घृत अथवा तक्र के साथ पीना चाहिए। इससे विषम ज्वर नष्ट हो जाता है। गोमय (गाय के गोबर) से युक्त दुग्ध का पान करने से भी विषम ज्वर नष्ट हो जाता है।

पीत्वा ज्वरागमे सर्पिर्बहु प्रच्छर्दयेत् पुनः।
स्वप्यात् पीत्वा प्रभूतं वा मद्यमन्नोपसंहितम्।।१११।।

ज्वर आने पर अधिक मात्रा में घृत पीकर पुनः उल्टी कर दें, अथवा प्रभूत मात्रा में अन्न के साथ मद्य पीकर उल्टी कर दें।

हिंगु-सैन्धव-संयुक्तं नस्यं स्यादनवघृतम्।
ज्वरेऽञ्जनं शिलातैलं कृष्णा-तण्डुल-सैन्धवैः।।११२।।

हींग व सैन्धव से युक्त पुराना घृत नस्य के रूप में लेने से विषम ज्वर में हितकर होता है। शिलतैल (शिलारस), पिप्पली, तण्डुल (विडंग) एवं

सैन्धव से तैयार किया गया अञ्जन भी विषम ज्वर में हितकर होता है।

यवाः ससर्षपाः कुष्ठं निम्बपत्रं पलङ्कषा।
वचा-हरीतकी-सर्पिर्धूपः स्याद्विषमज्वरे।।११३।।

जौ, सरसों, कुष्ठ (कूठ), निम्बपत्र, पलंकषा- इनसे विषम ज्वर ग्रस्त रोगी के निवास स्थान में धूपन करना चाहिए। ऐसा करने से विषम ज्वर दूर होता है। इसी प्रकार वचा (बच), हरीतकी एवं घृत द्वारा किया गया धूपन भी विषम ज्वर को दूर करता है।

सहदेवा-वचा-भद्रा-नाकुलीभिः प्रधूपनम्।
प्रदेहोद्वर्तने कुर्यादाभिर्वा ज्वरशान्तये।।११४।।

सहदेवा, वचा, भद्रा एवं नाकुली द्वारा किया गया प्रधूपन भी विषमज्वर को शान्त करता है अथवा इन्हीं ओषधियों के द्वारा शरीर पर लेपन व उद्वर्तन भी विषम ज्वर को दूर कर देता है।

सर्वज्वरहर विशिष्ट धूप

शिरीषबिल्वजं वाम्रदधित्थार्जुनपल्लवैः।
सपुराशीतकैर्धूपः सर्वज्वरग्रहापहः।। ११५।।

शिरीष, बिल्व, आम्र, दधित्थ (कपित्थ/कैंथ) और अर्जुन के पल्लवों तथा पुर (दाहागरु/गुग्गुलु) एवं आशीतक (कपूर) के द्वारा की गई धूप सभी ज्वर एवं ग्रह-बाधाओं को दूर कर देती है।

सर्वज्वरहर अपराजित धूप

पुरध्यामवचासर्जनिम्बार्कागुरुदारुभिः।
सर्वज्वरहरो धूपः कार्योऽयमपराजितः।।११६।।

पुर (गुग्गुलु), ध्याम (कत्तृण का एक भेद), वचा (बच), सर्ज, निम्ब, अर्क (आक), अगरु एवं देवदारु की धूप सर्वज्वरहर होती है। यह अपराजित

होती है- अर्थात् प्रयोग करने पर निष्फल नहीं होती, किन्तु अमोघ रूप से कार्य करती है।

सर्वज्वरहर लाक्षादि तैल

लक्षारससमं तैलप्रस्थं मस्तुचतुर्गुणम् ।
अश्वगन्धानिशादारु-कौन्तीकुष्ठाब्दचन्दनैः।।११७।।
समूर्वारोहिणीरास्ना-शताह्वामधुकैः समैः।
सिद्धं लाक्षादिकं नाम तैलमभ्यञ्जनादिकम्।।११८।।
सर्वज्वरक्षयोन्माद-श्वासापस्मारवातनुत्।
यक्षराक्षसभूतघ्नं गर्भिणीनां च शस्यते।।११९।।

एक प्रस्थ तेल के समान मात्रा में लाक्षा रस मिलाएं। तेल से चतुर्गुण मात्रा में मस्तु (दही के ऊपर का जल) मिलाएं। इसे अश्वगन्धा, हल्दी, दारुहल्दी, कौन्ती, कुष्ठ (कूठ), अब्द (मुस्तक), चन्दन, मूर्वा, रोहिणी, रास्ना, शताह्वा (सौंफ), मधुक (मुलेठी)- इन सबको समान मात्रा में लेकर इनके साथ तेल पकाएं। इनसे सिद्ध किया गया 'लाक्षादिक तेल' अभ्यञ्जन के रूप में प्रयुक्त करना चाहिए। यह सभी ज्वरों, क्षयरोग, उन्माद, श्वास, अपस्मार एवं वातरोगों को नष्ट कर देता है। यह यक्ष, राक्षस एवं भूतों को नष्ट कर देता है- अर्थात् इन नामों से प्रसिद्ध रोगकारक जीवाणुओं को नष्ट कर देता है। यह तेल सौम्य गुण युक्त होने से गर्भिणी नारियों के लिए भी बहुत उपयोगी है।

पित्तज्वरजन्य दाह के शमनोपाय

पित्तज्वरेण तीव्रेण दह्यमानस्य देहिनः।
प्रवातमन्दिरस्थस्य कुर्याच्छीतामिमां क्रियाम्।।१२०।।

तीव्र पित्त ज्वर से जलते हुए मनुष्य को हवादार घर में लिटाकर इस प्रकार शीतल क्रिया करनी चाहिए-

धात्रीचूर्णं घृतोद्भृष्टं पिष्टमम्लतुषाम्भसा।
प्रलेपो दाहनुत् फेनो बदर्या वा दलोद्भवः।।१२१।।

घी में भुने आँवले के चूर्ण को अम्ल तुषाम्बु (काञ्जी) के साथ पीसें। इसका शरीर पर लेपन करने से ज्वरजन्य दाह शान्त हो जाता है। इसी प्रकार बदरीपत्र (बेर के पत्तों) को पीसने पर उनसे निकाला श्वेत फेन (झाग) भी ज्वरजन्य दाह को शान्त कर देता है।

प्रदेहो दाहहृद्वर्गैर्न्यग्रोधोत्पलपर्वूकैः।
तयोर्वा गाहयेच्छीतं कषायं दाहखेदितः।।१२२।।

न्यग्रोधादि एवं उत्पलादि वर्ग से पत्तों के कल्क का लेपन ज्वर के दाह को शान्त करता है। इसी प्रकार इन्हीं वर्गों की ओषधियों द्वारा तैयार किए गए कषाय का अवगाहन- अर्थात् उक्त कषाय द्वारा स्नान भी ज्वरजन्य दाह को शान्त कर देता है।

सीधुना मधुशुक्तेन मैरेयैरम्लकाञ्जिकैः।
पयसा वा प्रशस्यन्ते सेका दाहनिवारणाः।।१२३।।

सीधु (सिरका), मधुशुक्त (मधु से बना सिरका), मैरेय (मदिरा विशेष), अम्लकाञ्जिक द्वारा सेचन से ज्वर-जनित दाह शान्त हो जाता है। इसी प्रकार दूध द्वारा शरीर पर सेचन करने से भी ज्वर-जनित दाह शान्त हो जाता है।

दाहतृष्णाहर तैल

पद्मकोत्पलकह्लार-मृणालबिसपुष्करैः।
कुसुम्भोशीरमञ्जिष्ठा-पद्मगैरिककट्फलैः।। १२४।।
शारिवाद्वयलोध्राब्दक्षीरिखर्जूरचन्दनैः।
धात्रीशतावरीयुक्तैः क्वाथकल्कप्रयोजितैः।।१२५।।
सलाक्षाम्भःपयःशुक्तस्वच्छकाञ्जिकमस्तुभिः।
पक्वं तैलमिदं त्वच्यं दाहतृष्णापहं परम्।।१२६।।

पद्मक, उत्पल, कह्लार, मृणाल, बिस (कमलनाल), पुष्कर, कुसुम्भ, उशीर (खस), मञ्जिष्ठा, पद्म, गैरिक, कट्फल, दोनों सारिवा (सारिवा एवं कृष्ण सारिवा), लोध्र, अब्द (मुस्तक), क्षीरी (वटवृक्ष), खर्जूर, चन्दन, धात्री एवं शतावरी के क्वाथ एवं कल्क के साथ लाक्षारस, दूध, शुक्त, स्वच्छ कांजिक एवं मस्तु के साथ पकाया हुआ तेल त्वच्य (त्वचा के लिए हितकर), विशेषरूप से दाह-निवारक एवं तृष्णाहर होता है।

दाहतृष्णाहर शिरोलेप- १.

कालीयबदरानन्तायष्टी-चन्दनकाञ्जिकैः।
सघृतैः स्याच्छिरोलेपस्तृष्णादाहार्त्तिशान्तये।।१२७।।

कालीय (पीतचन्दन), बदर (बेर), अनन्ता (शारिवा), यष्टी (मुलेठी) एवं चन्दन को काञ्जिक व घृत के साथ पीसकर शिरोलेपन करने से तृष्णा एवं दाह की पीड़ा शान्त हो जाती है।

दाहतृष्णाहर शिरोलेप- २.

दाडिमं बदरं लोध्रं दधित्थं बीजपूरकम्।
पिष्ट्वा मूर्ध्नि प्रलेपोऽयं पिपासादाहनाशनः।।१२८।।

दाडिम (अनार), बदर (बेर), लोध्र, दधित्थ (कपित्थ/कैथ) एवं बीजपूरक (बिजौरा निम्बू) को पीसकर प्रलेप बना लें तथा मस्तक पर इसका लेपन करें। यह पिपासा एवं दाह को नष्ट कर देता है।

ज्वरदाहनाशक अन्य उपाय

चन्दनाम्बुकणास्यन्दितालवृन्तोपवीजितः।
स्वप्याद् दाहार्दितोऽम्भोज-कदलीदलसंस्तरे।।१२९।।

चन्दन के चूर्ण से मिश्रित जल को टपकाने वाले तालवृन्तों (पंखों) से वीजित किया गया (झला गया) दाह पीड़ित व्यक्ति कमल व कदलीपत्र के बिछौने पर शयन करे।

वाप्य: कमलहासिन्यो जलयन्त्रगृहा: शुभा:।
नार्यश्चन्दनदिग्धांग्यो दाहदैन्यहरा मता:।।१३०।।

खिले कमलों वाली बावड़ियाँ, शुभ जलयन्त्र गृह (फव्वारे) तथा चन्दन से लिप्त अंगों वाली सुन्दरियाँ दाह एवं दैन्य (उदासी/बेचैनी) का हरण करने वाली मानी जाती हैं।

कफवातज ज्वर में शीतनिवारण-विधियाँ

कफवातज्वरोद्भूते शीतार्त्ते स्यात्क्रियापथ:।
उष्णान्तर्वेश्मग: स्वेदो गुरुप्रावरणादिक:।।१३१।।

कफवात से उत्पन्न ज्वर में शीत से पीड़ित व्यक्ति के लिए उष्ण घर में स्वेदन एवं भारी कम्बल आदि की व्यवस्था करनी चाहिए।

कायस्था-नाकुली-तिक्ता-वयस्था-पुर-चोरकै:।
सहदेवा-वचायुक्तै: शीतघ्ने लेपधूपने।।१३२।।

कफवातजन्य ज्वर में शीत से पीड़ित व्यक्ति को कायस्था (तुलसी), नाकुली, तिक्ता, वयस्था (हरीतकी), पुर (गुग्गुलु), चोरक, सहदेवा एवं वचा से युक्त शीतघ्न (शीत-निवारक) धूप एवं लेपन देने चाहिए।

एतैरैवोषधै: पिष्टैर्लवणक्षारसंयुतै:।
साम्लैर्विपाचितं तैलमभ्यङ्गाच्छीतनाशनम्।।१३३।।

पूर्वश्लोक में वर्णित ओषधियों को पीसकर उनमें लवण, क्षार एवं अम्ल द्रव्य मिलाकर तैल सिद्ध करें। इस तैल के अभ्यंग (मालिश) से कफवातजन्य ज्वर में शीत-पीड़ित व्यक्ति का शीत दूर हो जाता है।

सुखोष्णैर्मस्तुगोमूत्रशुक्तै: सेकोऽतिशीतहा।
सुरसार्जकशिग्रूणां लेपो वा दलसम्भव:।।१३४।।

सुखोष्ण (थोड़े गर्म), मस्तु, गोमूत्र एवं शुक्त द्वारा किया गया सेचन

रोगी के बहुत अधिक शीत को भी दूर कर देता है। सुरसा, अर्जक एवं शिग्रु के पत्तों को पीसकर बनाया गया लेप शीतग्रस्त व्यक्ति के लिए वातघ्न होने से हितकर होता है।

शीतग्रस्तस्य वातघ्नं भङ्गोष्णाम्भोऽवगाहनम्।
दारुणागुरुणा धूपः शल्लकी-खपुरेण वा।। १३५।।

इसी प्रकार भंगोष्ण (भांग मिलाकर उष्ण किए) जल से अवगाहन (टब स्नान) भी वातनाशक होने से शीत का निवारण कर देता है। देवदारु, अगरु (अगर) एवं शल्लकी-खपुर (शल्लकी-निर्यास) से किया गया धूप भी कफवातजन्य ज्वर से होने वाले शीत को दूर करता है।

पीनोन्नतकुचा नम्रचारुमध्यागुरूक्षिता:।
प्रमदाः समदाः श्लेषैर्जयन्त्युग्रं प्रवेपकम्।।१३६।।

पीन (स्थूल) व उन्नत स्तनों वाली झुकी व सुन्दर कमर वाली अगरु-लेप से लिप्त यौवन मद से शोभित प्रमदाएं (नारियाँ) आलिङ्गन से शीतजन्य उग्र कम्पन को दूर कर देती हैं।

ज्वर में पथ्य

शालयो रक्तशाल्याद्याः शस्यन्ते षष्टिकान्विताः।
मसूराश्चणका मुद्गाः कुलत्थाः समकुष्ठकाः।।१३७।।
शशैण-लाव-वर्त्तीरा वर्त्तकाः सकपिञ्जलाः।
पटोलपत्र-वार्ताक-कर्कोटादीनि च ज्वरे।।१३८।।

रक्तशालि एवं षष्टिक आदि शालि मसूर, चना, मूँग, कुलत्थ, मकुष्ठ (मोठ), शश, एण, लाव, वर्त्तीर, वर्त्तक, कपिञ्जल, पटोलपत्र, वार्त्ताक (बैंगन) एवं कर्कोटकी फल (ककोड़ा) आदि ज्वर में हितकर होते हैं।

ज्वर में अपथ्य

गुर्वन्नं शीतलं वारि दिवास्वप्नं श्रमं त्यजेत्।
ज्वरितस्तद्विमुक्तश्च यत्नेनाबललाभतः।।१३९।।

ज्वरग्रस्त व्यक्ति को गुरु (पचने में भारी/गरिष्ठ) अन्न, शीतल जल, दिवा-शयन एवं श्रम से दूर रहना चाहिए। ज्वरमुक्त व्यक्ति भी तब तक इनसे दूर ही रहे, जब तक पूर्ववत् बल-सम्पन्न न हो जाए।

ज्वर के उपद्रवों का निवारण

उपद्रवान् भ्रमश्वासतृण्मूर्छादीनुपस्थितान्।
जयेज्ज्वराविरोधेन स्वैः स्वैर्भेषजयुक्तिभिः।।१४०।।

ज्वर में होने वाले- भ्रम, श्वास, तृष्णा, मूर्छा आदि उपद्रवों को इनकी अपनी भेषज-युक्तियों (चिकित्सा विधियों) से दूर करना चाहिए तथा वे भेषज-युक्तियाँ ज्वर में अविरोधी भी होनी चाहिए।

ज्वर का दैवव्यपाश्रय उपचार

महौषधधृतिस्नानशान्तिहोमबलिव्रतैः।
क्रूरज्वराः शमं यान्ति सिद्धमन्त्रैश्च विस्तरैः।।१४१।।

महौषध (उत्तम ओषधियों के प्रयोग), धृति, स्नान, शान्ति, होम (हवन), बलि (बलिवैश्वदेव यज्ञ में कौए, कुत्ते व अन्य प्राणियों को दी जाने वाली भोजन की भेंट), व्रत एवं विस्तृत सिद्ध मन्त्रों से क्रूर ज्वर शान्त हो जाते हैं।

ज्वरमुक्त में लक्षण

अन्नकांक्षा शिरःकण्डूः क्षवथुर्गात्रलाघवम्।
प्रस्वेदो मुखपाकश्च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम्।।१४२।।

अन्नाभिलाष, शिरः कण्डू (सिर में खुजली), क्षवथु (छींक), गात्रलाघव (शरीर में हल्कापन), प्रस्वेद (पसीना), मुखपाक (मुँह का पकना/ओठों पर फुन्सी जैसा पाक)- ये ज्वर मुक्त व्यक्ति के लक्षण होते हैं।

।। इति ज्वरचिकित्साध्यायः पञ्चमः समाप्तः।।

षष्ठ अध्याय

अतिसार, ग्रहणी, कृमि

अतिसार- निदान एवं भेद

विरुद्धातिगुरुस्निग्ध-रूक्षोष्णाध्यशनादिभि:।
हत्वाग्निमुद्धता दोषा ह्यतीसारं प्रकुर्वते।।१।।
एकैकश: समस्तैश्च दोषै: शोकाद्भयादपि।
षड्विध: स तु बोद्धव्यस्तस्य लक्षणमुच्यते।।२।।

विरुद्ध, अतिगुरु, अतिस्निग्ध, रूक्ष एवं उष्ण आहार-द्रव्यों के सेवन तथा अध्यशन (पूर्व भोजन के बिना पचे ही ऊपर से पुन: खा लेना) आदि अपथ्यों से कुपित हुए दोष अग्नि को नष्ट कर अतिसार (दस्त) रोग पैदा कर देते हैं। यह एक-एक दोष से भी होता है तथा समस्त (एक साथ मिले हुए) दोषों से भी। इस प्रकार दोषजन्यत्वेन इसके चार भेद होते हैं- वातज, पित्तज, कफज एवं त्रिदोषज अतिसार। इनके अतिरिक्त शोक एवं भय से भी अतिसार होता है, जिसे शोकज एवं भयज अतिसार कहते हैं। इस प्रकार अतिसार रोग के कुल छ: भेद बताए गए हैं। षड्विध अतिसार के लक्षण इस प्रकार हैं-

वातज अतिसार का लक्षण

अरुणं फेनिलं रूक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहु:।
शकृदामं सरुक्शब्दं मारुतेनातिसार्यते।।३।।

वातज अतिसार में अरुण (लाल रंग का), फेनिल (झागयुक्त), थोड़ा-थोड़ा तथा बार-बार पीड़ा एवं शब्द के साथ आम मल का अतिसरण (मल द्वार से प्रवाह) होता है।

पित्तज अतिसार का लक्षण

पीतरक्तासितनीलदुर्गन्धिहरितद्रवम्।
दाहपाकपिपासैश्च शकृत् पित्तात्प्रवर्तते।।४।।

पित्तजन्य अतिसार में पीत (पीले), रक्त (लाल), असित (कृष्णवर्ण), हरित (हरे), नीले एवं दुर्गन्ध युक्त द्रव (पतले) मल का अतिसरण होता है। इसमें दाह, पाक व पिपासा विशेष रूप से होती है।

कफज अतिसार का लक्षण

श्वेतं विस्रं घनं स्निग्धं शीतलं मन्दवेदनम्।
गौरवारुचिहृल्लासैः पुरीषं सार्यते कफात्।।५।।

कफजन्य अतिसार में श्वेत, विस्र (कच्चे मांस जैसी गन्ध वाले), घन (गाढ़े) एवं शीतल मल का अतिसरण होता है। इसके साथ गौरव, अरुचि एवं हृल्लास (जी मिचलाना)- ये उपद्रव भी होते हैं।

त्रिदोषज अतिसार का लक्षण

वाराहस्नेहमांसाम्बु-षड्रसं सर्वरूपिणम्।
कृच्छ्रसाध्यमतीसारं विद्याद्दोषत्रयोद्भवम्।।६।।

सूअर की चर्बी एवं मांसरस जैसे स्राव से युक्त, षड्रस के मिश्रण जैसे स्राव से युक्त और पूर्वोक्त तीनों दोषों वाले अतिसारों के विविध रूप से युक्त कृच्छ्रसाध्य अतिसार को त्रिदोषज अतिसार जानना चाहिए।

असाध्य अतिसार का लक्षण

क्षौद्रस्नेहयकृत्क्षीर-वेसवारोपमं शकृत्।
नानावर्णोत्कटं पूति चन्द्रिकाढ्यं न सिद्ध्यति।।७।।

मधु, स्नेह, यकृत्, क्षीर एवं वेसवार (मांसरस) जैसे मलप्रवाह वाला तथा नाना वर्णों वाला, उत्कट दुर्गन्ध युक्त एवं चन्द्रिका सहित अतिसार असाध्य होता है।

पक्व-भ्रष्ट-गुदः क्षीणो ज्वरश्वासाद्युपद्रुतः।
गतोष्मा नित्यमाध्मातः कुक्षिरोगी न जीवति।।८।।

जिसकी गुदा पक गई हो तथा अपने स्थान से भ्रंशित हो गई हो, जो बहुत अधिक क्षीण तथा ज्वर आदि उपद्रवों से ग्रस्त हो, जिसके शरीर की उष्णता कम हो गई हो तथा जिसका पेट हमेशा फूला रहता हो; ऐसा कुक्षिरोगी जीवित नहीं रह पाता है।

भयशोकज अतिसार का उपचार

भयशोकसमुद्भूतौ ज्ञेयौ वातातिसारवत्।
तयोर्वातहरी कार्या हर्षणाश्वासनैः क्रिया।।९।।

भय और शोक से उत्पन्न अतिसार वातातिसार के समान ही समझने चाहिए। उनमें वातहरी क्रिया (चिकित्सा) करनी चाहिए तथा रोगी को आश्वस्त एवं प्रसन्न करने वाले उपाय अपनाने चाहिए।

पक्वातिसार, आमातिसार

अतीसारा द्विधा ज्ञेयाः सर्वे पक्वामभेदतः।
मज्जत्यामं शकृत्तोये पक्वं च प्लवतीरितम्।।१०।।

सभी अतिसार पक्वातिसार एवं आमातिसार भेद से दो प्रकार के होते हैं। आमातिसार में मल जल में डूब जाता है तथा पक्वातिसार में वह जल के ऊपर तैरता रहता है।

आमातिसार में लंघन एवं वमन के साथ उपचार

तत्रामे वमनं कार्यं लङ्घनं च यथाक्रमम्।
विश्वोदीच्योदकं पानं लघ्वन्नं चास्य शस्यते।।११।।

आमातिसार में क्रमशः वमन व लंघन करवाना चाहिए। इसके अतिरिक्त शुण्ठी एवं उदीच्य (सुगन्धबाला) के साथ क्वथित जल पिलाना

चाहिए। आमातिसार वाले रोगी के लिए हल्का व सुपाच्य अन्न-पान हितकर होता है।

आम का स्तम्भन वर्ज्य, निस्सारण हितकर

आमः संस्तम्भितो ह्यादौ गुल्मकुष्ठादिरोगकृत्।
अतः सार्यं हरीतक्या पश्चात् सन्धानमिष्यते।।१२।।

आम (अपक्व आहार-रस) स्तम्भित होने पर गुल्म तथा कुष्ठ आदि रोगों को पैदा कर सकता है; अतः पहले उसे हरीतकी के प्रयोग से निस्सारित कर देना चाहिए, तदनन्तर चिकित्सा करनी चाहिए।

आमपाचन हेतु विविध योग

पिप्पल्यादिः प्रयोक्तव्यः पेयायूषखलादिषु।
हरिद्रादि-गणः पेयो वचादिर्वामशान्तये।।१३।।

आम के शमन हेतु पेया, यूष एवं खल आदि में पिप्पल्यादि गण का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार आम-शमनार्थ हरिद्रादिगण या वचादिगण के द्रव्यों का क्वाथ बनाकर पीना चाहिए।

नागरातिविषाहिङ्गु-मुस्तवत्सकचित्रकाः।
घनं तेजोवती पाठा पिप्पलीन्द्रयवान्विताः।।१४।।
सैन्धवं कौटजं बीजं वचा कटुकरोहिणी।
विडं वचाभया पाठा विडङ्गं विश्वभेषजम्।।१५।।
एला कुटजबीजानि लोध्रं शाबरकं निशे।
वत्सकातिविषाशुण्ठी-बिल्वहिङ्गुवचाम्बुदाः।।१६।।
श्लोकार्धविधयो योगाः षडेते पाचना मताः।
उष्णाम्बुमद्यधान्याम्लैः पीता वा श्लक्ष्णचूर्णिताः।।१७।।

निम्न छह वर्गों की ओषधियों का श्लक्ष्ण (महीन व चिकने) चूर्ण का का उष्ण जल मद्य या धान्याम्ल के साथ पान करने से आम का पाचन होता है-

१. सोंठ, अतिविषा, हींग, मुस्त (मोथा), वत्सक एवं चित्रक।
२. मुस्तक, तेजोवती, पाठा, पिप्पली एवं इन्द्रजौ।
३. सैन्धव लवण, कुटजबीज, वचा एवं कटुकरोहिणी।
४. विड, वचा, अभया, पाठा, विडंग एवं विश्वभेषज (शुण्ठी)।
५. एला (इलायची), कुटजबीज, लोध्र, शाबर लोध्र एवं दोनों प्रकार की हरिद्रा।
६. वत्सक, अतिविषा, शुण्ठी, बिल्व, हींग, वचा एवं अम्बुद।

इस प्रकार ये छह योग आमपाचन में उपयोगी होते हैं।

आमातिसार-नाशक योग

त्र्यूषणातिविषा-हिङ्गु-वचा-सौवर्चलाभयाः।
पीत्वोष्णेनाम्भसा जह्यादामातिसारमायतम्।।१८।।

त्रिकटु, अतिविषा (अतीस), हिंगु (हींग), वचा, सौवर्चल लवण एवं अभया (हरड़) के चूर्ण को उष्ण जल के साथ पीने से बहुत प्रबल आमातिसार भी नष्ट हो जाता है।

वचाबिल्वकणाविश्वकुष्ठदीप्यककूलकम्।
सविडङ्गं जयेत् पीतमाममुष्णाम्बुना स्रुतम्।।१९।।

वचा, बिल्व, कणा (पिप्पली), विश्व (शुण्ठी), कुष्ठ, दीप्यक, कूलक (पटोल) एवं विडंग- इनका चूर्ण बनाकर उष्ण जल के साथ पान करने से आमातिसार नष्ट हो जाता है।

पक्वातिसार में सांग्राहिक विधि

पक्वोऽसकृदतीसारो ग्रहणीमार्दवाद् यदा।
प्रवर्त्तते तदा कार्यः क्षिप्रं सांग्राहिको विधिः।।२०।।

ग्रहणी की मृदुता (नाजुकपन) के कारण जब पक्व मल का बार-बार

अतिसरण होता है, तब शीघ्र ही सांग्राहिक (मल को बाँधने की) विधि करनी चाहिए।

पक्वातिसार-नाशक योग

समङ्गा शाल्मली-वृन्तं लोध्रं पाठा सधातकी।
आम्रास्थि फलिनी पद्मं तिरीटं बिल्वपेशिका।।२१।।
वल्कलं दीर्घ-वृन्तस्य नागरं मधुयष्टिका।
त्वग्वृक्षदाडिमं लोध्रं धातकी गण्डकालिका।।२२।।
एतेऽर्द्ध-सम्मिता योगाश्चत्वारो मधुलेहिताः।
पक्वातीसारनाशाय प्रयोज्यास्तण्डुलाम्बुना।।२३।।

निम्न चार वर्गों की ओषधियों के चूर्ण को मधु के साथ चाटकर तण्डुलाम्बु पीने से पक्वातिसार नष्ट हो जाता है-

१. समंगा (मञ्जिष्ठा), शाल्मलीवृन्त, लोध्र, पाठा एवं धातकी।
२. आम की गुठली, फलिनी, पद्म, तिरीट (लोध्र) एवं बिल्वपेशिका।
३. दीर्घवृन्त (श्योनाक) का वल्कल, नागर (शुण्ठी) एवं मधुयष्टिका।
४. त्वग्वृक्ष (कुटजत्वक्), दाडिम, लोध्र, धातकी एवं मञ्जिष्ठा।

पक्वातीसारिणे देयो मुस्ताक्वाथः समाक्षिकः।
लोध्राम्बष्ठादिकौ वर्गौ योज्यौ वैवं महागुणौ।।२४।।

पक्वातिसार वाले रोगी को मधु मिलाकर मुस्ताक्वाथ देना चाहिए। इसी प्रकार लोध्र एवं अम्बष्ठादि वर्ग के द्रव्यों का उपयोग करना चाहिए। ये पक्वातिसार को नष्ट करने में विशेष रूप से गुणकारी होते है।

काश्मरीपद्मपत्रान्तः पक्वात्कट्वंगवल्कलात्।
सपद्मकेसरो ग्राही स्याद्रसो माक्षिकान्वितः।।२५।।

काश्मरी, पद्मपत्र, एवं केसर सहित कट्वंग के वल्कल (छाल) को पकाएं तथा इसके रस को मधु के साथ मिलाकर सेवन करें। यह योग

पक्वातिसार में विशेषरूप से ग्राही (मल को बांधने वाला) होता है।

न्यग्रोधादिगणपूर्ण-पुटपक्वस्य तित्तिरेः।
द्रवो मधुसितायुक्तः पीतो हन्त्युदरामयम्।।२६।।

न्यग्रोधादि गण के द्रव्यों के साथ पुटपाक विधि से तीतर के मांस को पकाएं। द्रव रूप में तैयार हुए इस मांसरस के अन्दर मधु व शर्करा मिलाकर पान करने से पक्वातिसार जैसे उदररोग नष्ट हो जाते हैं।

वातातिसारी के लिए हितकर द्रव्य

पञ्चमूलीबलाविश्व-धान्यकोत्पलबिल्वजा।
वातातिसारिणे देया पेयाम्लाम्लेतराथवा।।२७।।

पञ्चमूली, बला, विश्वा, धान्यक, उत्पल, बिल्वज- ये वातातिसार वाले रोगी को देने चाहिए। उसे अम्ल (खट्टी) अथवा अम्लेतर (खटाई रहित) पेया देनी चाहिए।

पित्तातीसार-नाशक विविध योग

कट्फलातिविषाम्भोदवत्सकं नागरान्वितम्।
शृतं पित्तातिसारघ्नं पातव्यं मधुसंयुतम्।।२८।।

कट्फल, अतिविषा, अम्बुद (मुस्तक), वत्सक एवं सोंठ को पकाकर मधु के साथ मिलाकर पीने से पित्तातिसार नष्ट हो जाता है।

उत्पलं धातकी-पुष्पं शुण्ठीदाडिमवल्कलम्।
समंगोत्पलपद्मानि लोध्रं मोचरसस्तिलाः।।२९।।
शतक्रतुयवा मुस्तं भूनिम्बं सरसाञ्जनम्।
मृणालं चन्दनं लोध्रमुत्पलं विश्वभेषजम्।।३०।।
पाठा दुरालभा विश्वमाम्रजम्ब्वस्थि कट्फलम्।
बिल्वदारुहरिद्रात्वक् धन्वयासं सबालकम्।।३१।।
धातक्यतिविषाशुण्ठी-वत्सत्वक्फल-तार्क्षजम्।

कट्फलं मधुकं लोध्रं दाडिमत्वक्समन्वितम्।।३२।।
चूतास्थि धातकीपुष्पं ससमङ्गं सरोरुहम्।
सवल्कं वत्सकं दार्वी पाठा ग्रन्थिक-नागरम्।।३३।।
वर्गाः श्लोकार्द्धविच्छेदा दशैते मधुशालिनः।
पीतास्तण्डुलतोयेन पित्तातीसारनाशनाः।।३४।।

निम्न दस वर्गों में निर्दिष्ट ओषधियों को मधु मिलाकर तण्डुल-जल के साथ पीने से पित्तातिसार नष्ट हो जाता है-

१. उत्पल, धात्रीपुष्प, शुण्ठी एवं दाडिम (अनार) का छिल्का।
२. समंगा (मञ्जिष्ठा), उत्पल, पद्म, लोध्र, मोचरस एवं तिल।
३. इन्द्रयव, मुस्त, लोध्र, भूनिम्ब एवं सरसाञ्जन।
४. मृणाल, चन्दन, लोध्र, उत्पल एवं विश्वभेषज (सोंठ)।
५. पाठा, दुरालभा, विश्वा, आम्र, जामुन की गुठली एवं कट्फल।
६. बिल्व, दारुहरिद्रा, त्वक् (दालचीनी), धन्वयास एवं बालक।
७. धातकी, अतिविषा, शुण्ठी, कुटज की त्वक् व फल एवं तार्क्षज।
८. कट्फल, मधुक, लोध्र एवं दाडिमत्वक् (अनार का छिल्का)।
९. आम की गुठली, धातकीपुष्प, समंगा एवं कमल।
१०. छाल सहित वत्सक, दारवी, पाठा, ग्रन्थिक एवं नागर (शुण्ठी)।

रक्तातिसार- निदान एवं प्रारम्भिक चिकित्सा

पित्तातीसारिणः पित्तमहिताशनसेवनात्।
सन्दूष्य शोणितं कुर्याद्ररक्तातीसारमुद्धतम्।।३५।।
तत्र तूर्णं क्रिया कार्या रक्तपित्तनिवारिणी।
आजं पयः प्रयोक्तव्यं पानभोजनवस्तिषु।।३६।।

पित्तातिसार वाले रोगी द्वारा प्रमादपूर्वक अहिताशन-सेवन से कुपित हुआ पित्त रक्त को दूषित कर प्रबल रक्तातिसार को पैदा कर देता है। उसमें

तुरन्त ही रक्तपित्त को दूर करने वाली क्रिया करनी चाहिए। पान, भोजन एवं वस्ति में बकरी के दूध का प्रयोग करना चाहिए।

रक्तातिसार-नाशक विविध योग

पयस्या शारिवा लोध्रं शर्करा मधुयष्टिका।
शीतेन पयसा पीताः सक्षौद्रा रक्तनाशनाः।।३७।।

रक्तातिसार में पयस्या, शारिवा, लोध्र, शर्करा एवं मधुयष्टिका (मुलेठी) के चूर्ण को मधु मिलाकर शीतल जल के साथ पीना चाहिए। इससे रक्तातिसार शान्त हो जाता है।

शल्लकी-बदरी-जम्बू-प्रियालाम्रार्जुनत्वचः।
पीताः क्षीरेण मध्वाढ्याः पृथक् शोणितवारणाः।।३८।।

शल्लकी, बदरी, जम्बू, प्रियाल, आम्र एवं अर्जुन वृक्ष- इनमें से किसी एक की छाल को दूध के साथ उबालें, शीतल होने पर मधु मिलाकर पान करें। इन योगों से रक्तातिसार शान्त हो जाता है।

इन्दीवरं समङ्गा च मोचाह्वाम्बुजकेसरम्।
तिलाः शाबरकं यष्टी समङ्गा शर्करोत्पलम्।।३९।।
उत्पलं शाल्मली-श्लेष्मा यष्टी शाबरकं तिलाः।
योगत्रयमजाक्षीर-क्षौद्रवद् रक्तनाशनम्।।४०।।

निम्नलिखित तीन योगों को अजाक्षीर (बकरी के दूध) व मधु के साथ लेने से रक्तातिसार नष्ट हो जाता है-

१. इन्दीवर (नीलकमल), समंगा, मोचरस, अम्बुजकेसर।
२. तिल, शाबरक, यष्टी, समंगा, शर्करा, उत्पल (कमल)।
३. उत्पल, शाल्मली-निर्यास, यष्टी, शाबरक एवं तिल।

चन्दनस्य प्रियङ्गोर्वा कल्कं सक्षौद्रशर्करम्।
पीत्वा रक्तस्रुतेर्दाहान्मुच्यते तण्डुलाम्भसा।।४१।।

चन्दन अथवा प्रियंगु का कल्क बनाकर उसमें मधु एवं शर्करा मिलाएं; तदनन्तर तण्डुलजल के साथ इसका पान करें। इससे रोगी रक्तातिसार एवं दाह से मुक्त हो जाता है।

ज्येष्ठाम्बुना मधूप्तेन रक्तहृद् वत्सफाणितम्।
मधुकोत्पल-शङ्खानां कल्को वा शर्करान्वित:।।४२।।

मधुमिश्रित ज्येष्ठाम्बु (तण्डुल-जल) के साथ वत्सफाणित (कुटज-फाणित) का सेवन करने से रक्तातिसार शान्त हो जाता है। मधुक (मुलेठी), उत्पल (कमल) एवं शंख (नखी/व्याघ्रनख नामक गन्धद्रव्य) का कल्क बनाएं। इसमें शर्करा मिलाकर सेवन करने से भी रक्तातिसार शान्त हो जाता है।

श्लेष्मातिसार-चिकित्सा

व्यत्यासेन शकृद्रक्तं सार्यमाणं विरेचयेत्।
क्षीरेण त्रिफलाक्तेन युक्त्या सद्योद्भवेन वा।।४३।।
पूतीक-व्योष-बिल्वाग्नि-तक्र-दाडिम-हिङ्गुभि:।
भोजयेत्संस्कृतैर्यूषै: श्लेष्मातीसारपीडितम्।।४४।।

जिसमें मल के साथ रक्त निकलता है, ऐसे श्लेष्मातिसार में त्रिफलायुक्त दूध से विरेचन कराएं। श्लेष्मातिसार से पीड़ित रोगी को पूतीका, व्योष, बिल्व, अग्नि (चित्रक), तक्र, दाडिम व हिंगु से संस्कृत यूष का भोजन देना चाहिए।

चव्यं सातिविषं कुष्ठं पाठा कटुकरोहिणी।
अभयाम्बुधर: शुण्ठी बिल्वकर्कटिकायुता।।४५।।
चित्रकं पिप्पलीमूलं पिप्पली गजपिप्पली।
कृमिशत्रुर्वचा दारु धान्यकं च सकत्तृणम्।।४६।।

श्लोकार्द्धकलिता योगाश्चत्वारः कथिताः शुभाः।
श्लेष्मातिसारिणे देया ह्येते वह्निबलप्रदाः।।४७।।

निम्न चार योग श्लेष्मातिसार वाले रोगी को देने चाहिए। ये उसके जठराग्निबल को बढ़ाते हैं-

१. चव्य, अतिविषा, कुष्ठ, पाठा एवं कटुकरोहिणी।
२. अभया, अम्बुधर, शुण्ठी, बिल्वकर्कटिका (बिल्वपेशी)।
३. चित्रक, पिप्पलीमूल, पिप्पली एवं गजपिप्पली।
४. कृमिशत्रु (विडंग), वचा, दारु, धान्यक एवं कत्तृण।

पथ्याग्नि-कटुका-पाठा-वचा-ग्रन्थिक-वत्सकाः।
सनागरो जयेत्क्वाथः कल्को वा श्लैष्मिकीं स्रुतिम्।।४८।।

पथ्या (हरड़), अग्नि (चित्रक), कटुका (कुटकी), पाठा, वचा, ग्रन्थिक (पिप्पलीमूल), वत्सक एवं नागर (शुण्ठी)- से बनाया क्वाथ अथवा कल्क श्लेष्मातिसार को शान्त कर देता है।

सर्वविध अतिसारनाशक योग

पलमङ्कोठमूलस्य पाठादार्व्योश्च पेषयेत्।
ज्येष्ठाम्बुनाक्षमात्रा स्याद् वर्त्तिः सर्वातिसारनुत्।।४९।।

अंकोठमूल (अंकोल की जड़), पाठा एवं दार्वी के मूल को एक-एक पल की मात्रा में लेकर ज्येष्ठाम्बु (तण्डुल-जल) के साथ पीसकर वर्त्ति बनाएं। यह सभी प्रकार के अतिसार को दूर कर देता है।

दुःसाध्य अतिसार-नाशक योग

बिल्वाब्द-धातकी-पाठा-शुण्ठी-मोचरसाः समाः।
पीता रुन्धन्त्यतीसारं गुडतक्रेण दुर्जयम्।।५०।।

बिल्व, मुस्तक, धातकी, पाठा, शुण्ठी, मोचरस- इन्हें सम मात्रा में

लेकर गुड़ मिश्रित तक्र के साथ पान करें। यह योग दुसाध्य अतिसार को भी शान्त कर देता है।

निर्वाहिका का स्वरूप

स्रुते रक्ते पुरीषे च वायुना विड्विवर्जितम्।
निर्वाहिकेति तत्ख्यातं यत्फेनाभं प्रवर्त्तते।।५१।।

रक्त व पुरीष के प्रवाहित हो जाने के उपरान्त वात के प्रभाव से मलरहित जो फेन जैसा निकलता है, उसे निर्वाहिका कहते हैं।

निर्वाहिकाहर योग

अग्निबिल्वशृतं क्षीरं गुडतैलानुयोजितम्।
दीप्ताग्निं पाययेत्प्रातः सुखदं वर्चसः क्षये।।५२।।

निर्वाहिका नामक इस अतिसार में मल का क्षय हो जाता है। इसमें अग्नि (चित्रक) एवं बिल्व के साथ पकाकर तथा गुड़ एवं तेल के साथ मिलाया हुआ दूध दीप्त अग्नि वाले रोगी को प्रातःकाल पिलाना चाहिए। इससे निर्वाहिका रोग दूर हो जाता है तथा रोगी कष्टमुक्त हो जाता है।

तीन दिन में पुरानी निर्वाहिका को नष्ट करने वाले योग

पयसा पिप्पलीकल्कः पीतो वा मरिचोद्भवः।
त्र्यहान्निर्वाहिकां हन्याच्चिरकालानुबन्धिनीम्।।५३।।

पिप्पली अथवा कालीमिर्च कल्क बनाकर दूध के साथ पिएं। यह योग चिरकाल से प्रवृत्त निर्वाहिका को तीन में ही नष्ट कर देता है।

निर्वाहिका में सद्यःफलप्रद विविध योग

तैलं सपिर्दधि क्षौद्रं सिता विश्वं सफाणितम्।
सर्वमालोड्य पातव्यं सद्यो निर्वाहिकां हरेत्।।५४।।

तिल का तैल, गाय का घी, गाय का दही, मधु, शर्करा, शुण्ठी एवं

फाणित- इन सबको मिलाकर पीना चाहिए। यह योग निर्वाहिका को शीघ्र ही नष्ट कर देता है।

धातकी-बदरीपत्र-कपित्थरस-माक्षिकम्।
सलोध्रमेकतो दध्ना पिबेन्निर्वाहिकार्दितः।।५५।।

निर्वाहिका से पीड़ित रोगी- धातकी, बदरीपत्र, कपित्थरस, मधु तथा लोध्र- इन सबको मिलाकर दही के साथ पान करें। इससे निर्वाहिका शान्त हो जाती है।

बिल्वपेशीं गुडं लोध्रं तैलं मरिचयोजितम्।
लीढ्वा निर्वाहिकाक्लान्तः क्षिप्रं सुखमवाप्नुयात्।।५६।।

बिल्वपेशी, गुड, लोध्र एवं कालीमिर्च से युक्त तिल के तैल का अवलेहन करना चाहिए। इससे निर्वाहिका-पीड़ित व्यक्ति शीघ्र ही सुखी हो जाता है।

यष्टीमधुकतैलेन कर्त्तव्यमनुवासनम्।
दोषशेषनिवृत्त्यर्थमिमं वस्तिं प्रयोजयेत्।।५७।।

निर्वाहिका-पीड़ित व्यक्ति को यष्टीमधुक (मुलेठी) के तेल से अनुवासन कराना चाहिए। दोषशेष की निवृत्ति के लिए इस बस्ति का प्रयोग करना चाहिए।

ज्वर एवं पित्तातिसार में वस्तिप्रयोग

कुकूलपक्वं संक्षुण्ण-शाल्मलीवृन्तमर्दितम्।
क्षीरप्रस्थश्रृतं सर्पिर्मधुयष्टीसमन्वितम्।।५८।।
पिच्छावस्तिरयं दत्तो ज्वरपित्तातिसारनुत्।
गुल्मजीर्णातिसारघ्नो ग्रहणीशोफनाशनः।।५९।।

शाल्मली वृक्ष के वृन्त (डण्ठल) को कूटकर घृत में मिला लें तथा

साथ में मुलेठी भी मिलाएं, पुनः इसमें एक प्रस्थ दूध डालकर कुकूलाग्नि (तुषाग्नि) पर पकाएं। इस प्रकार सिद्ध यह स्नेह पिच्छावस्ति के रूप में देना चाहिए। ऐसा करने से यह ज्वर एवं पित्तातिसार का निवारण करता है तथा गुल्म, अजीर्ण, अतिसार व ग्रहणीशोफ (ग्रहणी की सूजन) को भी नष्ट करता है।

ग्रहणी रोग का स्वरूप एवं चिकित्सा-विधि

मन्देऽग्नौ दूषिता दोषैः पृथक् सर्वैश्चतुर्विधा।
ग्रहणी, लक्षणं तस्याश्चिकित्सा चातिसारवत्।।६०।।

अग्नि के मन्द होने पर सब दोषों द्वारा पृथक्-पृथक् रूप से तथा सामूहिक रूप से दूषित ग्रहणी का रोग चार प्रकार का होता है- वातज, पित्तज, कफज एवं त्रिदोषज। ग्रहणी रोग का लक्षण व चिकित्सा भी अतिसार के समान होती है।

ग्रहणीरोग-नाशक विविध योग

अजमोदाग्नि-चव्यानि त्र्यूषणं लवणानि च।
क्षारौ द्वौ ग्रन्थिकं हिङ्गुर्गुडिकाम्लैः कृताग्निदा।।६१।।

अजमोदा, अग्नि (चित्रक), चव्य, त्रिकटु, तीनों लवण (सैन्धव, सौवर्चल एवं विड लवण), दोनों क्षार (यवक्षार, स्वर्जिकाक्षार), ग्रन्थिक (पिप्पलीमूल), हिंगु एवं काञ्जी आदि अम्लों के साथ बनाई गई गुटिका अग्निबल बढ़ाती है तथा ग्रहणी रोग दूर करती है।

त्रिफलारुष्कर-व्योषैर्लवणत्रयमादहेत्।
तत्पीतं सर्पिषा पाण्डुग्रहणीगुल्मशूलनुत्।।६२।।

त्रिफला, अरुष्कर (भल्लातक/भिलावा), व्योष (त्रिकटु), तीनों लवण (सैन्धव, सौवर्चल एवं विड लवण)- इन सबको जलाकर इनकी राख को घृत के साथ पीने से पाण्डु, ग्रहणी, गुल्म एवं शूल नष्ट हो जाते हैं।

यवानी-व्योष-सिन्धूत्थ-जीरकद्वय-हिङ्गुजम्।
आद्यग्रासाशितं साज्यं चूर्णं वातनुदग्निकृत्।।६३।।

अजवायन, त्रिकटु, सैन्धव लवण, दोनों प्रकार का जीरा (श्वेतजीरक व कृष्णजीरक) एवं हींग का चूर्ण बनाएं। इसमें घी मिलाकर भोजन के प्रथम ग्रास के साथ सेवन करें। इस प्रकार सेवन करने से यह चूर्ण वातनाशक व जठराग्निदीपन होता है तथा ग्रहणी रोग को शान्त करता है।

शताह्वा-धान्यक-पाठा-बिल्वाग्नि-विश्वदीप्यकैः।
समूला-मागधा-कोला-कल्कैरेषां पचेद् घृतम् ।।६४।।
चतुर्गुणेन दध्ना च चांगेरी रसवद्धरेत् ।
ग्रहण्यर्शो-गुदभ्रंश-कृच्छ्रानाह-प्रवाहिकाः।
श्वास-तृट्-छर्दिकासघ्नो रुचिकृत्पाण्डुरोगहा।।६५।।

शताह्वा (सोआ), धान्यक (धनिया), पाठा, बिल्व, अग्नि (चित्रक), विश्व (सोंठ), दीप्यक (अजवायन), पिप्पली, पिप्पलीमूल एवं कोला (चव्य)- इनके कल्कों से घृत पकाना चाहिए। पकाते समय इसमें घृत की मात्रा से चार गुणा दही व चांगेरी का रस भी डालना चाहिए। इस प्रकार सिद्ध घृत ग्रहणी, अर्श, गुदभ्रंश, मूत्रकृच्छ्र, आनाह, प्रवाहिका, श्वास, तृषा, छर्दि एवं कास को नष्ट करता है। यह भोजन में रुचि पैदा करता है तथा पाण्डुरोग को भी दूर करता है।

तार्क्षजातिविषा-बिल्ववृक्षकत्वक्-फलाम्बुदम्।
सपाठा-धातकी-तिक्ता-नागरं चूर्णितं पिबेत्।।६६।।
सक्षौद्रं ज्येष्ठतोयेन पैत्तिके ग्रहणीगदे।
अर्शः प्रवाहिका-रक्त-कुक्षिरोग-गुदार्तिषु।।६७।।

तार्क्षज (रसाञ्जन), अतिविषा (अतीस), बिल्व एवं वृक्षक (कुटज की छाल) , फल (त्रिफला), अम्बुद (मुस्तक), पाठा, धातकी, तिक्ता (कुटकी)

व नागर (शुण्ठी)- इन सबका चूर्ण बनाकर मधुमिश्रित ज्येष्ठाम्बु (तण्डुल-जल) के साथ पान करें। इससे पित्तजन्य ग्रहणीरोग, अर्श, प्रवाहिका, रक्तपित्त, कुक्षिरोग (उदररोग) एवं गुदरोग नष्ट हो जाते हैं।

वत्स-व्योषाब्द-भूनिम्ब-तिक्तांशैर्द्वौ च वह्नितः।
षोडशांशात्त्वचो वात्स्याश्चूर्णमेतद् गुडाम्बुना।।६८।।
तत्पीतं ग्रहणीदोषकामलापाण्डुरोगजित्।
प्रमेहारुच्यतीसारगुल्मशोषज्वरापहम्।।६९।।

वत्स (इन्द्रजौ), व्योष (त्रिकटु), अब्द (मुस्तक), भूनिम्ब (चिरायता), तिक्ता (कुटकी) का एक भाग लें, वह्नि (चित्रक) के दो भाग लें, वात्सी त्वक् (कुटज की छाल) के १६ भाग लें, इन सबका चूर्ण बनाकर गुडाम्बु (गुड़ घोलकर तैयार मीठे जल) के साथ सेवन करें। इससे ग्रहणीदोष, कामला एवं पाण्डुरोग नष्ट हो जाते हैं। यह चूर्ण, प्रमेह, अरुचि, अतिसार, गुल्म, शोष एवं ज्वर को भी दूर कर देता है।

शटी व्योषाभया क्षारौ ग्रन्थिकं बीजपूरकम्।
लवणोष्णाम्बुना पानं श्लैष्मिके ग्रहणीगदे।।७०।।

कफजन्य ग्रहणीरोग में शटी (कपूरकचरी), व्योष (त्रिकटु), अभया, दोनों प्रकार का क्षार (यवक्षार व स्वर्जिकाक्षार), ग्रन्थिक (पिप्पलीमूल) एवं बीजपूरक- इनको लवणमिश्रित उष्ण जल के साथ पीना चाहिए। इससे कफजन्य ग्रहणीरोग नष्ट हो जाता है।

मधुपादोत्कटः क्वाथो मधुकाब्दसमायुतः।
मृणालागुरु-शीतैला-दिग्धे कुम्भेऽग्निदीपनः।।७१।।

मधुक (मुलेठी) व अब्द (मुस्तक) के क्वाथ में शीतल होने पर चतुर्थांश मधु मिलाएं। इसे मृणाल (कमलनाल), अगरु, शीत (त्वक्/दालचीनी), एला (छोटी इलायची) को पीसकर मिला लें एवं कुम्भ (घड़े) में रखें।

मात्रानुसार इसका सेवन करें। यह योग ग्रहणीरोग को दूर कर अग्निदीपन करता है।

प्रस्तुत श्लोक में 'शीत' पद का अर्थ 'कपूर' भी हो सकता है। वृक्ष से उपलब्ध होने वाला प्राकृतिक कपूर आमाशय में सक्रियता बढ़ाकर अग्निदीपन करता है। ताम्बूल (पान) में भी कपूर का मिश्रण इसीलिए होता है कि वह आमाशय को अधिक सक्रिय कर उसमें रक्तसंचरण को बढ़ाता है और भोजन-पाचन में सहायक बनता है।

ग्रन्थिकाग्न्यभयाकृष्णा विडङ्गाक्तघटे स्थितम्।
मासं तक्रं ग्रहण्यर्शः कासगुल्मकृमीरणम्।।७२।।

ग्रन्थिक (पिप्पलीमूल), अग्नि (चित्रक), अभया (हरड़), कृष्णा (पिप्पली) एवं विडंग से युक्त घड़े में तक्र डालकर एक मास तक रखें; तदुपरान्त सेवन करने से यह तक्र ग्रहणी, अर्श, कास, गुल्म एवं कृमियों को नष्ट करता है।

ग्रहणीरोग में हितकर भैषज्यकल्पना एवं आहारकल्पना

दीपनान्यन्नपानानि चूर्णारिष्टघृतानि च।
प्रविभज्य यथावस्थं योजयेद् ग्रहणीगदे।।७३।।

ग्रहणीरोग में अग्निदीपन करने वाले अन्नपान, चूर्ण, अरिष्ट एवं घृतों का रोग की अवस्था के अनुसार उचित विभाग कर प्रयोग करना चाहिए।

कृमि

कृमिरोगी के लक्षण

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सादनं भ्रमः।
भक्तद्वेषोऽतिसारश्च सञ्जातकृमिलक्षणम्।।७४।।

जिस व्यक्ति के पेट में कृमि उत्पन्न हो जाते हैं, उसे ज्वर, विवर्णता (शरीर के रंग का फीका होना- अर्थात् शरीर पर रौनक न होना), शूल, हृद्रोग, साद (अंगों की टूटन), भ्रम, भक्तद्वेष (भोजन के प्रति अनिच्छा) एवं अतिसार आदि लक्षण प्रकट हो जाते हैं।

विविध कृमिहर योग

विडङ्गसैन्धवक्षार-कम्पिल्लकहरीतकीम्।
पिबेत् तक्रेण सम्पेष्य सर्वकृमिनिवृत्तये।।७५।।

विडंग, सैन्धव लवण, क्षार (यवक्षार), कम्पिल्ल (कबीला) एवं हरीतकी को पीसकर तक्र के साथ पीने से सब प्रकार के कृमि नष्ट हो जाते हैं।

शिग्रुदार्व्याखुपर्ण्यब्द-त्रिफलाभिः शृतं जलम् ।
कृष्णाविडङ्ग-कल्काढ्यं पिबेत् कृमिनिवारणम्।।७६।।

शिग्रु (सहिजन), दार्वी (दारुहल्दी), आखुपर्णी (मूसाकानी), अब्द (मुस्तक) एवं त्रिफला- के साथ जल को उबालकर क्वाथ बनाएं, उसमें कृष्णा (पिप्पली) एवं विडंग का कल्क मिलाकर पान करें। यह योग कृमियों को नष्ट कर देता है।

आखुपर्णीदलैः पिष्टैः पिष्टकेन च पूपिकाम्।
अद्यात् सौवीरकं चानुपिबेत् कृमिविशुद्धये।।७७।।

आखुपर्णी के पत्तों को पीसें तथा आटे में मिश्रित कर पूपिका बना कर खाएं। इसके ऊपर अनुपान के रूप में सौवीरक (काञ्जी) का सेवन करें। इससे कृमि नष्ट हो जाते हैं।

लिह्यात् क्षौद्रेण वैडङ्गं चूर्णं कृमिविनाशनम्।
पारिभद्रकपत्रोत्थं रसं वा मधुना पिबेत्।।७८।।

विडंग का चूर्ण मधु मिलाकर चाटना चाहिए। इससे कृमि नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार निम्बपत्रों के रस को मधु के साथ पीना चाहिए, इससे भी कृमि नष्ट हो जाते है।

फलत्रयवचादन्ती-त्रिवृत् कम्पिल्लकैः समैः।
सिद्धं सर्पिर्गवां मूत्रे पीतं कृमिनिषूदनम् ।।७९।।

त्रिफला, वचा, दन्ती, त्रिवृत् (निशोथ), कम्पिल्लक (कबीला)- इन्हें समान मात्रा में लें और अपेक्षित मात्रा में घृत लें। इन्हें उचित परिमाण वाले गोमूत्र में डालकर घृत सिद्ध करें। इस घृत का पान करने से कृमि नष्ट हो जाते हैं।

।। इति अतिसाराध्यायः षष्ठः समाप्तः।।

सप्तम अध्याय

रक्तपित्त

रक्तपित्त का निदान एवं स्वरूप

उष्णाम्ल-लवण-क्षार-कटुभिः पित्तदूषणात्।
यकृत्-प्लीहाश्रितं रक्तमूर्ध्वं चाधः प्रवर्त्तते।।१।।

उष्ण, अम्ल, लवण, क्षार एवं कटु (चरपरे) पदार्थों के निरन्तर एवं अधिक सेवन के कारण पित्त के दूषित होने से यकृत् व प्लीहा में आश्रित रक्त ऊर्ध्व एवं अधोमार्ग (ऊपर व नीचे की ओर) से निकलने लगता है। इस विकार को रक्तपित्त कहते हैं।

वातज एवं पित्तज रक्तपित्त का स्वरूप

वाताच्छ्यावारुणरूक्षं शोणितं तनु फेनिलम्।
पित्तात् कृष्णकषायाभं गोमूत्राञ्जन-सप्रभम्।।२।।

वात से श्याव (काला), अरुण, रूक्षतायुक्त और झाग सहित रक्त निकलता है। पित्त से कृष्ण व काषाय वर्ण वाला तथा गोमूत्र व अञ्जन के समान चमक वाला रक्त निकलता है।

काषाय वर्ण- कषाय रस वाले द्रव्य से रंगा हुआ वस्त्र आदि काषाय रंग का होता है, जैसे बबूल की छाल को उबाल कर उससे रंगा जाने वाला साधुओं का वस्त्र काषाय वर्ण का होता है।

कफज, द्वन्द्वज एवं त्रिदोषज रक्तपित्त का स्वरूप

श्लैष्मिकं स्निग्धमापाण्डु पिच्छिलं बहुलं स्मृतम्।
संसृष्टलक्षणं द्वन्द्वात् सर्वरूपं त्रिदोषजम्।।३।।

कफ के कारण स्निग्ध, थोड़ा पाण्डुवर्ण, पिच्छिल व गाढ़ा रक्त निकलता है। किन्हीं दो दोषों की प्रबलता के कारण होने वाले रक्तपित्त में उन दोनों दोषों वाले लक्षण दिखाई देते हैं। तीनों दोषों से होने वाले रक्तपित्त में पूर्वोक्त सभी लक्षण दिखाई देते हैं।

साध्य, दु:साध्य एवं व्याप्य रक्तपित्त

ऊर्ध्वं पृथक् च तत्साध्यं द्वन्द्वं याप्यमधश्च यत्।
सर्वदोषं द्विमार्गं च दुश्चिकित्स्यतमं मतम्।।४।।

ऊर्ध्व रक्तप्रवृत्ति वाला रक्तपित्त साध्य माना जाता है। इसी प्रकार एक-एक दोष से होने वाला रक्तपित्त भी साध्य होता है। अध: रक्तप्रवृत्ति वाला तथा द्वन्द्वज रक्तपित्त याप्य होता है। त्रिदोषज एवं द्विमार्ग (ऊर्ध्व तथा अध: रक्तप्रवृत्ति वाला) रक्तपित्त अति दुश्चिकित्स्य होता है।

असाध्य रक्तपित्त

छर्दिमूर्छाज्वरश्वास-कासवैस्वर्यदाहवत्।
जाम्बवेन्द्रास्रसंकाशं कुणपं चाप्रतिक्रियम्।।५।।

छर्दि, मूर्छा, ज्वर, श्वास-कास, वैस्वर्य (स्वर की विकृति/गला बैठना) एवं दाह के साथ जामुनी रंग का दुर्गन्धयुक्त खून प्रवृत्त होता है, जिसका प्रतिकार नहीं हो पाता है- अर्थात् चिकित्सा करना कठिन होता है।

रक्तपित्ती के दूषित रक्त की असंग्राह्यता

न संग्राह्यमसृग् दुष्टमादितो बलिनोऽश्नत:।
तद् गलग्रह-गुल्मार्शो-ज्वर-कुष्ठादिरोगदम्।।६।।

बलवान् एवं सम्यक् प्रकार से भोजन लेने वाले रक्तपित्त के रोगी का दूषित रक्त आरम्भ में संग्राह्य (रोकने योग्य) नहीं होता है; क्योंकि रोकने से गलग्रह, गुल्म, अर्श, ज्वर एवं कुष्ठ आदि रोगों को पैदा हो जाते हैं।

रक्तपित्त में विरूक्षण एवं औषधसाधित जल की उपयोगिता

विधेयं रक्तपित्तादौ यथाशक्ति विशोषणम्।
जलं च चन्दनोशीर-पर्पटाम्भोदसाधितम्।।७।।

रक्तपित्त आदि रोगों में यथाशक्ति विशोषण (रूक्षण) करना चाहिए और चन्दन, उशीर, पर्पट (पित्त पापड़ा) एवं अब्द (मुस्तक) द्वारा साधित जल पिलाना चाहिए।

ऊर्ध्व एवं अधोग रक्तपित्त में आरम्भिक क्रिया

ऊर्ध्वगे तर्पणं पूर्वं कर्त्तव्यं च विरेचनम्।
प्रागधोगमने पेया वमनं च यथाबलम्।।८।।

ऊर्ध्वग रक्तपित्त में पहले तर्पण तथा विरेचन करना चाहिए। अधोगामी रक्तपित्त में पहले पेया देनी चाहिए; तदनन्तर रोगी के बल को ध्यान में रखते हुए वमन करवाना चाहिए।

आरग्वधेन धात्र्या वा त्रिवृता पथ्ययाथ वा।
विरेचनं प्रयोक्तव्यं शर्करा-माक्षिकोत्तरम्।।९।।

पूर्व पद्य में रक्तपित्त में विरेचन देने का निर्देश किया है, उसका विधान इस प्रकार है- आरग्वध (अमलतास), धात्री (आंवला), त्रिवृत् (निशोथ) अथवा पथ्या (हरीतकी)- इनमें से किसी एक द्वारा विरेचन करवाना चाहिए। एतदर्थ इनके साथ शर्करा व मधु उचित मात्रा में मिला होना चाहिए।

मुस्तेन्द्र-यव-यष्ट्याह्व-मदनाढ्यं पयोमधु।
शिशिरं वमनं योज्यं रक्तपित्तहरं परम्।।१०।।

रक्तपित्त में मुस्ता, इन्द्रयव (कुटजबीज), यष्ट्याह्व (मुलेठी) एवं मदनफल से युक्त शीतल दुग्ध व मधु से वमन करवाना चाहिए। यह उपाय परम रक्तपित्तहर होता है।

दुर्बल रक्तपित्ती के लिए स्तम्भन की उपयोगिता

क्षीणमांसबलं बालं वृद्धं शोषानुबन्धिनम्।
अवाम्यमविरेच्यं च स्तम्भनैः समुपक्रमेत्।।११।।

जिस रोगी का मांस व बल क्षीण हो गया हो, जो बालक एवं वृद्ध हो अथवा क्षयरोग से ग्रस्त हो; वह वमन एवं विरेचन के योग्य नहीं होता है; अतः इस प्रकार के रोगी का उपचार स्तम्भन उपायों से ही करना चाहिए।

रक्तपित्तहर विविध योग

पटोलं मालती निम्बं चन्दनद्वयपद्मकम्।
तण्डुलीयं वृषं लोध्रं कृष्णमृन्मदयन्तिका।।१२।।
काकोल्यौ शारिवे द्वे च यष्टीमधुशतावरी।
भद्रामलक-धातक्यः कुटजत्वक् सपर्पटा।।१३।।
चत्वारः ससिताक्षौद्राः श्लोकार्द्धैः क्वाथसत्तमाः।
नुदन्त्येते द्रुतं पीता रक्तपित्तं सुशीतलाः।।१४।।

निम्न चार वर्गों में निर्दिष्ट द्रव्यों के क्वाथ का शर्करा एवं मधु के साथ प्रयोग करने पर रक्तपित्त नष्ट हो जाता है; क्योंकि क्वाथ में निर्दिष्ट ये द्रव्य विशेष रूप से शीतल गुण युक्त होते हैं-

१. पटोल, मालती, निम्ब, दोनों प्रकार का चन्दन (श्वेत व लाल)।
२. पद्मक (पद्माख), तण्डुलीय (चौलाई), वृष (अडूसा), लोध्र, कृष्णा मृत् (काली मिट्टी), मदयन्तिका (मल्लिका)।
३. काकोली, क्षीरकाकोली, दोनों प्रकार की शारिवा, यष्टीमधु, शतावरी।
४. भद्रा, आमलक, धातकी, कुटजत्वक्, पर्पट।

प्रियंग्वञ्जनमृल्लोध्रः श्लक्ष्णचूर्णावचूर्णितः।
वासाक्वाथो रसो वासृक्पित्तजित् ससितामधुः।।१५।।

प्रियंगु, अञ्जनमृत् (काली मिट्टी), लोध्र को पीसकर श्लक्ष्ण चूर्ण बना लें। इस चूर्ण का सेवन करने से रक्तपित्त नष्ट हो जाता है। वासा के क्वाथ अथवा रस में मधु व शर्करा मिलाकर पान करने से भी रक्तपित्त नष्ट हो जाता है। आयुर्वेद में वासा को रक्तपित्त में विशेष रूप से कारगर माना जाता है। कहा भी है-

वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च। रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति।।

अर्थात् यदि जीवन की आशा शेष है और भूमि पर वासा उपलब्ध है तो रक्तपित्ती, क्षयी व कासी क्यों दुखी होते हैं? उन्हें वासा का उपयोग कर रोग से मुक्ति पा लेनी चाहिए।

शङ्ख-पद्मक-कालीय-फलिनी-लोध्र-गैरिकाः।
पृथक् पीताः सिताज्येष्ठा वारिणासृङ्-निषूदनाः।।१६।।

शंख (व्याघ्रनख), पद्मक (पद्माख), कालीय (पीत चन्दन), फलिनी (प्रियंगु), लोध्र, गैरिक- इनमें से किसी एक के चूर्ण को शर्करा मिलाकर पानी के साथ पीने से रक्तपित्त नष्ट हो जाता है।

खदिरादसनात् पार्थाच्छाल्मल्याः कोविदारतः।
क्षौद्रेण पुष्पचूर्णानि प्रलिहेद् रक्तपित्तजित् ।।१७।।

खदिर, असन, अर्जुन, शाल्मली एवं कोविदार के फूल लेकर छाया-शुष्क कर लें। इनके चूर्ण को मधु के साथ चाटने से रक्तपित्त रोग नष्ट हो जाता है।

प्लक्षोदुम्बर-काश्मर्य-पथ्या-खर्जूरगोस्तनाः।
मधुना घ्नन्ति संलीढा रक्तपित्तं पृथक् पृथक्।।१८।।

प्लक्ष (पिलखन), उदुम्बर (गूलर), काश्मर्य (गम्भारी), पथ्या (हरड़), खर्जूर (खजूर) एवं गोस्तन (मुनक्का)- इनमें से किसी एक फल को पीसकर मधु के साथ चाटने से रक्तपित्त रोग नष्ट हो जाता है।

कूष्माण्ड-रसायन

खण्डतुल्यं शतं स्विन्नकूष्माण्डात् प्रस्थमाज्यत:।
पक्वं त्रिगन्ध-धान्याक-मरिचैश्च द्विकार्षिकै:।।१९।।
द्विपलांशै: कणाशुण्ठी-जीरकैरवचूर्णितम्।
घृतार्द्धमधुसंयुक्तं तल्लिहेद् रक्तपित्तजित्।।२०।।
क्षतक्षयतम:-श्वास-ज्वर-तृट्-कासच्छर्दिनुत्।
उरस्यं बृंहणं वृष्यं बल-वर्ण-स्वरावहम्।।२१।।

१०० पल खाँड एवं इसी के समान परिमाण में कूष्माण्ड (पेठा) के टुकड़े लेकर एक प्रस्थ घृत में पका लें। पकाते समय दो-दो कर्ष के परिमाण में त्रिगन्ध (दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात), धान्याक (धनिया) व काली मिर्च डाल दें, साथ में दो-दो पल के परिमाण में कणा (पीपल), शुण्ठी (सोंठ) एवं जीरक (जीरा) मिला दें। इस प्रकार तैयार होने पर इसमें प्रयुक्त घी की मात्रा से आधा मधु मिला दें। इस प्रकार तैयार इस योग के लेहन (चाटने) से रक्तपित्त रोग नष्ट हो जाता है।

यह योग क्षतक्षय, तम: (नेत्रों के सामने अन्धेरा छा जाना), श्वास, ज्वर, तृषा, कास एवं छर्दि को दूर करता है। यह उरस्य (छाती के लिए हितकर), बृंहण एवं वृष्य होता है और बल, वर्ण व स्वर को उत्तम करता है।

रक्तपित्तनाशक औषधसिद्ध क्षीर

द्राक्षया पर्णिनीभिर्वा बला-नागबलेन वा।
श्वदंष्ट्रया शतावर्या रक्तजित् साधितं पय:।।२२।।

द्राक्षा (मुनक्का), पर्णिनियाँ (शालपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पृश्नपर्णी), बला, नागबला, श्वदंष्ट्रा (गोखरू) एवं शतावरी- इनमें से किसी एक के साथ पकाया हुआ दूध रक्तपित्त रोग को नष्ट कर देता है।

रक्तपित्त-नाशक घृत- १.

सितैलवालुका-दूर्वा-चन्दनद्वय-मुस्तकैः।
पद्मकोत्पलकिञ्जल्क-मञ्जिष्ठोशीर-संयुतैः।।२३।।
पक्वमाजं घृतं ज्येष्ठतोये क्षीरचतुर्गुणे।
रक्तपित्तहरं पानं वस्त्यभ्यञ्जननावनैः।।२४।।

सिता, एलवालुका, दूर्वा, दोनों चन्दन (श्वेत व लोहित), मुस्तक, पद्मक (पद्माख), उत्पल (कमल), किञ्जल्क (नागकेसर पुष्प), मञ्जिष्ठा एवं उशीर- इन ओषधियों के साथ ज्येष्ठाम्बु (तण्डुल-जल) में बकरी का घृत पकाएं। पकाते समय इसमें ज्येष्ठाम्बु से चार गुना दूध डालना चाहिए। इस प्रकार तैयार किए गए इस घृत के पान से रक्तपित्त रोग नष्ट हो जाता है। इसका उपयोग वस्ति, अभ्यञ्जन एवं नावन (नस्य) के रूप में भी करना चाहिए।

रक्तपित्त-नाशक घृत- २.

विदारीं मधुकं मेदे तिन्तिडीकं सदाडिमम्।
शतावरीं सकाकोलीं मातुलुंग-शिफान्विताम्।।२५।।
पिष्ट्वा चतुर्गुणे क्षीरे सिद्धं सर्पिर्ज्वरापहम्।
विबन्धानाहशूलघ्नं कासासृक्पित्तनाशनम्।।२६।।

विदारी, मधुक (मुलेठी), मेदा, महामेदा, तिन्तिडी, दाडिम, शतावरी, काकोली, मातुलुंगशिफा (निम्बू की जड़)- इन्हें घृत में पकाएं तथा पकाते समय घृत से चार गुना दूध डालें। इस प्रकार तैयार किया गया घृत ज्वरहर होता है और विबन्ध, आनाह, शूल, कास तथा रक्तपित्त को नष्ट करता है।

नकसीर-नाशक योग

शङ्ख-गैरिकयोः कल्को धातक्या मधुकस्य वा।
घ्राणस्रुतेऽसृजि प्रोक्तं योषित्क्षीरेण नावनम्।।२७।।

शंख (व्याघ्रनख) व गैरिक का कल्क अथवा धातकी व मधुक का कल्क नकसीर से पीड़ित रोगी को देना चाहिए। इस रोग में स्त्री के दूध से नस्य देना भी हितकर होता है।

नस्यं दाडिम-पुष्पोत्थो रसो दूर्वाभवोऽथवा।
आम्रास्थिजः पलाण्डोर्वा नासिकास्रुतरक्तजित्।।२८।।

नकसीर में अनार के फूलों का रस अथवा दूर्वा का रस नस्य के रूप में देना चाहिए। आम की गुठली के अन्दर की गिरी को थोड़े पानी के साथ पीसकर नस्य देने से तथा पलाण्डु-रस का नस्य देने से भी नकसीर रोग शान्त हो जाता है।

पायुगामी एवं मेढ्रगत रक्तातिसार की चिकित्साविधि

रक्तातिसारिकं कर्म रक्ते स्यात् पायुगामिनि।
पित्तप्रमेहिकं कृत्स्नं मेढ्रगे च नियोजयेत्।।२९।।

रक्तपित्त रोग में रक्त के पायुगामी (मलद्वार से निकलने वाला) होने पर रक्तातिसार में निर्दिष्ट क्रिया करनी चाहिए। इस रोग में रक्त के मेढ्रग (लिंग से निकलने वाला) होने पर पित्तप्रमेह में की जाने वाली सम्पूर्ण चिकित्सा करनी चाहिए।

योनिगत रक्तातिसार की चिकित्सा

अपत्यवर्त्मगं स्त्रीणां रक्तपित्तमसृग्दरः।
तच्छान्त्यै पयसः पानं ससितं समधूत्कटम्।।३०।।

रक्तपित्त जब स्त्रियों के अपत्यमार्ग (योनिद्वार) से स्रावित होता है तो उसे 'असृग्दर' कहते हैं। इस रोग के शमन के लिए दूध में मधु व शर्करा मिलाकर पीना चाहिए।

सुवर्णगैरिकं जम्ब्वाः पर्णं वा कन्दमौत्पलम्।
पीतं तण्डुलतोयेन सक्षौद्रं प्रदरं जयेत्।।३१।।

सुवर्णगैरिक (सोना गेरू) को मधुमिश्रित तण्डुल-जल के साथ पीने से प्रदर रोग नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार जामुन के पत्ते अथवा उत्पलकन्द (कमलकन्द) को मधुमिश्रित तण्डुल-जल के साथ पीने से प्रदर (असृग्दर) रोग नष्ट हो जाता है।

अनन्तायाः फलिन्या वा चन्दनान्नागकेसरात्।
असृग्दरनिरोधाय पिबेत्कल्कं प्रसन्नया।।३२।।

अनन्ता (शारिवा), फलिनी (प्रियङ्गु), चन्दन व नागकेसर- इनमें से किसी एक का कल्क 'प्रसन्ना' (मद्य का ऊपरी भाग) के साथ पीने से असृग्दर (रक्तप्रदर) नष्ट हो जाता है।

प्रसन्ना- **'सुरामण्डः प्रसन्ना स्यात्'** (कैयदेव-निघण्टु, मद्यवर्ग- ३६७) सुरा (मद्य) का मण्ड अर्थात् स्वच्छ व हल्का ऊपरी भाग प्रसन्ना कहलाता है।

मधुतार्क्ष्यजसंयुक्तं मूलं स्यात्तण्डुलीयकम्।
तण्डुलाम्बुकृतं पानं सर्वप्रदरनाशनम्।।३३।।

मधु एवं तार्क्ष्यज (रसाञ्जन) के साथ तण्डुलीय (चौलाई) का मूल पीस लें, तण्डुलजल के साथ इसका पान करें। यह सभी प्रकार के प्रदर को नष्ट कर देता है।

पुनर्नवोद्भवो धात्र्याः शालुकाद् वा मयूरकात्।
अलम्बुसात् तथा योनौ संयावो वेदनापहः।।३४।।

पुनर्नवा (साटी), धात्री (आंवला), शालुक (कमलकन्द), मयूरक (अपामार्ग) अथवा अलम्बुस (भूकदम्ब/श्रावणी) से बनाए संयाव (हलुवा/लुगदी) को योनि में रखने से रक्तप्रदर-जन्य वेदना दूर हो जाती है।

मुद्गपर्णी-विपक्वेन तैलेन पिचुधारणम्।
कर्त्तव्यं रक्तनाशाय मार्दवाय सुखाय च।।३५।।

रक्तप्रदर में मुद्गपर्णी के साथ पके तेल में डुबोए हुए पिचु (फोया) को योनि में रखना चाहिए। इससे रक्तप्रदर शान्त होता है, मृदुता (कोमलता) रहती है एवं पीड़ा का शमन हो जाता है।

रक्तातिसार में पथ्य

शीतावगाहसेकाद्याः प्रशस्ता रक्तपित्तिनाम्।
शालिमुद्गादयो योज्या जांगलाश्च मृगा द्विजाः।।३६।।

रक्तपित्त वाले रोगियों के लिए शीतल जल में अवगाहन (स्नान) एवं शीतल जल से सेचन आदि क्रियाएं उत्तम होती हैं; क्योंकि इससे रक्त की उष्णता शान्त होती है। इनके आहार में शालि (चावल), मूंग आदि लघु व शीतल गुण वाले भोज्य पदार्थ उपयोगी होते हैं।

।। इति रक्तपित्ताध्यायः सप्तमः समाप्तः ।।

अष्टम अध्याय

यक्ष्मा (क्षयरोग)

क्षयरोग के कारण

त्रिदोषाज्जायते यक्ष्मगदो हेतुचतुष्टयात्।
साहसात् क्षयतो वेगधारणाद् विषमाशनात्।।१।।

चार हेतुओं से युक्त तीन दोषों की विकृति से यक्ष्मा होता है। ये चार हेतु हैं- **साहस** (अपनी शक्ति से अधिक भार उठाना/श्रम, व्यायाम आदि), **क्षय** (अतिमैथुन से शुक्र का अतिक्षय), **वेगधारण** (मल-मूत्र आदि वेगों को रोकना) एवं **विषमाशन** (अनुचित खान-पान)। शुक्र आदि धातुओं का क्षय दो प्रकार से होता है- 'अनुलोम क्षय' एवं 'प्रतिलोम क्षय'। अनुलोम क्षय में कुपोषण के कारण रस नहीं बनता तथा रस के आगे वाली रक्त, मांस आदि धातुओं का क्षय होता रहता है। प्रतिलोम क्षय में अतिमैथुन से शुक्र का क्षय होने पर उससे पूर्व वाली धातुओं का क्षय होने लगता है।

क्षयरोग के विविध रूप

तस्य रूपाणि वैस्वर्यं कासः श्वासोऽरुचिर्ज्वरः।
शिरोंऽसपार्श्वरुक् कुक्षिरोगोऽसृक्कफच्छर्दनम्।।२।।

पूर्वोक्त हेतु से होने वाले यक्ष्मा के रूप इस प्रकार हैं- वैस्वर्य (स्वर की विकृति), कास, श्वास, अरुचि, ज्वर, सिरदर्द, कन्धे, पार्श्व व ऊरु (जंघा) में दर्द, कुक्षिरोग, कफ के साथ खून आना अथवा खून की उल्टी होना।

क्षयरोग की साध्यासाध्यता

क्षीणमांसबलं जह्याद् एतैर्लिङ्गैरुपद्रुतम्।
प्रत्याख्यायेतरं चाशु द्रव्यवन्तमुपक्रमेत्।।३।।

जिसके शरीर का मांस व बल क्षीण हो चुका हो तथा जो पूर्वोक्त लिंगों से उपद्रुत (पीड़ित) हो, उसका रोग असाध्य होता है; अत: चिकित्सा करना व्यर्थ है। यदि इन लक्षणों से युक्त होने पर भी किसी धनाढ्य रोगी के सम्बन्धी चिकित्सा का आग्रह करें तो चिकित्सा-परिणाम की संदिग्धता बताकर ही वैद्य को चिकित्सा में प्रवृत्त होना चाहिए।

पूयाभमरुणं श्यावं हरितं नील-पीतकम् ।
निष्ठीवन् श्वासकासार्तो न जीवति हतस्वरः।।४।।

पूय जैसा अरुण-श्याव (लाल-काला) अथवा हरा, नीला व पीला थूकने वाला, श्वास-कास से पीड़ित एवं क्षीण स्वर वाला क्षयरोगी जीवित नहीं रह पाता है।

क्षय में मलरक्षा की आवश्यकता

प्रायोऽन्नं हि मला यस्य शोषिणो धातुसंक्षये।
शकृदेव बलं तस्य तत् संरक्ष्यं मतं सदा।।५।।

क्षयग्रस्त रोगी की धातुओं के क्षीण हो जाने पर प्राय: अन्न ही उसका मल-स्थानीय होता है, मल ही उस रोगी का बल होता है, अत: वह सदा संरक्षणीय माना गया है- अर्थात् रोगी के मल का क्षय न हो, इसका ध्यान रखना चाहिए।

क्षय में पञ्चकर्म की ग्राह्याग्राह्यता

बलीयसि प्रयोक्तव्यं पञ्चकर्म क्षयातुरे।
क्षीणदेहे भवेन्न्यस्तमेतदेव विषोपमम्।।६।।

बलवान् क्षयरोगी के लिए पञ्चकर्म का प्रयोग करना चाहिए; परन्तु

क्षीणकाय रोगी पर इसका प्रयोग विषतुल्य हो जाता है।

क्षय में पथ्य

शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गादयः शुभाः।
मद्यानि जांगलाः पक्षिमृगाः शस्ता विशुष्यतः।।७।।

शालि (चावल), षष्टिक (साठी चावल), गेहूँ, जौ, मूँग आदि उत्तम धान्य एवं स्वास्थ्यकर आसव-मद्य आदि शोषग्रस्त व्यक्ति के लिए हितकर होते हैं।

क्षयरोग-नाशक योग

कृष्णाद्राक्षासितालेहः क्षयहा क्षौद्रतैलवान् ।
मधुसर्पिर्युतो वाश्वगन्धाकृष्णासितान्वितः।।८।।

मधु व तेल के साथ मिश्रित पिप्पली एवं मुनक्का का अवलेह क्षयरोग को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार मधु व घृत से युक्त अश्वगन्धा, पिप्पली और शर्करा द्वारा तैयार किया गया अवलेह भी क्षयरोग को नष्ट कर देता है।

क्षयजन्य कास-श्वास आदि उपद्रवों के नाशक योग

शृङ्गी द्राक्षा कणा पथ्या खर्जूरं सदुरालभम्।
गौरामलकलाजाग्नि-पिप्पली-विश्वभेषजम्।।९।।
पुष्कराह्वं शटी वीरा शर्करा सुरसान्विता।
कासश्वासहराः स्वर्या लेहा मध्वाज्यतस्त्रयः।।१०।।

निम्न तीन औषध-वर्गों के साथ मधु एवं घृत मिलाकर तैयार किए गए अवलेह कासश्वासहर एवं स्वर्य होते हैं-

१. शृङ्गी, द्राक्षा, कणा (पिप्पली), पथ्या (हरीतकी), खर्जूर, दुरालभा।
२. गौर (श्वेत सर्षप) आमलक, लाजा, अग्नि (चित्रक), पिप्पली, विश्वभेषज (सोंठ)।
३. पुष्करमूल, शटी (कपूर कचरी), वीरा (पृश्निपर्णी), शर्करा एवं

सुरसा (तुलसी)।

ये योग क्षयरोग के अन्तर्गत होने वाले कास, श्वास एवं वैस्वर्य को दूर करने के लिए बताए गए हैं।

तालीसं मरिचं शुण्ठी कृष्णा भागोत्तरैः धृताः।
अर्धांशिके त्वगेले च स्यात् कृष्णाष्टगुणा सिता।।११।।
कासश्वासारुचिप्लीहज्वर-शोषाग्निमान्द्यनुत्।
हृद्यं चूर्णमतीसारगुल्मार्शश्छर्दिनाशनम्।।१२।।

तालीसपत्र, कालीमिर्च, सोंठ एवं पिप्पली को उत्तरोत्तर एक-एक भाग बढ़ाकर लें। त्वक् (दालचीनी) एवं इलायची को इन सबकी आधी मात्रा में लें। पिप्पली से आठ गुणा शर्करा लेकर सबका महीन चूर्ण बनाएं। यह चूर्ण कास-श्वास, अरुचि, प्लीहा, ज्वर, क्षयरोग एवं अग्निमान्द्य को दूर करता है। यह चूर्ण हृद्य (हृदय के लिए हितकर व प्रिय) होता है और अतिसार, गुल्म, अर्श एवं छर्दि रोग को भी नष्ट करता है।

शुण्ठीकृष्णोषणेभत्वक्त्रुटयोऽन्त्यांगवर्धिताः।
चूर्णं कण्ठ्यं सितातुल्यं हृद्-गुल्मार्शोऽर्त्तिनाशनम्।।१३।।

शुण्ठी, पिप्पली, कालीमिर्च, इभ (नागकेसर), त्वक् (दालचीनी), त्रुटि (छोटी इलायची)- इनमें उत्तरोत्तर को अधिक मात्रा में लें और सबके बराबर शर्करा मिलाकर महीन चूर्ण बनाएं। यह चूर्ण हृदयरोग, गुल्म एवं अर्श रोग को नष्ट करता है।

सितोपलादि चूर्ण

त्वगेला पिप्पली वांशी शर्करा द्विगुणोत्तराः।
पार्श्वरुक्-श्वासकासघ्नाः समध्वाज्या रुचिप्रदाः।।१४।।

त्वक् (दालचीनी), एला (छोटी इलायची), पिप्पली, वांशी (वंशलोचन) एवं शर्करा- इन सबको उत्तरोत्तर द्विगुण मात्रा में लेकर चूर्ण बनाएं और उसमें

घृत व मधु मिला दें। यह योग पार्श्व की पीड़ा एवं श्वास-कास को नष्ट करता है और रुचिवर्द्धक होता है।

क्षयहर लेह

शतावरी विदार्यश्वगन्धा पथ्या पुनर्नवा।
बलात्रयं श्वदंष्ट्राज्यं मधु लेहः क्षयापहः।।१५।।

शतावरी, विदारी, अश्वगन्धा, पथ्या (हरड़), पुनर्नवा (शटी), तीनों प्रकार की बला (बला, अतिबला, महाबला)- इनको सममात्रा में लेकर चूर्ण बनाएं, उसमें घृत डालकर स्निग्ध करें; तदनन्तर घृत से विषम मात्रा में मधु मिलाकर लेहन (चाटने) से क्षयरोग नष्ट हो जाता है।

शिलाजतु-मधु-व्योष-ताप्य-लोहरजांसि यः।
क्षीरभुग् लेहितस्याशु क्षयः क्षयमवाप्नुयात्।।१६।।

शिलाजीत, मधु, व्योष (त्रिकटु), ताप्य (स्वर्णमाक्षिक) भस्म एवं लोहभस्म- इनका लेहन और दुग्धाहार करने वाले व्यक्ति का क्षयरोग शीघ्र ही क्षीण हो जाता है।

उग्र क्षय का नाशक योग

मधु-ताप्य-विडङ्गाश्मजतु-लोह-घृताभयाः।
घ्नन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं सेव्यमाना हिताशिनः।।१७।।

हिताहार करते हुए- मधु, ताप्य (स्वर्णमाक्षिक) भस्म, विडंग, शिलाजतु, लोहभस्म, घृत एवं अभया (हरीतकी चूर्ण)- इनका सेवन अति उग्र यक्ष्मरोग को भी नष्ट कर देता है।

क्षयरोगी के लिए पुष्टिकर योग

शर्करामधुसंयुक्तं नवनीतं लिहन् क्षयी।
क्षीराशी लभते पुष्टिमतुल्ये चाज्यमाक्षिके।।१८।।

शर्करा व मधु मिलाकर मक्खन चाटने वाला क्षयरोगी शीघ्र ही पुष्टि प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार विषम मात्रा में घृत व मधु मिलाकर चाटने वाला क्षयरोगी भी शीघ्र ही पुष्ट हो जाता है। इन दोनों योगों का सेवन करते हुए रोगी को दुग्धाहार करना चाहिए।

क्षय-नाशक निर्गुण्डीसिद्ध घृत

समूलपत्रनिर्गुण्डीरस-पक्वं घृतं पिबन्।
यक्ष्मक्षीणो भवेच्छुष्मी सर्वातङ्कविवर्जितः।।१९।।

मूल व पत्र सहित निर्गुण्डी के रस में सिद्ध घृत को मात्रानुसार पीने वाला क्षीणकाय क्षयरोगी सभी रोगों से मुक्त हो जाता है।

ग्यारह प्रकार के क्षय का नाशक विशिष्ट घृत

पुष्कराह्व-शटी-द्राक्षा-बलोत्पल-कणा-झटाः।
जीवन्ती-मधुक-व्याघ्री-त्रायन्ती-यास-वत्सकाः।।२०।।
श्वदंष्ट्रा चेति तुल्यांशैः पिष्टैः पक्वं घृतं जयेत्।
एकादशविधरूपं प्रयोगाद् राजयक्ष्मणः।।२१।।

पुष्कराह्व (पुष्करमूल), शटी (कपूर कचरी), द्राक्षा (मुनक्का), बला, उत्पल (कमल), कणा (पिप्पली), झटा (भुई आंवला), जीवन्ती, मधुक (मुलेठी), व्याघ्री (कण्टकारी), त्रायन्ती, यास, वत्सक एवं श्वदंष्ट्रा (गोखरू)- इन्हें समभाग में लेकर पीस लें; तदनन्तर इनके साथ घृत सिद्ध कर प्रयोग करें। यह घृत एकादश प्रकार के राजयक्ष्मा को नष्ट कर देता है।

क्षयरोग-नाशक विशेष योग

आजमाज्यमजाक्षीरदधिमूत्रशकृद्रसैः।
सपञ्चलवणैः पक्वमनुक्षीरं क्षयापहम्।।२२।।
यवान्नभुग् अजामध्यशायी तत्क्षीरपायनः।
तद्विण्मूत्रकृतोद्वर्तः सोऽनेन जयति क्षयम्।।२३।।

बकरी के दूध, दही, मूत्र एवं शकृद् (मल) के रस के साथ पाँचों लवण (सैन्धव, सौवर्चल, विड, कृष्ण, सामुद्र) मिलाएं। इनके साथ बकरी का घृत पकाकर सिद्ध करें। इस योग का सेवन कर अनुपान के रूप में बकरी का दूध पीने से क्षयरोग नष्ट हो जाता है।

यवान्न (जौ का दलिया आदि) खाने वाला, बकरियों का दूध पीने वाला, बकरियों के मध्य ही सोने वाला तथा बकरियों के मल-मूत्र से उबटन करने वाला रोगी क्षयमुक्त हो जाता है। इस प्रकार की आहार-विहार चर्या से वह क्षयरोगी के लिए अति हितकर होती है।

क्षयरोग की चिकित्सा में बकरी के दूध का महत्त्व- प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थों में बकरी के दूध को क्षयनाशक द्रव्यों में सर्वोत्कृष्ट बताया है- **अजाक्षीरं शोषघ्न-स्तन्यसात्म्य-रक्तसांग्राहिक-रक्तपित्त-प्रशमनानाम्।**

(चरकसंहिता, सूत्रस्थान-२५.४०)

आधुनिक अनुसन्धान में पाया गया है कि बकरी एक ऐसा प्राणी है, जिस पर क्षय के जीवाणु असर नहीं करते। इसका दूध भी सर्वथा क्षय के जीवाणुओं से मुक्त होता है। आयुर्वेदज्ञ ऋषि-मुनि इस तथ्य को बहुत प्राचीन काल से जानते थे, अत: प्राचीन भारत में यह परम्परा थी कि जिसे क्षयरोग हो जाता था, उसे बकरियों के बीच में रखते थे और उनका दूध पिलाते थे। प्रस्तुत श्लोक में तो उनके मल-मूत्र से उबटन करने का विधान भी किया है। यह भी क्षयरोग के निवारण में सहायक होता है। संस्कृत के एक अन्य प्राचीन ग्रन्थ में भी इसी प्रकार का वाक्य मिलता है- **'अजधेनुभिः सह समावसेत् क्षयी'** (मङ्खकोष-टीकासार-४५२)। अर्थात् क्षयरोगी को धेनु (दुधारू) बकरियों के साथ रहना चाहिए।

क्षयरोग-नाशक तैल

क्षीरे चतुर्गुणे तैलं प्रस्थं शुद्धं तिलोद्भवम्।
शतशः पाचितं यष्टी-पलकल्केन यत्नतः।।२४।।

पान-नस्यादिभिर्यक्ष्महृद्वातामयपाण्डुजित्।
ऊर्ध्वजत्रुगदोन्माद-रक्तपित्तविसर्पहृत्।।२५।।

एक प्रस्थ तिल का तेल लेकर उसमें चार गुणा दूध मिलाएं, ऊपर से इसमें यष्टिमधु (मुलेठी) का कल्क एक पल परिमाण में मिला दें। अब इसे यत्नपूर्वक बार-बार पकाएं। इस प्रकार सिद्ध किए गए तेल का पान एवं नस्य आदि के रूप में प्रयोग करने से यक्ष्मा, वातरोग एवं पाण्डुरोग नष्ट हो जाते हैं। यह तेल उन्माद, रक्तपित्त, विसर्प एवं ऊर्ध्वजत्रु-विकारों (नेत्र, नाक, कान, गला व सिर के रोगों) को भी दूर करता है।

क्षयरोग में उपयोगी लघु च्यवनप्राश

बिल्वादिपञ्चमूलाब्द-बलापर्णीचतुष्टयम्।
ऋद्धिकृष्णाशटीपथ्याजीवकर्षभकामृताः।।२६।।
द्राक्षा पुनर्नवा मेदा जीवन्ती काकनासिकाः।
उत्पलैलाझटा-शृङ्गी-काकोली-वृषचन्दनाः।।२७।।
विदारीगोक्षुरव्याघ्रीपौष्करं च पलोन्मिताः।
शतानि पञ्च धात्र्याश्च जलद्रोणे विपाचयेत्।।२८।।
पलद्वादशके भृष्ट्वा ता धात्रीस्तैलसर्पिषोः।
सितार्द्धतुलया युक्ताः क्वाथे लेहं पुनः पचेत्।।२९।।
द्वे पिप्पल्याः पले वांश्याः चत्वारः षट् च माक्षिकात्।
चातुर्जातपलं सिद्धे शीते तस्मिन् नियोजयेत्।।३०।।
हृद्रोग-श्वासतृट्कासवातरक्त-क्षयार्त्तिजित्।
मेध्योऽयं च्यवनप्राशः स्वर्यो वृष्यो रसायनः।।३१।।

बिल्व आदि पञ्चमूल, अब्द (मुस्तक), बला, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पृश्निपर्णी, शालपर्णी, ऋद्धि, कृष्णा (पिप्पली), शटी (कपूरकचरी), पथ्या (हरीतकी), जीवक, ऋषभक, अमृता, द्राक्षा, पुनर्नवा, मेदा, जीवन्ती, काकनासिका, उत्पल, एला (छोटी इलायची), अझटा, शृङ्गी, काकोली, वृष,

चन्दन, विदारीकन्द, गोखरू, व्याघ्री (कण्टकारी) एवं पौष्कर (पुष्करमूल)- इन सबको एक-एक पल के परिमाण में लें, पाँच सौ आँवले लेकर उन्हें एक द्रोण (दस सेर) जल में उबालें और आँवले निकालकर क्वाथ को छान लें। उबले हुए आँवलों को बारह पल मात्रा वाले घृत व तेल में भूनकर पूर्वोक्त सभी ओषधियाँ मिला दें; तदनन्तर क्वाथ में अर्धतुला परिमाण में शर्करा मिलाकर पुनः पकाएं। शीतल होने पर इसमें दो पल पिप्पली, चार पल वांशी (वंशलोचन), छह पल मधु, एक पल चातुर्जात (दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेसर) मिलाएं। इस प्रकार तैयार किया गया 'च्यवनप्राश' हृद्रोग, श्वास, तृषा, कास, वातरक्त एवं क्षयरोग को जीत लेता है। यह मेधा के लिए हितकर, स्वर्य (स्वर के लिए हितकर), वृष्य एवं रसायन है।

अभयारिष्ट की विधि एवं गुण

कपित्थस्य विशालाया दश पञ्च पलानि च।
धात्रीप्रस्थं तदर्द्धेन पथ्या च द्विपलांशिकम्।।३२।।
कृष्णैलवालुकं लोध्रं विडङ्गं मरिचं जले।
चतुर्द्रोणे विपाच्यैतत् पादस्थं पूतशीतलम्।।३३।।
घृतभाण्डे स्थितं पक्वं गुडद्विशतसङ्गतम्।
युक्त्यायमभयारिष्टः पेयोऽर्शोयक्ष्मकुष्ठनुत्।।३४।।
शोफपाण्डुज्वरप्लीह-हृद्रोगोदरगुल्महा।
ग्रहणीकामलाश्वित्र-कृम्यरोचकनाशनः।।३५।।

कपित्थ (कैंथ) एवं विशाला (इन्द्रवारुणी) के पन्द्रह पल लें। इस परिमाण का आधा- अर्थात् साढ़े सात पल धात्री व हरीतकी लें। दो-दो पल परिमाण में कृष्णा (पिप्पली), एलवालुक, लोध्र, विडंग एवं कालीमिर्च लें। इन सबको चार द्रोण जल में पकाएं और जल का चतुर्थांश शेष रहने पर शीतल कर छान लें। इसे घी से चिकने हो चुके मिट्टी के पात्र में डालकर सन्धान करें। इस प्रकार 'अभयारिष्ट' तैयार होता है। इसे युक्तिपूर्वक पीना

चाहिए। यह अर्श, यक्ष्मा एवं कुष्ठ को नष्ट कर देता है। अभयारिष्ट शोफ, पाण्डुरोग, ज्वर, प्लीहा, हृद्रोग, उदररोग, गुल्म, ग्रहणी, कामला, श्वित्र, कृमि एवं अरोचक को भी नष्ट करता है।

क्षयरोग के आनुषङ्गिक उपद्रवों की चिकित्साविधि

उपद्रवा ज्वराद्या ये ते साध्याः स्वैश्चिकित्सितैः।
पुष्टये शोषिणः कार्यमभ्यङ्गोद्वर्त्तनादिकम् ।।३६।।

क्षयरोग में जो ज्वर आदि उपद्रव होते हैं, उन्हें उनकी निर्दिष्ट चिकित्सा से दूर किया जाना चाहिए। क्षयरोगी की पुष्टि के लिए अभ्यंग (मालिश) एवं उद्वर्त्तन (उबटन) आदि भी करने चाहिए।

।। इति यक्ष्माध्यायोऽष्टमः समाप्तः।।

नवम अध्याय

गुल्म रोग

गुल्म-निदान

दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याशनविहारतः।
कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मं कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपिणम्।।१।।

मिथ्या आहार-विहार से दूषित हुए वात आदि दोष पाँच प्रकार के गुल्म रोग को पैदा करते हैं। गुल्म में पेट के अन्दर गोला या गाँठ जैसी बन जाती है।

गुल्म के पाँच स्थान

तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वहृन्नाभिवस्तयः।
वक्ष्यतेऽतः परं चापि लक्षणं सचिकित्सितम्।।२।।

गुल्म के पाँच स्थान होते हैं- दोनों पार्श्व, हृदय, नाभि एवं वस्ति। अब इसके लक्षण व चिकित्सा का वर्णन किया जा रहा है।

सभी गुल्मों में पाए जाने वाले सामान्य लक्षण

अरुचिः कृच्छ्रविण्मूत्रं वाततान्त्रविकूजनम्।
आनाहश्चोर्ध्ववातत्वं सर्वगुल्मेषु लक्षयेत्।।३।।

अरुचि, कष्टपूर्वक मल-मूत्र का त्याग होना, वातता (आँतों में वात बद्धता), आँतों में कूजन की ध्वनि तथा ऊर्ध्ववात- ये लक्षण सभी प्रकार के गुल्मों में दिखाई देते हैं।

वातगुल्म का लक्षण

शूलाध्मानमलासङ्गतोद-स्फुरणलक्षणम्।
वातगुल्मं वदेन्मन्याशिर:शंखाङ्गरुक्करम्।।४।।

जिस गुल्म में शूल, आध्मान, मलासंग (मलबद्धता/कब्ज), तोद (चुभन जैसी पीड़ा) एवं स्फुरण (सम्बद्ध स्थल पर फड़कन) होती है, उसे वातजन्य गुल्म समझना चाहिए। इसमें मन्या (ग्रीवा के पृष्ठ भाग की नाड़ी), सिर एवं शंख (कनपटी)- इन अंगों में पीड़ा होती है।

पित्तगुल्म का लक्षण

दाह-तृष्णा-भ्रम-स्वेद-शुक्तोद्गारास्यतिक्तता।
स्पर्शासहत्वमाख्यातं पित्तगुल्मस्य लक्षणम्।।५।।

दाह, तृष्णा, भ्रम, स्वेद, शुक्तोद्गार (खट्टी डकार), आस्य-तिक्तता (मुँह का कड़वापन) तथा स्पर्शासहत्व (स्पर्श को सहन न कर पाना)- ये पित्तगुल्म के लक्षण कहे गए हैं।

कफगुल्म का लक्षण

प्रसेकारुचिहृल्लासश्वास-कासाविपाकता।
कठिनोन्नतता छर्दिर्गुल्मरूपं कफात्मके।।६।।

प्रसेक (लार टपकना), अरुचि (भोजन के प्रति अनिच्छा), हृल्लास (जी मिचलाना), श्वास (दमा), कास (खाँसी), अविपाक (भोजन का न पचना), सम्बद्ध स्थल (जहाँ गुल्म का उभार हो, शरीर के उस भाग) पर कठोरता व उन्नतता (उभार) एवं छर्दि- ये कफजन्य गुल्म के लक्षण हैं।

असाध्य गुल्मरोग

तीव्ररुग्दाहवान् गुल्म: शिलावच्च घनोन्नत:।
मनोदेहाग्निसादी स्यादसाध्य: सन्निपातक:।।७।।

तीव्र पीड़ा व जलन से युक्त, शिला के समान घन व उन्नत गुल्म त्रिदोषजन्य होता है। यह मन, देह व अग्नि को निष्क्रिय एवं विषण्ण (व्याकुल एवं कुण्ठित) कर देता है। इस प्रकार के लक्षणों से युक्त सन्निपातज गुल्म असाध्य माना जाता है।

स्त्रियों का रक्तज गुल्म

स्रुते गर्भे प्रजातायामृतौ वा दाहशूलवान् ।
नार्या रक्तेन गुल्मः स्याद् गर्भलिङ्गाभिसूचकः ।।८।।

गर्भपात होने पर, प्रसव होने पर अथवा ऋतुकाल में उपवास, अनशन, भय, रूक्ष पदार्थों के सेवन, वेगावरोध एवं स्तम्भक पदार्थों के सेवन से कुपित हुआ वायु गर्भाशय के मुख को बन्द कर देता है, जिससे गर्भाशय स्वच्छ नहीं हो पाता और उससे निकलने वाला रक्त वहीं एकत्र होकर पिण्डित होने लगता है। प्रत्येक मास में उसकी वृद्धि होने लगती है तथा ऋतुस्राव के न होने से गर्भस्थिति की भ्रान्ति हो जाती है। वस्तुतः यह रक्तज गुल्म होता है। गर्भ के समान ही इसमें मासिक धर्म का अवरोध, भूख न लगाना, वमन, अरुचि, शरीर का भारीपन आदि लक्षण होते हैं। गर्भ के समान पिण्ड का स्फुरण भी होता है, साथ में दाह एवं शूल भी होता है।

रक्तज गुल्म रजादर्शन की अवस्था वाली नारियों को ही होता है, कुमारी या वृद्धाओं को नहीं। दसवें मास में यह रक्तगुल्म पूर्णतया पिण्डिताकार होने से आहरण योग्य होता है, अतः उस समय इसकी चिकित्सा सरलता से हो सकती है।

★ रक्तगुल्म-विषयक 'सिद्धसार-संहिता' का प्रस्तुत पद्य बहुत संक्षिप्त रूप में है। अतः व्याख्या में इसका अर्थविस्तार गदनिग्रह, गुल्माधिकार (२५.१६-१७) के आधार पर किया गया है।

असाध्य गुल्मरोग

कूर्मोन्नतसिरानद्धं गुल्मार्त्तं बहुरोगिणम्।
हृन्नाभिपाणिपादोत्थ-शोफखिन्नं च वर्जयेत्।।९।।

जिस गुल्म में कूर्म (कछुए) के समान उभार हो, नसों में तनाव हो एवं गुल्म के अतिरिक्त अनेक रोग भी जुड़े हों, जिसमें हाथ-पैरों पर शोफ (सूजन) आ गई हो, ऐसा गुल्मरोग असाध्य होता है। उसकी चिकित्सा निष्फल रहती है।

वातजन्य गुल्म की चिकित्सा

स्नेहैरुपाचरेत्पूर्वं वातगुल्ममतः परम् ।
चूर्णैरभ्यञ्जनस्वेद-निरूहस्नेहबस्तिभिः।।१०।।

प्रथम स्थान पर निर्दिष्ट वातजन्य गुल्म का पहले स्नेहों द्वारा उपचार करना चाहिए; तदनन्तर चूर्ण, अभ्यञ्जन, स्वेदन, निरूह एवं स्नेहवस्तियों से उपचार करना चाहिए।

गुल्मनाशक घृत- १.

विडङ्ग-त्रिफला-व्योष-चव्य-धान्याग्निकल्कितम्।
घृतं क्षीरेण संसिद्धं पानात् पवनगुल्मनुत्।।११।।

विडङ्ग, त्रिफला, त्रिकटु, चव्य, धान्याक (धनिया), अग्नि (चित्रक)- इन सबके कल्क में दूध मिलाएं, पुनः इनसे घृत सिद्ध करें। इस घृत के पान से वातजन्य गुल्म नष्ट हो जाता है।

गुल्मनाशक घृत- २.

सौवर्चलयवक्षार-वचातिक्ताभयाग्निभिः।
अक्षांशैः सर्पिषः प्रस्थं सविडङ्ग-कटुत्रिकैः।।१२।।
साधितं पयसा हन्ति वातगुल्मं सवेदनम्।
हिक्काश्वासकृमिप्लीहकासघ्नमपि पानतः।।१३।।

सौवर्चल (सोंचर नमक), यवक्षार, वचा, तिक्ता, अभया, अग्नि (चित्रक), विडङ्ग एवं त्रिकटु- इन्हें एक-एक अक्ष (एक-एक कर्ष) लेकर दूध में मिलाएं और उसमें एक प्रस्थ घृत सिद्ध करें। इस घृत को उचित मात्रा में पीने से वेदनायुक्त वातगुल्म नष्ट हो जाता है। इससे हिक्का, श्वास, कृमि, प्लीहा-विकार एवं कासरोग भी नष्ट हो जाते हैं।

गुल्मनाशक घृत- ३.

पलांशैर्विश्वचव्याग्नि-पिप्पलीक्षारसैन्धवैः।
क्वाथेन चिरबिल्वस्य घृतप्रस्थं प्रसाधितम्।।१४।।
गुल्मोदावर्त्तपाण्डुत्वग्रहणी-श्वासकासजित्।
ज्वर-दुष्टप्रतिश्याय-प्लीहार्शःशमनं परम्।।१५।।

विश्व (शुण्ठी), चव्य, चित्रक, पिप्पली, क्षार (यवक्षार), सैन्धव लवण- इन सबको एक-एक पल की मात्रा में मिलाकर चिरबिल्व के क्वाथ के साथ एक प्रस्थ घृत पकाएं। यह घृत गुल्म, उदावर्त्त, पाण्डुरोग, ग्रहणीरोग, श्वास एवं कास को नष्ट कर देता है। इसके प्रयोग से ज्वर, जीर्ण प्रतिश्याय (बिगड़ा जुकाम), प्लीहा-विकार एवं अर्शरोग नष्ट हो जाता है।

गुल्मनाशक घृत- ४.

हिंग्वम्लवेतसव्योष-सुरसैलावचाविडैः।
धान्यसौवर्चलाजाजी-क्षारदाडिमपौष्करैः।।१६।।
साजगन्धाशटीवह्निदीप्यकैः साधितं घृतम्।
दध्नानिलजगुल्मोत्थशूलानाहादिरोगहृत्।।१७।।

हींग, अम्लवेतस, त्रिकटु, सुरसा (तुलसी), एला (छोटी इलायची), वचा, विडङ्ग, धान्याक (धनिया), सौवर्चल, अजाजी, क्षार (यवक्षार), दाडिम (अनार), पौष्कर (पुष्करमूल), अजगन्धा, शटी (कपूरकचरी), चित्रक, दीप्यक (अजवायन)- इन औषधियों को दही में मिलाकर उससे घृत

सिद्ध करें। यह घृत वातगुल्म एवं उसमें होने वाले शूल, आनाह आदि रोगों को नष्ट करता है।

गुल्मनाशक घृत- ५.

हपुषैलानल-व्योष-चव्य-दीप्यक-सैन्धवैः।
साजाजिग्रन्थिकैः कोलमूलकाम्लाम्बुवद् घृतम्।।१८।।
दधिक्षीरयुतं पक्वं गुल्मशूलविबन्धनुत्।
योनिदोषाविपाकार्शःश्वासहृत्पार्श्वशूलजित्।। १९।।

हपुषा, एला (छोटी इलायची), चित्रक, त्रिकटु, चव्य, दीप्यक (अजवायन), सैन्धव लवण, जीरा, ग्रन्थिक (पिप्पलीमूल), कोलमूल (चव्यमूल), अम्लाम्बु (कांजी), दही व दूध- इनके साथ सिद्ध घृत गुल्म, शूल एवं विबन्ध को नष्ट कर देता है। यह योनिदोष, अविपाक (अपच), अर्श, श्वास, हृदयशूल एवं पार्श्वशूल को भी दूर करता है।

गुल्मनाशक विविध चूर्ण

एत एव घृतोद्दिष्टा गणाः पीता वचूर्णिताः।
उष्णाम्बुमद्यधान्याम्लैर्गुल्मशूलादिवारणाः।।२०।।

उपर्युक्त घृतों में निर्दिष्ट औषधद्रव्यों को चूर्णित कर उष्णाम्बु, मद्य अथवा धान्याम्ल के साथ पान किया जाए तो ये गुल्म एवं शूल आदि रोगों को दूर कर देते हैं।

वचाविडाभयाशुण्ठी-हिङ्गुकुष्ठाग्निदीप्यकाः।
द्वित्रिषट्चतुरेकाष्टसप्तपञ्चांशिकाः क्रमात्।।२१।।
चूर्णं मद्यादिभिः पीतं गुल्मानाहोदरापहम्।
शूलार्शःश्वासकासघ्नं ग्रहणीदीपनं मतम्।।२२।।

निर्दिष्ट औषधियों का चूर्ण बनाने के लिए अपेक्षित मात्रा में हींग लें, उससे द्विगुण वचा, त्रिगुण विड लवण, चतुर्गुण शुण्ठी, पञ्चगुण दीप्यक,

षड्गुण अभया, सप्तगुण चित्रक एवं अष्टगुण कूठ लें। भाव यह है कि यदि हींग १० ग्राम लें तो वचा २० ग्राम, विडङ्ग ३० ग्राम, सोंठ ४० ग्राम, दीप्यक ५० ग्राम, हरड़ ६०, चित्रक ७० ग्राम एवं कूठ ८० ग्राम लेकर चूर्ण बनाएं। इस चूर्ण का उष्णाम्बु, मद्य अथवा धान्याम्ल के साथ सेवन करने से गुल्म, आनाह एवं उदररोग नष्ट हो जाते हैं। यह चूर्ण शूल, अर्श, श्वास व कास को भी दूर करता है और परम ग्रहणी-दीपन होता है।

वातगुल्म-नाशक विशिष्ट योग

रामठं मातुलुंगाम्बुविडदाडिमसैन्धवैः।
सुरामण्डेन सम्पीतं वातगुल्मरुगीरणम्।।२३।।

हींग को उचित मात्रा में निम्बूरस, विड लवण, दाडिम (अनार) व सैन्धव लवण के साथ मिलाकर सुरामण्ड (मद्य के ऊपरी भाग/प्रसन्ना) के साथ पिएं। इस प्रकार प्रयुक्त हींग वातगुल्म रोग को नष्ट कर देती है।

गुल्म-शूल-विबन्धहर योग

विडाम्लवेतसक्षारहिङ्गुसौवर्चलान्वितम्।
गुल्मशूलविबन्धार्तैः पेयं मस्त्वादि शर्मदम्।।२४।।

गुल्म, शूल एवं विबन्ध से पीड़ित रोगियों को विड लवण, अम्लवेतस, क्षार (यवक्षार), हींग एवं सौवर्चल लवण से युक्त मस्तु आदि पीना चाहिए। यह उनके लिए रोगहर होने से सुखदायक होता है।

गुल्मनाशक रेचन घृत

कृमिघ्न-बृहती-दन्ती-स्नुक्पयस्त्रिफलानलैः।
ससैन्धवैः पचेत् सर्पिः कुडवं कार्षिकैर्जले।।२५।।
एतत्पलार्द्धयोगेन रेचनं जाङ्गलाशिनाम्।
गुल्मोदावर्त्तकुष्ठार्शो-वह्निसादोदरान्तकृत्।।२६।।

कृमिघ्न (विडङ्ग), बृहती, दन्ती, स्नुहीक्षीर (थूहर का दूध), त्रिफला,

चित्रक, सैन्धव लवण- इन सबको ३ कर्ष जल के साथ मिलाएं; तदनन्तर इनके साथ एक कुडव (अञ्जलि) परिमाण में घृत सिद्ध करें। इस घृत का अर्द्धपल परिमाण की मात्रा में सेवन करें। यह घृत रेचन के रूप में विकार को दूर करता है। पथ्याहार के रूप में जाङ्गल रस लें। इस प्रकार सेवन करने से यह घृत गुल्म, उदावर्त्त, कुष्ठ, अर्श, अग्निमान्द्य व उदर-रोगों को नष्ट कर देता है।

गुल्म-नाशक बिन्दुघृत

त्रिवृत्स्नुक्क्षीरधात्र्यम्बुकम्पिल्लाह्वै: पलांशिकै:।
सैन्धवार्द्धपलोपेतैर्हविः कुडवमम्भसि।।२७।।
पक्वमस्मात् पिबेत् कर्षमुष्णवार्यनुपानकम्।
सर्वगुल्मोदरध्वंसि स्रंसनं बिन्दु-सञ्ज्ञकम्।।२८।।

त्रिवृत् (निशोथ), स्नुक्क्षीर (थूहर का दूध), धात्री (आंवला), अम्बु (उदीच्य) एवं कम्पिल्ल (कबीला)- इन्हें एक-एक पल की मात्रा में लें। इनमें अर्द्धपल सैन्धव लवण मिलाएं। इन सभी के साथ जल में कुडव परिमाण में घृत सिद्ध करें। इसे एक कर्ष की मात्रा में पिएं तथा ऊपर से अनुपान के रूप में उष्ण जल का सेवन करें। इस प्रकार प्रयोग में लाया गया यह **'बिन्दुघृत'** सभी प्रकार के गुल्म व उदर-रोगों को नष्ट करता है। यह स्रंसन- अर्थात् मल की अध: प्रवृत्ति करवाने वाला होता है।

पित्तजन्य गुल्म की चिकित्सा

काकोल्यादिमहातिक्तवासाद्यै: पित्तगुल्मिनम्।
स्नेहितं स्रंसयेत्पश्चाद् योजयेद् वस्तिकर्मणा।।२९।।
न्यग्रोधादे: कुशादेर्वा क्वाथेनोत्पलपूर्वकै:।
जीवनीयैर्घृतं सिद्धं पित्तरक्तोत्थगुल्मनुत्।।३०।।

पित्तगुल्मी को काकोल्यादि घृत, महातिक्त घृत अथवा वासादि घृत

से स्नेहित करके स्रंसन करवाना चाहिए; तदनन्तर वस्ति देनी चाहिए। न्यग्रोधादिगण अथवा कुशादिगण के क्वाथ में उत्पल एवं जीवनीय ओषधियों के साथ सिद्ध घृत पित्तरक्तजन्य गुल्म को नष्ट कर देता है।

चतुर्गुणेक्षु-धात्र्यम्बुचेतकीपादसाधितम्।
हविः पित्तकृतं गुल्ममाशु पीतं व्यपोहति।।३१।।

हरीतकी से चार गुणा इक्षुरस एवं इतना ही आमलकी रस लें। इनके साथ सिद्ध घृत पित्तगुल्म को शीघ्र ही दूर कर देता है।

पित्तगुल्मे त्रिवृच्चूर्णं पातव्यं त्रिफलाम्बुना।
विरेकाय सितायुक्तं कम्पिल्लं वा समाक्षिकम्।।३२।।

पित्तगुल्म में त्रिवृत्- अर्थात् निशोथ का चूर्ण त्रिफला-जल के साथ शर्करा मिलाकर विरेचन हेतु देना चाहिए अथवा मधु सहित कम्पिल्ल (कबीला) द्वारा विरेचन करवाना चाहिए।

कफजन्य गुल्म की चिकित्सा

स्वेदोपनाहनस्नेहतीक्ष्णस्रंसनवस्तिभिः।
योगैश्च वातगुल्मोक्तैः श्लेष्मगुल्ममुपक्रमेत्।।३३।।

स्वेद, उपनाहन, स्नेहन, तीक्ष्ण स्रंसन एवं वस्तियों द्वारा तथा वातगुल्म चिकित्सा के प्रसंग में लिखे गए योगों द्वारा श्लेष्मगुल्म की चिकित्सा करनी चाहिए।

कफजन्य गुल्म का नाशक षट्पल घृत

शुण्ठी-ग्रन्थिककृष्णाग्नि-चव्यक्षारैः पलोन्मितैः।
तुल्यक्षीरं घृतप्रस्थं साधितं कफगुल्मनुत्।।३४।।
ग्रहणीपाण्डुताप्लीहकास-श्वासज्वरापहम्।
एतत् षट्पलकं नाम शोषोदावर्तनाशनम्।।३५।।

शुण्ठी, ग्रन्थिक, कृष्णा, चित्रक, चव्य एवं क्षार- इन सबको एक-एक पल के परिमाण में लेकर एक प्रस्थ दूध में मिलाएं। इन सबके साथ एक प्रस्थ घृत सिद्ध करें। यह **'षट्पल'** नामक घृत कफजन्य गुल्म को नष्ट करता है। यह ग्रहणी, पाण्डुता, प्लीहाविकार, कास, श्वास, ज्वर, शोष एवं उदावर्त्त को भी नष्ट करता है।

कफगुल्म-नाशक द्विविध घृत

आरग्वधादितोयेन दीपनीयैः शृतं हविः।
श्लेष्मगुल्महरं पेयं पिप्पल्याद्यमथापरम्।।३६।।

आरग्वधादि गण के क्वाथ एवं दीपनीय औषधों के साथ सिद्ध किया गया घृत श्लेष्मगुल्म को नष्ट करता है। इसी प्रकार पिप्पल्यादि गणोक्त द्रव्यों से सिद्ध पिप्पल्यादि घृत भी श्लेष्मगुल्म-नाशक होता है।

गुल्मनाशक तक्र (छाछ)

सौवर्चलाग्निहिंग्वक्तं पिबेत्तक्रं प्रदीपनम्।
विडदीप्यकयुक्तं वा कफवातानुलोमनम्।।३७।।

सौवर्चल लवण (सोंचर नमक), चित्रक एवं भुनी हींग मिलाकर तक्र पीना चाहिए। यह श्लेष्मगुल्म-नाशक एवं अग्निप्रदीपन होता है। विड लवण एवं दीप्यक से युक्त तक्र भी कफवात का अनुलोमन करता है और गुल्मरोग को दूर करता है।

स्त्रियों के रक्तगुल्म की चिकित्सा

नार्या लोहितगुल्मिन्या गर्भकालावधेः परम्।
स्निग्धस्विन्नशरीरायाः कार्यं स्नेहविरेचनम्।।३८।।

रक्तगुल्म वाली नारी को गर्भकाल की अवधि- अर्थात् नौ मास बीतने के उपरान्त स्नेहन व स्वेदन करवाकर स्नेहयुक्त औषध से विरेचन करवाना चाहिए।

शताह्वाचिरबिल्वत्वग्दारुभार्गीकणोद्भवः।
कल्कः पीतो हरेद् गुल्मं तिलक्वाथेन रक्तजम्।।३९।।

शताह्वा (सोआ), चिरबिल्व की छाल, देवदारु, भार्गी एवं कणा (पिप्पली) से बने कल्क का तिलक्वाथ के साथ सेवन करवाना चाहिए। यह योग रक्तज गुल्म को दूर कर देता है।

तिलक्वाथो गुडव्योषघृतभार्गीयुतो भवेत्।
पानं रक्तोद्भवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषिताम्।।४०।।

गुड़, त्रिकटु, घृत एवं भार्गी से युक्त तिल का क्वाथ स्त्रियों को रक्तज गुल्म में पिलाना चाहिए। ऋतुस्राव के बाधित होने पर भी इसका पान करवाना चाहिए। इससे ये दोनों व्याधियाँ दूर हो जाती है।

पीतो धात्रीरसो युक्त्या किंशुकक्षारसाधितः।
क्षारत्र्यूषणसंयुक्ता मदिरा चास्त्रगसुल्मभित्।।४१।।

पलाश-क्षार के साथ साधित धात्रीरस का पान करने से स्त्रियों का रक्तज गुल्म नष्ट हो जाता है। क्षार एवं त्रिकटु से युक्त मदिरा का औषध रूप में सेवन करने से भी स्त्रियों का रक्तगुल्म रोग नष्ट हो जाता है।

अतिप्रवृत्तमस्त्रं तु भिन्ने गुल्मे निवारयेत्।
रक्तपित्तहरैर्योगैर्वातघ्नैश्च मरुद्रुजाम्।।४२।।

इस प्रकार के उपचार से स्त्रियों के रक्तज गुल्म के शान्त होने पर रक्तपित्तहर योगों से रक्त की अति प्रवृत्ति (अधिक स्राव) का शमन करना चाहिए तथा वातघ्न योगों से वातजन्य पीड़ा का शमन करना चाहिए।

पुराने गुल्म में बाहुसिरावेधन एवं दाह

वातादीनां स्थिरे गुल्मे कार्यो बाहुसिराव्यधः।
दाहश्च कफवातोत्थे भिषजा दृष्टकर्मणा।।४३।।

वात आदि के गुल्म के स्थिर (चिरस्थायी या जीर्ण) होने पर शल्यक्रिया में कुशल अनुभवी वैद्य द्वारा भुजाओं की सिरा का वेधन करना चाहिए। कफवात-जन्य गुल्म में दाह करना चाहिए।

गुल्म में पथ्यापथ्य

गुर्वभिष्यन्दिवर्ज्यानि रक्षन्नग्निबलं सदा।
गुल्मवत्स्वन्नपानानि यथावस्थं प्रयोजयेत्।।४४।।

वैद्य को चाहिए कि गुल्मरोगी के अग्निबल की रक्षा करते हुए गुरु एवं अभिष्यन्दी पदार्थों से रहित हितकर अन्नपान का ही अवस्थानुसार प्रयोग करावे।

।। इति गुल्माध्यायो नवमः समाप्तः।।

दशम अध्याय

उदर रोग

उदररोग- निदान एवं भेद

मन्दाग्नीनामपथ्यान्नैर्दुष्टा दोषाः प्रकुर्वते।
स्वेदाम्बुस्त्रोतसी रुद्ध्वा घोरं ह्युदरमष्टधा।।१।।

जो व्यक्ति मन्दाग्नि हैं तथा ऊपर से अपथ्यान्न-सेवन भी करते हैं, उनके दूषित हुए दोष स्वेदवह एवं रसवह स्रोतों को अवरुद्ध कर घोर उदररोग पैदा कर देते हैं। यह आठ प्रकार का होता है।

अग्निमन्दता अन्य रोगों में परम्परया कारण है, परन्तु उदररोग में साक्षात् कारण है। अत एव श्लोक में इसे प्रथम स्थान पर रखा है। स्वेदवह स्त्रोतों का मूल मेद, रोमकूप तथा स्वेदवह ग्रन्थियाँ हैं। इनमें अवरोध होने से स्वेद निकलना बन्द हो जाता है। उदकवाही स्त्रोतों का मूल तालु व क्लोम हैं। इनमें विकार आने से जलीयांश का नियंत्रण समाप्त हो जाता है, जिससे वह अपने मार्ग से न निकलकर औदरिक कला में एकत्र हो उदर रोग पैदा कर देता है। जलोदर में जलीय धातु दूषित होकर जलोदर रोग पैदा करती है।

वातज उदररोग

तोदरुग्भेद-शब्दाढ्यं पाणि-मुष्कांघ्रिशोफवत्।
कृष्णराजि-सिरानद्धमुदरं वातजं वदेत्।।२।।

तोद (चुभन), रुजा (दर्द), भेद (फटना) व शब्द होना, हाथ एवं मुष्क (वृषण/अण्डकोष) पर शोफ (सूजन होना), पेट पर सिराजाल (काली

नसों) का उभरना- ये सब लक्षण जिसमें होते हैं, उसे वातज उदररोग जानना चाहिए।

पित्तज उदररोग

मृदुस्पर्शज्वरस्वेदतृष्णादाहभ्रमान्वितम्।
नीलपीतसिराक्रान्तं जठरं पैत्तिकं स्मृतम्।।३।।

मृदु स्पर्श, ज्वर, स्वेद, तृष्णा, दाह एवं भ्रम से युक्त तथा उदर पर नील व पीत सिराओं के उभार वाला उदररोग पित्तज होता है।

सोत्क्लेदगौरवश्वासनिद्राशोफारुचिज्वरैः।
श्लेष्मोदरं स्थिरं ज्ञेयं घनं सितसिराचितम्।।४।।

उत्क्लेश (जी मिचलाना), गौरव (शरीर में भारीपन), श्वास, निद्रा, शोफ, अरुचि एवं ज्वर- इन लक्षणों से श्लेष्मोदर की पहचान होती है। इसमें उदर स्थिर (स्तब्ध) व घन (कठोर) हो जाता है तथा इस पर सफेद सिराएं उभरी हुई दिखाई देती हैं।

सन्निपातज उदररोग

स्त्रीदन्तनखरोमादिदूषीविषविदूषणात्।
सन्निपातोदरं विद्यात् सर्वलिङ्गसमन्वितम्।।५।।

भोजन में मिले स्त्रियों के दन्त, नख, रोम आदि मलों के कारण और दूषीविष द्वारा दोषों के दूषित होने से पूर्वोक्त तीनों प्रकार के लिंगों से युक्त उदररोग तीनों दोषों के सन्निपात- अर्थात् एक साथ मिलकर कुपित होने से होता है।

सौभाग्यार्थिनी अन्धविश्वासी स्त्रियाँ पति को वश में करने के लिए टोना-टोटका करने वालों के बहकावे में आकर पति को अपने नख, दन्त, केश एवं अन्य मल भोजन में मिलाकर खिला देती हैं। यह मूर्खतापूर्ण चलन बहुत पुराने समय से है; जैसा कि उल्लेख मिलता है-

स्त्रियोऽन्नपानं नखरोममूत्रविडार्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः।
यस्मै प्रयच्छन्त्यरयो गरांश्च दुष्टाम्बुदूषीविषसेवनाद्वा।।

(गदनिग्रह, कायचिकित्सा खण्ड, उदररोगाधिकार- ३२.१४)

इसी तथ्य का उल्लेख 'सिद्धसार-संहिता' के प्रस्तुत श्लोक में किया गया है; क्योंकि इस प्रकार स्त्रियों द्वारा दिए गए मलयुक्त आहार से उदररोग पैदा हो जाते हैं।

प्लीहोदर का स्वरूप

यकृद् दक्षिणतो वामपार्श्ववृद्धि प्लीहोदरम्।
पित्तश्लेष्मविकारि स्यात् कफशोणितदूषणात्।।६।।

कफ व शोणित (रक्त) के दूषण से पित्त व कफ के विकार वाला यकृत् के दक्षिण की ओर वामपार्श्व में बढ़ने वाला प्लीहोदर नामक रोग होता है।

बद्धगुदोदर का स्वरूप

पक्ष्मवालोपलेप्यन्नरुद्धान्त्रमलसङ्गतम्।
हृन्नाभिमध्यवृद्धि स्यात् स्थिरं बद्धगुदोदरम्।।७।।

पक्ष्मबाल- अर्थात् पलकों के बाल जैसे छोटे-छोटे बालों से उपलिप्त हुए अन्न से अवरुद्ध आन्त्र (आँत) के मल से युक्त, हृदय और नाभि के मध्य में वृद्धि वाला बद्धगुदोदर नामक रोग होता है। इसमें स्थिरता रहती है।

छिद्रोदर का स्वरूप

सान्नशल्यक्षतान्त्रान्तः स्रुताहाररसाद् भवेत्।
छिद्रोदरमधोवृद्धि नाभेस्तोदादिलक्षणम्।।८।।

अन्न के साथ विद्यमान शल्य- अर्थात् नुकीले पदार्थ से विक्षत हुई आँत से रिसने वाले आहार-रस के कारण नीचे की तरफ बढ़ने वाला छिद्रोदर नामक उदररोग होता है। इसमें नाभि में चुभन इत्यादि लक्षण होते हैं।

दकोदर (जलोदर) का स्वरूप

स्नेहपीतस्य शुद्धस्य शीतवारिनिषेवणात्।
वृत्तनाभि महत् स्निग्धं दृतिवत्स्याद्दकोदरम्।।९।।

स्नेहपान कर चुके एवं शुद्ध (विरेचन से शरीर का शोधन कर चुके) व्यक्ति द्वारा शीतल जल पीने से दकोदर (जलोदर) नामक रोग हो जाता है। इसमें नाभि के पास पेट का भाग गोलाई में दृति (मशक) के समान बढ़ जाता है एवं स्निग्ध हो जाता है।

उदररोगों की साध्यासाध्यता

असाध्ये द्वे मते तेषां छिद्रबद्धगुदोदरे।
शेषाणि कृच्छ्रसाध्यानि जाताम्भसि च वर्जयेत्।।१०।।

पूर्वनिर्दिष्ट उदररोगों में 'छिद्रोदर' एवं 'बद्धगुदोदर' नामक दो उदररोग असाध्य हैं और शेष कृच्छ्रसाध्य होते हैं। उदररोग में जल भर जाने पर तो वह असाध्य हो जाता है, उस समय चिकित्सा करना व्यर्थ है।

उदररोगों में प्रारम्भिक उपचार

स्थिरादिसर्पिषः पानं स्वेदस्नेहविरेचनम्।
वेष्टनं वाससा म्लानौ साल्वणं चोपनाहनम्।।११।।

उदर रोग में स्थिरादि घृत का पान स्नेहन, स्वेदन एवं विरेचन करवाना चाहिए। विरेचन से उदर के म्लान होने पर वस्त्र से वेष्टन तथा साल्वण उपनाहन (पुल्टिस का प्रयोग) करवाना चाहिए।

वातज उदररोग में वस्तिप्रयोग

चित्रतैलस्थिराद्यम्बुनिरूहः सानुवासनः।
पयो यूषरसान्नं च योज्यं वातोदरे क्रमात्।।१२।।

वातोदर में रोगी को चित्रतैल का अनुवासन व स्थिरादि क्वाथ का

निरूह देना चाहिए। पथ्य के रूप में दूध, यूष एवं रस सहित अन्न देना चाहिए।

पित्तज उदररोग में घृतविशेष का पान

घृतं पित्तोदरे पेयं मधुरौषधसाधितम्।
स्यात् त्रिवृत्त्रिफलासिद्धं पश्चात्सर्पिर्विरेचनम्।।१३।।

पित्तोदर में मधुर ओषधियों से सिद्ध घृत का पान करवाना चाहिए। तदनन्तर त्रिवृत् (निशोथ) व त्रिफला के साथ सिद्ध घृत विरेचन के रूप में देना चाहिए।

पित्तज उदररोग में आस्थापन, अनुवासन एवं उपनाहन का प्रयोग

न्यग्रोधादिकषायेण सर्पिः क्षौद्रसितावता।
आस्थापनं प्रयोक्तव्यं स्नेहवस्तिसमन्वितम्।।१४।।
सान्द्रपायसकल्केन कर्त्तव्यमुपनाहनम्।
स्थिरादिसाधितं क्षीरं भोजने च प्रयोजयेत्।।१५।।

मधु व शर्करा से युक्त न्यग्रोधादि गण के कषाय के साथ घृत का प्रयोग आस्थापन वस्ति हेतु करना चाहिए, साथ में स्नेहवस्ति भी देनी चाहिए। सान्द्र- अर्थात् गाढ़े पायस (खीर) के कल्क से उपनाहन (पुल्टिस बाँधना) करना चाहिए तथा स्थिरादि गण से साधित दूध का भोजन में प्रयोग कराना चाहिए।

कफज उदररोग में विरेचन

प्राक् कफोदरिणि स्निग्धे पिप्पल्याद्येन सर्पिषा।
स्विन्ने च स्नुक्पयःसिद्धं योज्यमाज्यं विरेचनम्।।१६।।

पहले कफोदरी को पिप्पल्यादि घृत से स्नेहित कर स्वेदन करवाना चाहिए; तदनन्तर स्नुक्-क्षीर (थूहर के दूध) से सिद्ध घृत द्वारा विरेचन करवाना चाहिए।

कफज उदररोग में निरूहण एवं अनुवासन का प्रयोग

मुष्ककाद्यम्बुना तैलमूत्रत्र्यूषणसङ्गिना।
निरूहणं विधातव्यं अनुवासनकर्म च।।१७।।

कफजन्य उदररोग वाले को तिलतैल, गोमूत्र व त्रिकटु युक्त मुष्ककादि क्वाथ से निरूहण करवाना चाहिए, साथ ही अनुवासन भी करवाना चाहिए।

कफोदरी के लिए पथ्य

किण्वं मूलकबीजानि सिद्धार्थाश्चोपनाहनम्।
व्योषयुक्तं कुलत्थाम्बु पयो वा भोजने हितम्।।१८।।

कफोदरी के लिए किण्व (मद्य का अधोभाग/तलछट), मूली के बीज एवं सिद्धार्थ (श्वेत सरसों) का उपनाहन (पुल्टिस) के रूप में उपयोग करना चाहिए। इसके भोजन में त्रिकटुयुक्त कुलत्थाम्बु अथवा त्रिकटुयुक्त दूध हितकारी होता है।

सन्निपातोदर-चिकित्सा

सन्निपातोदरे कार्य एष कृत्स्नः क्रियाविधिः।
सप्तलाशङ्खिनीसिद्धं घृतं चात्र विशोधनम्।।१९।।

सन्निपातोदर में भी यही उपर्युक्त सम्पूर्ण विधि करवानी चाहिए। इसमें सप्तला (सातला) व शङ्खिनी से सिद्ध घृत को विरेचन के रूप में प्रयुक्त करना चाहिए।

प्लीहोदर-चिकित्सा

स्नेहस्वेदविरेकादिर्विधेयः प्लीहरोगिणः।
वामबाहौ च मोक्तव्या कूर्पराभ्यन्तरे सिरा।।२०।।

प्लीहोदर वाले रोगी के लिए भी स्नेहन, स्वेदन व विरेचन की विधि करवानी चाहिए। इसके वाम बाहु में कोहनी के अन्दर की ओर स्थित सिरा का वेधन करना चाहिए।

विडङ्गाज्याग्निसिन्धूत्थसक्तून् दग्ध्वा वचान्वितान्।
पिबेत् क्षीरेण सञ्चूर्ण्य गुल्मप्लीहोदरापहम्।।२१।।

विडङ्ग, आज्य (घृत), चित्रक, सैन्धव लवण व सत्तुओं में वचा का चूर्ण मिलाकर इन्हें जला लें। इनकी भस्म का दूध के साथ पान करे। यह योग गुल्म एवं प्लीहोदर को नष्ट कर देता है।

शोभाञ्जनकनिर्यूहं सैन्धवाग्निकणान्वितम्।
पलाशक्षारयुक्तं वा यवक्षारं प्रयोजयेत्।।२२।।
रोहीतकाभयाक्षोदभावितं मूत्रमम्बु वा।
पीतं सर्वोदरप्लीहमेहार्शः कृमिगुल्मजित्।।२३।।

सैन्धव लवण, चित्रक एवं पिप्पली से युक्त शोभाञ्जन (सहजन) के निर्यूह (क्वाथ) का प्रयोग करना चाहिए अथवा पलाशक्षार से युक्त यवक्षार का प्रयोग करना चाहिए। इससे सभी उदररोग, प्लीहा-विकार, प्रमेह, अर्श, कृमि व गुल्मरोग नष्ट हो जाते हैं।

रोहीतक (रोहिड़ा की छाल/पंचांग) एवं अभया (हरड़) के चूर्ण को गोमूत्र या जल के साथ उबालकर पीने से सभी उदररोग, प्लीहा-विकार, प्रमेह, अर्श, कृमि व गुल्मरोग नष्ट हो जाते हैं।

प्लीहोदर में क्षार व पिप्पली का प्रयोग

पातव्यो युक्तितः क्षारः क्षीरेणोदधिशुक्तिजः।
पयसा वा प्रयोक्तव्याः पिप्पल्यः प्लीहशान्तये।।२४।।

प्लीहोदर के शमनार्थ समुद्र से प्राप्त शुक्ति (सीपी) के क्षार को क्षीर (दूध) के साथ युक्तिपर्वक पीना चाहिए। दूध के साथ पिप्पलियों का प्रयोग करने से भी प्लीहा रोग शान्त हो जाता है।

यकृद्-रोग चिकित्सा

प्लीहोद्दिष्टाः क्रियाः सर्वा यकृतः सम्प्रकल्पयेत्।
कार्यं च दक्षिणे बाहौ तत्र शोणितमोक्षणम्।।२५।।

प्लीहा की चिकित्सा में निर्दिष्ट सभी क्रियाएं यकृद्-विकार में भी करनी चाहिए। इसमें दाँई भुजा की सिरा से रक्तमोक्षण भी करवाना चाहिए।

उदररोगों में शोधन की उपयोगिता

उदराणां मलाढ्यत्वाद् बहुशः शोधनं मतम्।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यन्ते सामान्या योगसत्तमाः।।२६।।

उदररोगियों में मल की अधिकता रहती है, अतः इनकी चिकित्सा में अनेकशः शोधन करना उपयोगी माना जाता है। अब सभी उदररोगों में सामान्य रूप से उपयोगी उत्तम योगों का वर्णन करते हैं।

उदररोगों में उपयोगी विविध शोधनयोग

क्षीरेणैरण्डजं तैलं पिबेन्मूत्रेण चासकृत्।
सहिङ्गुस्वर्जिकं तैलं ज्योतिष्कं वा पयोन्वितम्।।२७।।

दूध के साथ एरण्ड-तैल का पान करें अथवा गोमूत्र के साथ एरण्ड तैल का पान करें। यह प्रयोग शोधन हेतु अनेक बार करना चाहिए। हींग व स्वर्जिक-क्षार (सज्जीखार) युक्त ज्योतिष्क (मालकांगनी) के तेल का दूध के साथ पान करना चाहिए। यह उदररोगों में मलशोधन के लिए बहुत हितकर होता है।

पयस्यष्टगुणे सर्पिःप्रस्थं स्नुक्पयसः पलम्।
त्रिवृतः पलषट्केन सिद्धं जठरगुल्मनुत्।।२८।।

आठ गुणा दूध में एक पल स्नुहीक्षीर (थूहर का दूध) तथा छह पल त्रिवृत् (निशोथ) मिलाकर एक प्रस्थ घृत सिद्ध करें। यह घृत उदररोग एवं गुल्मरोग को नष्ट कर देता है।

त्रिफलाकाञ्चनक्षीरीसप्तलानीलिनीवचाः।
त्रायन्तीहपुषातिक्तात्रिवृत्सैन्धवपिप्पली।।२९।।
पिबेद् विचूर्ण्य मूत्रोष्णवारिमांसरसादिभिः।
सर्वगुल्मोदरप्लीह कुष्ठार्शः शोफखेदितः।।३०।।

त्रिफला, स्वर्णक्षीरी, सप्तला (सातला), नीलिनी, वचा, त्रायन्ती, हपुषा, तिक्ता (कुटकी), त्रिवृत् (निशोथ), सैन्धव लवण एवं पिप्पली- इन सबका चूर्ण बना लें। इसे गोमूत्र अथवा उष्णजल के साथ लेने से सभी प्रकार के गुल्मरोग, उदररोग, प्लीहा-विकार, कुष्ठ, अर्श एवं शोफ (सूजन) नष्ट हो जाते हैं।

विशालाशंखिनीदन्ती-त्रिवृन्नीलीफलत्रयम्।
निशाविडङ्गकम्पिल्लं मूत्रेणोदरवान् पिबेत्।।३१।।

विशाला (इन्द्रवारुणी), शंखिनी, दन्ती, त्रिवृत् (निशोथ), नीली, त्रिफला, हल्दी, विडङ्ग, कम्पिल्ल (कबीला)- इन सबको पीसकर गोमूत्र के साथ पीना चाहिए। इससे सभी उदररोग नष्ट हो जाते हैं।

उदररोगों में दुग्ध व महिषीमूत्र का पान, ऊष्ट्रीदुग्धपान

सप्ताहं माहिषं मूत्रं पयसान्नाम्बुवर्जितम्।
पीतं वौष्ट्रं पयो मासं श्वयथूदरनाशनम्।।३२।।

एक सप्ताह तक दूध के साथ भैंस के मूत्र का पान करना चाहिए। इस अन्तराल में अन्न व जल नहीं लेना चाहिए। इससे शोथ (सूजन) व उदररोग नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार एक सप्ताह तक ऊंटनी का दूध पीने से भी शोथ व सभी उदररोग नष्ट हो जाते हैं।

उदररोग-नाशक दो विशिष्ट योग

सेव्या जठरिणा युक्त्या कृष्णाः स्नुक्क्षीरभाविताः।
पयो वा चव्यदन्त्यग्नि-विडङ्गव्योषकल्कितम्।।३३।।

उदररोग से पीड़ित व्यक्ति को स्नुहीक्षीर (थूहर के दूध) में भावित पिप्पलियों का सेवन करना चाहिए अथवा चव्य, दन्ती, चित्रक, विडङ्ग एवं त्रिकटु के कल्क के साथ दूध का सेवन करना चाहिए। इन दोनों योगों से उदररोग नष्ट हो जाते हैं।

उदररोग-नाशक तीन विशिष्ट योग

पयसा शृङ्गवेराम्बु कल्को वा दारुवह्निजः।
चव्यविश्वसमुत्थो वा पेयो जठरशान्तये।।३४।।

दूध के साथ अदरक का रस पीना चाहिए अथवा दूध के साथ दारुहल्दी एवं चित्रक का कल्क पीना चाहिए। इसी प्रकार चव्य एवं सोंठ का कल्क दूध के साथ पीना चाहिए। इन योगों से उदररोग नष्ट हो जाते हैं।

सर्वविध गुल्म व उदररोग का नाशक विशिष्ट योग

क्षारद्वयानल-व्योष-नीली-लवणपञ्चकम्।
चूर्णितं सर्पिषा पेयं सर्वगुल्मोदरापहम्।।३५।।

दोनों क्षार (यवक्षार एवं स्वर्जिकाक्षार), चित्रक, त्रिकटु, नीली, पाँचों लवण (सैन्धव, सौवर्चल, विड, सामुद्र, औद्भिद)- इन सबके चूर्ण को घृत में मिलाकर पीना चाहिए। इस योग से सभी प्रकार के गुल्म व उदररोग नष्ट हो जाते हैं।

आयुर्वेद में लवणद्वय, लवणत्रय, लवणपञ्चक, लवणाष्टक आदि रूप में लवणों का ग्रहण किया जाता है। इनका क्रम इस प्रकार जानना चाहिए-

सिन्धुसौवर्चलविडसामुद्रौद्भिदरोमकैः। सपांशुकृष्णलवणैर्द्वित्र्यादि लवणं क्रमात्।।

(कैयदेव-निघण्टु, धातुवर्ग- १५५)

१. सैन्धव (सेंधा नमक), २. सौवर्चल (सोंचर नमक), ३. विड (विड लवण), ४. सामुद्र (समुद्रजल से बना नमक), ५. औद्भिद (भूमि से निकले खारी

पानी को उबालकर सुखाने से बना खारी नोन), ६. रोमक (सांभर नमक), ७. पांशु (रेह नमक), ८. कृष्ण (काला नमक)।

सभी उदररोगों में योगविशेष के साथ गोमूत्र प्रयोग

गवाक्षीशङ्खिनीदन्तीनीलीतिल्वकसंयुतम्।
सर्वोदरविनाशाय गोमूत्रं पानमाचरेत्।।३६।।

गवाक्षी, शंखिनी, दन्ती, नीली एवं तिल्वक- इन्हें पीसकर गोमूत्र के साथ पान करें, इस योग का सेवन करने से सभी प्रकार के उदररोग नष्ट हो जाते हैं।

उदररोगों में त्रिदोष-शमन की उपयोगिता

दोषसंघातजं प्राय: सर्वमेवोदरं यत:।
तस्मात् सर्वत्र कर्त्तव्या वातादिशमनी क्रिया।।३७।।

प्राय: सभी उदररोग तीनों दोषों के समूह से उत्पन्न होते हैं, अत: इन सभी में वात आदि दोषों का शमन करने वाली क्रिया करनी चाहिए।

छिद्रोदर, जलोदर एवं बद्धगुदोदर में शल्यक्रिया की उपयोगिता

छिद्राम्बुबद्धसञ्ज्ञेषु जठरेषु प्रयोगवित्।
लब्धानुज्ञो भिषक् कुर्याद् व्यधनापाटनक्रियाम्।।३८।।

शल्यप्रयोग को जानने वाले कुशल वैद्य को चाहिए कि छिद्रोदर, जलोदर व बद्धगुदोदर- इन तीनों उदररोगों में रोगी के बन्धुओं की अनुमति लेकर व्यधन एवं पाटन विधि से शल्यक्रिया करे।

उदररोग में पथ्य

शालयो यवमुद्गाश्च क्षीरं जाङ्गलजो रस:।
योज्या: सर्वोदरार्त्तानां भोजनाय यथाबलम्।।३९।।

शालि (चावल), जौ, मूँग, दूध एवं जाङ्गल रस- ये आहारद्रव्य सभी उदररोगियों के भोजन में उनकी पाचनशक्ति के अनुसार देने चाहिएं।

उदररोग में अपथ्य

अम्बुपानं दिवास्वप्नं गुर्वभिष्यन्दि भोजनम्।
व्यायामं यानयानं च जठरी परिवर्जयेत्।।४०।।

अधिक जल पीना, दिन में सोना, गुरु एवं अभिष्यन्दी भोजन करना, व्यायाम एवं यान की सवारी- ये सभी उदररोगी के लिए वर्जित हैं।

।। इत्युदराध्यायो दशमः समाप्तः।।

एकादश अध्याय

प्रमेह

प्रमेह के कारण व भेद

अनिष्टाहारचेष्टानां प्रमेहा विंशतिः स्मृताः।
दुष्टमूत्रार्त्तिवृत्तिं च प्रमेहं मुनयो जगुः।।१।।

अनुचित आहार-विहार करने वाले व्यक्तियों को २० प्रकार के प्रमेह हो जाते हैं। प्रमेह रोग में दूषित एवं पीड़ायुक्त मूत्र की प्रवृत्ति होती है, ऐसा आयुर्वेद के उपदेष्टा आत्रेय पुनर्वसु आदि प्राचीन मुनियों ने बताया है।

प्रमेह का पूर्वरूप

दन्तादीनां मलाढ्यत्वं प्राग्रूपं पाणिपादयोः।
दाहश्चिक्कणता देहे तृट् स्वाद्वास्यं च जायते।।२।।

दाँत आदि अङ्गों में मल की अधिकता, हाथ-पैर में दाह (जलन) एवं शरीर में चिकनापन, अधिक प्यास लगना तथा मुख का मीठा रहना- ये प्रमेह के प्राग्रूप (पूर्वरूप/प्रारम्भिक चिह्न) हैं।

दशविध कफज प्रमेह

उदकेक्षुसुरापिष्ट-सिकतासान्द्रसञ्ज्ञिताः।
शनैर्लवणफेनाह्वशुक्रमेहाः कफान्वयाः।।३।।

कफजन्य प्रमेह रोग के भेद इस प्रकार हैं- १. उदकमेह, २. इक्षुमेह, ३. सुरामेह, ४. पिष्टमेह, ५. सिकतामेह, ६. सान्द्रमेह, ७. शनैर्मेह, ८. लवणमेह, ९. फेनमेह एवं १०. शुक्रमेह।

षड्विध पित्तज एवं चतुर्विध वातज प्रमेह

हरिद्रानीलमञ्जिष्ठाक्षाररक्ताम्लभासिनः।
पैत्तिका वातिकाः सर्पिर्मधुहस्तिवसाह्वयाः।।४।।

पित्तज प्रमेह के भेद इस प्रकार हैं- १. हरिद्रामेह, २. नीलमेह, ३. मञ्जिष्ठामेह, ४. क्षारमेह, ५. रक्तमेह एवं ६. अम्लमेह। वातज मेह के भेद इस प्रकार हैं- १. सर्पिर्मेह, २. मधुमेह, ३. हस्तिमेह एवं ४. वसामेह। इस प्रकार प्रमेह रोग के कुल भेद २० माने गए हैं।

प्रमेह की साध्यासाध्यता

स्वनामरूपिणः सर्वे साध्याश्च कफजाः स्मृताः।
असाध्या वातिका दृष्टा याप्याः पित्तसमुत्थिताः।।५।।

कफजन्य प्रमेहों का स्वरूप उनके नामकरण से ही स्पष्ट हो जाता है। ये सभी साध्य कोटि में आते हैं। वातजन्य प्रमेह असाध्य माने जाते हैं तथा पित्तजन्य प्रमेह याप्य कोटि में आते हैं। जो रोग पथ्याहार व औषध-सेवन से नियन्त्रण में रहे, अन्यथा उभर जाए, उसे **याप्य** कहते हैं।

कफजन्य प्रमेह की चिकित्सा

यवानिका मृणालं च गुडूची सहरीतकी।
पाठाकटण्कटेरी च विडङ्गार्जुनधन्वनाः।।६।।
कृमिशत्रुर्हरिद्रे द्वे पथ्या-तगरसंयुते ।
सालार्जुनकदम्बाश्च दार्वीदीप्यकसंयुताः।।७।।
चन्दनागुरुणी पथ्या सकुष्ठं देवदारु च।
कट्फलाम्बुधरः पाठा सतिरीटा हरीतकी।।८।।
अम्बष्ठा खदिरो दार्वी साग्निमन्थफलत्रिकम्।
श्लोकार्द्धैः सप्त मध्वाढ्याः क्वाथाः स्युः श्लेष्ममेहिनम्।।९।।

निम्नलिखित सात वर्गों की ओषधियों से बने क्वाथ में मधु मिलाकर सेवन करने से कफजन्य प्रमेह दूर हो जाते हैं-

१. यवानिका (अजवायन), मृणाल (कमलनाल), गुडूंची (गिलोय), हरीतकी (हरड़)।
२. पाठा, कटङ्कटेरी, विडङ्ग, अर्जुन, धन्वन (धामन वृक्ष)।
३. कृमिशत्रु (विडङ्ग), दारुहल्दी, हल्दी, पथ्या (हरड़), तगर।
४. साल, अर्जुन, कदम्ब, दार्वी (दारुहल्दी), दीप्यक (अजवायन)।
५. चन्दन, अगर, पथ्या (हरड़), कूठ, देवदारु।
६. कट्फल, अम्बुधर (मुस्तक), पाठा, तिरीट (लोध्र), हरीतकी।
७. अम्बष्ठा, खदिर, दार्वी (दारुहल्दी), अग्निमन्थ (अरणी), त्रिफला।

पित्तज प्रमेह की चिकित्सा

पटोलारिष्टपत्राणि गुडूच्यामलकाम्बुदाः।
अभयामलकोशीरनीलवारिजवारिदाः।।१०।।
मृणालपद्मकाम्भोदाः साभयागिरिमल्लिकाः।
उदीच्यं धातकीपुष्पं लोध्रं कालीयकान्वितम्।।११।।
इन्दीवरमुशीरं च सलोध्रार्जुनचन्दनम्।
क्वाथाः स्युः पञ्च सक्षौद्रा रूपार्द्धैः पित्तमेहिनाम्।।१२।।

निम्नलिखित पाँच वर्गों की ओषधियों से बने क्वाथ में मधु मिलाकर सेवन करने से पित्तजन्य प्रमेह दूर हो जाते हैं-

१. पटोलपत्र, अरिष्टपत्र (निम्बपत्र), गुडूची, आमलकी, मुस्तक।
२. अभया (हरड़), आवला, उशीर, नीलकमल, अम्बुद (मुस्तक)।
३. मृणाल, पद्मक, अम्बुद, अभया, गिरिमल्लिका।
४. उदीच्य, धातकीपुष्प, लोध्र, कालीयक (पीतचन्दन)।
५. इन्दीवर (नीलकमल), उशीर, लोध्र, अर्जुन, चन्दन।

वातज प्रमेह की चिकित्सा

अनुबन्धं परिज्ञाय पवनं कफपित्तयोः।
तैलं कफस्य पित्तस्य सर्पिः स्यात्स्वगणैः शृतम्।।१३।।

वात को कफ एवं पित्त का अनुबन्ध जानकर कफजन्य प्रमेह के निवारणार्थ कफशामक गण के द्रव्यों के साथ तैल सिद्ध करना चाहिए तथा इसी प्रकार वात से अनुबन्धित पित्तजन्य प्रमेह के निवारणार्थ पित्तशामक गण के द्रव्यों के साथ घृत सिद्ध करना चाहिए।

सर्वप्रमेह-नाशक विविध योग

गुडूच्याः स्वरसः पेयो मधुना सर्वमेहजित्।
निशाकल्कयुतो धात्र्या रसो वा माक्षिकान्वितः।।१४।।

सभी प्रमेहों को नष्ट करने के लिए मधुमिश्रित गडूची-स्वरस (गिलोय के रस) का पान करना चाहिए। इसी प्रकार हल्दी के कल्क से युक्त आमलकी रस को मधु मिलाकर पीने से भी सभी प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

त्रिफलादारुदार्व्यब्दक्वाथः क्षौद्रेण मेहहा।
कुटजासन-दार्व्यग्नि-फलत्रयभवोऽथवा।।१५।।

त्रिफला, देवदारु, दार्वी (दारुहरिद्रा) एवं अब्द (मुस्तक) के क्वाथ को मधु के साथ पीने से प्रमेह रोग नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार कुटज, असन, दार्वी (दारुहरिद्रा), चित्रक एवं त्रिफला के क्वाथ का मधु के साथ पान करने से भी सभी प्रकार का प्रमेह नष्ट हो जाता है।

सालमुष्ककम्पिल्लकल्कमक्षसमं पिबेत्।
धात्रीरसेन सक्षौद्रं सर्वमेहहरं परम्।।१६।।

साल, मुष्क (मोथक वृक्ष) एवं कम्पिल्ल (कबीला) के कल्क को अक्ष परिमाण (बहेड़े के फल जितनी मात्रा) में लेकर मधुमिश्रित आंवले के रस के साथ पिएं। यह उत्कृष्ट योग सभी प्रकार के प्रमेहों को नष्ट कर देता है।

मधुना त्रिफलाचूर्णमथवाश्मजतूद्भवम्।
लोहजं वाभयोत्थं वा लिह्यान्मेहनिवृत्तये।।१७।।

मधु के साथ त्रिफला चूर्ण अथवा शिलाजीत का सेवन करने से सभी प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार मधु के साथ लोहभस्म अथवा हरीतकी चूर्ण का सेवन करने से सभी प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

सर्वप्रमेह-नाशक मध्वासव

लोध्रैलाग्निशटीपाठा-पत्रत्वक्केसरप्लवाः।
पौष्करोषण-भूनिम्ब-नतदारु-कलिङ्गकाः।।१८।।
विशालातिविषाभार्गी-कुष्ठमूर्वाप्रियङ्गवः।
विडंगत्रिफलातिक्ताचव्यग्रन्थिकदीप्यकाः।।१९।।
अक्षांशानि जलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषितः।
घृतभाण्डे स्थितः पक्षं क्वाथः क्षौद्रर्द्धयोजितः।।२०।।
एष मध्वासवो हन्ति मेहान् द्विपलयोगतः।
ग्रहणीपाण्डुरोगार्शः कुष्ठारुचिविमर्दनः।।२१।।

लोध्र, एला (छोटी इलायची), सटी (कपूरकचरी), पाठा, तेजपत्र, दालचीनी, केसर, प्लव (कैवर्त्त मुस्तक/केवटी मोथा), पौष्कर (पुष्करमूल), ऊषण (कालीमिर्च), नत (तगर), दारु (दारुहल्दी), कलिङ्ग (इन्द्रजौ), विशाला (इन्द्रवारुणी), अतिविषा, भार्गी, कुष्ठ, मूर्वा, प्रियङ्गु, विडङ्ग, त्रिफला, तिक्ता, चव्य, ग्रन्थिक, दीप्यक (अजवायन)- इन सबको अक्ष परिमाण में लेकर जलद्रोण में पकाएं। चतुर्थांश शेष रहने पर घृतभाण्ड (घी रखने से चिकने हुए मिट्टी के घड़े) में एक पक्ष तक रखा रहने दें; तदनन्तर दो पल की मात्रा में लेकर इससे आधा मधु मिलाकर पान करें। यह मध्वासव नामक योग सभी प्रकार के प्रमेह रोगों को नष्ट कर देता है। यह ग्रहणी, पाण्डुरोग, अर्श, कुष्ठ एवं अरुचि को भी दूर कर देता है।

प्रमेह में पथ्य

मेहिनां तिक्तशाकानि जांगला हरिणाण्डजाः।
यवान्नविकृतिर्मुद्गाः शस्यन्ते शालिषष्टिकाः।।२२।।

प्रमेह रोग से ग्रस्त व्यक्तियों के लिए करेला आदि के तिक्त (कड़वे) शाक, जाङ्गल मृग-पक्षी, यवान्न-विकृतियाँ (जौ से बनाए भक्ष्य पदार्थ- जौ की रोटी, जौ का दलिया एवं सत्तू आदि), मूँग, शालि तथा षष्टिक धान्य उत्तम माने जाते हैं।

★ **यव (जौ)** प्रमेह (शुगर) वाले व्यक्ति के लिए अति उत्तम पथ्य है। पुराने समय में दैनिक भोजन में रोटी, दलिया आदि के रूप में जौ का प्रयोग होता था। इससे प्रमेह पर नियन्त्रण रहता था। आजकल जौ का प्रचलन छूट जाने से तथा दिनचर्या में शारीरिक श्रम कम होने से प्रमेह रोग पहले की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ गया है।

सीधुमाध्वीकसाराम्बु-मधूदककुशाम्भसाम्।
पानमिष्टं प्रमेहेषु फलत्रयजलस्य वा।।२३।।

सभी प्रकार के प्रमेह में सीधु (इक्षुरस द्वारा निर्मित मदिरा), माध्वीक (मधुकपुष्प/महुआ के फूलों द्वारा निर्मित मदिरा), साराम्बु/सारोदक (खदिरसार या विजयसार आदि को लेकर षडङ्गपानीय परिभाषा के अनुसार क्वाथ किया हुआ जल), मधूदक (मधुमिश्रित जल) एवं कुशजल (कुशाओं द्वारा पूर्वनिर्दिष्ट विधि से सिद्ध जल) का पान अथवा त्रिफला-जल का पान विशेष रूप से अभीष्ट होता है।

आचार्य 'रविगुप्त' का यह उल्लेख 'चरक-संहिता' चिकित्सास्थान के निम्न श्लोक (६.४६) पर आधारित है-

सारोदकं वाऽथ कुशोदकं वा मधूदकं वा त्रिफलारसं वा।
सीधुं पिबेद्वा निगदं प्रमेही माध्वीकमग्र्यं चिरसंस्थितं वा।।

अर्थात् प्रमेह में सारोदक आदि का पान करना चाहिए। इसी प्रकार चिरसंस्थित अर्थात् बहुत समय से रखे हुए सीधु (यवनिर्मित आसव) अथवा माध्वीक/मधूकपुष्पकृत आसव अथवा द्राक्षासव का पान करना चाहिए। बहुत समय से रखे हुए पुराने आसव अधिक गुणकारक होते हैं।

सारोदक, कुशोदक एवं **मधूदक-** इन शब्दों का स्पष्टीकरण करते हुए 'चरकसंहिता' के व्याख्याकार 'चक्रपाणिदत्त' कहते हैं- 'सारोदकमिति सारैः खदिरादिसारैः षडङ्गविधिना कृतमुदकं सारोदकं ज्ञेयम्, एवं कुशोदकं ज्ञेयम्। मधुना मधुरीकृतमुदकं मधूदकम्'। (चरक. चिकित्सा.- ६.४६ चक्रपाणि-टीका)

प्रमेहपिटकाओं का उपचार

प्रमेहपिटकानां प्राक् कार्यं रक्तावसेचनम् ।
पाटनं च विपक्वानां व्रणवत् स्यात् क्रियाविधिः।।२४।।

प्रमेह रोग में होने वाली पिटकाओं का पहले रक्तावसेचन करवाना चाहिए। पकी हुई पिटकाओं का उत्पाटन करना चाहिए। इनमें व्रण के समान ही सब क्रियाविधि करनी चाहिए।

।। इति प्रमेहाध्याय एकादशः समाप्तः।।

द्वादश अध्याय

कुष्ठ

कुष्ठ के कारण, कुष्ठ के भेद

पापात्मनां त्रयो दोषाः कुर्वन्त्यशुभभोजिनाम् ।
त्वङ्मांसासृक्-लसीकाढ्यकुष्ठान्यष्टादशोद्धताः ।।१ ।।

अशुभ कर्म व अशुभ (मलिन) भोजन करने वालों के कुपित हुए तीनों दोष त्वचा, रक्त, मांस एवं लसीका में १८ प्रकार के कुष्ठ उत्पन्न कर देते हैं। इनका विवरण इस प्रकार है-

दशविध कुष्ठ

औदुम्बरं तदाभासं श्वित्रं स्याच्छंखसन्निभम्।
काकणं पक्वगुञ्जाभं चर्माढ्यं गजकृत्तिवत्।।२ ।।
पौण्डरीकं स्वसञ्ज्ञाभमृष्यजिह्वं च निर्दिशेत्।
बहुव्रणं शतारुः स्याद् व्याप्यस्वेद्येकसञ्ज्ञकम्।।३ ।।
त्वक्स्थं चर्मदलं पादस्फुटनं च विपादिका।
दशैतानि न सिध्यन्ति शेषाण्यष्टौ प्रसाधयेत्।।४ ।।

१. **औदुम्बर**- उदुम्बर (गूलर) के फल के समान दिखने वाला।

२. **श्वित्र**- शंख के समान श्वेत वर्ण वाला।

३. **काकण**- पकी गुञ्जा (चिर्मटी) के समान दिखने वाला।

४. **चर्माढ्य**- गजकृत्ति- अर्थात् हाथी की चमड़ी जैसा दिखने वाला।

५. **पौण्डरीक**- पुण्डरीक (श्वेत कमल) के समान दिखने वाला।

६. **ऋष्यजिह्व**- ऋष्य नामक मृग की जिह्वा के समान दिखने वाला।

७. **शतारु**- बहुत व्रणों वाला।

८. **एकसंज्ञक**- व्यापी- अर्थात् फैला हुआ एवं अस्वेद्य।

९. **चर्मदल**- त्वचा में स्थित।

१०. **विपादिका**- पादस्फुटन (एडी आदि में फटने के लक्षण वाला।

ये दस कुष्ठ असाध्य होते हैं। इनके अतिरिक्त साध्य कोटि वाले आठ कुष्ठों की चिकित्सा करनी चाहिए। वे इस प्रकार हैं-

शेष अष्टविध कुष्ठ

कपालमसितं रूक्षं स्थूलारुः स्याद् विसर्पि च।
किटिभं किणवच्छ्यावं दद्रूः पिटकिताचयः।।५।।
तुम्बीपुष्पनिभं सिध्मं स्यात् स्निग्धं मण्डलं स्थिरम्।
स्फोटासितारुणा पामा सस्रावा च विचर्चिका।।६।।

१. **कपाल**- यह काला, रूक्ष, स्थूल फुन्सी युक्त एवं फैला होता है।

२. **किटिभ**- इसमें त्वचा किणयुक्त एवं श्यामवर्ण हो जाती है।

३. **दद्रु**- इसमें चमड़ी पर छोटे-छोटे पिटकों का समूह होता है।

४. **सिध्म**- इसमें त्वचा पर तुम्बी के पुष्प जैसा श्वेत चिह्न होता है।

५. **मण्डल**- यह स्निग्ध व स्थिर होता है।

६. **स्फोटा**- इसमें त्वचा पर काली व लाल आभा वाले छाले होते हैं।

७. **पामा**- इसमें छोटी व स्रावयुक्त फुन्सियाँ होती हैं।

८. **विचर्चिका**- इसमें बहुत छोटी व स्रावयुक्त फुन्सियाँ होती हैं।

वातज एवं पित्तज कुष्ठ

खरं श्यावारुणं रूक्षं वातकुष्ठं सवेदनम्।
पित्तात्प्रकुथितं दाहरागस्रावान्वितं मतम्।।७।।

वातज कुष्ठ खर (कठोर, खुरदरा), काला व लाल, रूक्ष एवं वेदना सहित होता है। पित्तजन्य कुष्ठ प्रकुथित (पका हुआ), दाह, लालिमा एवं स्राव से युक्त होता है।

कफजन्य कुष्ठ

कफात्क्लेदी घनं स्निग्धं सकण्डू-श्वैत्यगौरवम्।
सर्वलिङ्गैर्युतं त्याज्यमनल्पोपद्रवं च यत्।।८।।

कफजन्य कुष्ठ क्लेदी (आर्द्रता युक्त), घन, स्निग्ध, खुजली सहित एवं श्वेतपन तथा गौरव से युक्त होता है। तीनों दोषों के लिङ्गों वाला तथा अत्यधिक उपद्रवों वाला कुष्ठ साध्य नहीं होता, अतः उसे छोड़ देना चाहिए; क्योंकि उसकी चिकित्सा निष्फल रहती है।

कुष्ठ में सिरामोक्षण की उपयोगिता

रक्तोत्तरं त्रिदोषं च सर्वकुष्ठं प्रकीर्तितम्।
तस्मात्स्निग्धस्य मोक्तव्याः कुष्ठिनो बलिनः सिराः।।९।।

सभी प्रकार का कुष्ठरोग रक्तोत्तर (रक्त की अधिकता वाला) तथा तीनों दोषों से युक्त होता है। इसलिए स्नेहित किए बलवान् कुष्ठरोगी का पहले सिरामोक्षण करना चाहिए- अर्थात् शल्यक्रिया द्वारा सिराओं से रक्तनिर्हरण करना चाहिए।

प्रारम्भिक कुष्ठ में प्रच्छान एवं वमन-विरेचन का प्रयोग

कुष्ठेऽल्पे प्रच्छानं पाटः शृङ्गालाबुजलौकसाम्।
वमनं च यथादोषं विधेयं सविरेचनम्।।१०।।

प्रारम्भिक कुष्ठरोग में प्रच्छान (जगह-जगह छोटे-छोटे चीरे लगाना), पाट (लम्बा चीरा लगाना), शृङ्ग, अलाबु तथा जोंक द्वारा रक्तमोक्षण तथा दोष के अनुसार वमन एवं विरेचन करवाना चाहिए।

सुप्त कुष्ठ में क्षारपातन एवं विषलेप

शस्त्रातिगे हृतस्पर्शे कुष्ठे स्यात् क्षारपातनम्।
समन्त्रो विषलेपश्च सुप्तेऽतिकठिने स्थिरे।।११।।

जो कुष्ठ शल्यक्रिया की पहुँच से बाहर हृतस्पर्श (सुन्न त्वचा वाला) हो, उसमें क्षारपातन करना चाहिए। सुप्त (सुन्न त्वचा वाले), अतिकठिन व स्थिर कुष्ठ में मन्त्रप्रयोग सहित विष का लेपन करना चाहिए।

मन्त्रप्रयोग- प्राचीन काल में विष-चिकित्सा के लिए मन्त्रप्रयोग प्रचलित था। नीतिशतक का यह वाक्य- 'मन्त्रप्रयोगैर्विषम्' इसी परम्परा को सूचित करता है। यहाँ कुष्ठ-चिकित्सा हेतु विष का उपयोग करते समय मन्त्रप्रयोग का निर्देश है। इसके पीछे यही भाव है कि विष का अनिष्ट प्रभाव न हो तथा वह चिकित्सा के उद्देश्य को पूरा करने में सफल रहे।

कुष्ठनाशक वज्रक घृत

पटोलत्रिफलारिष्टगुडूचीधावनीवृषैः।
सकरञ्जैर्घृतं पक्वं कुष्ठहृद्वज्रकं स्मृतम्।।१२।।

पटोलपत्र, त्रिफला, अरिष्ट (नीम), गिलोय, धावनी (पृश्निपर्णी), वृष (अडूसा) तथा करञ्ज से सिद्ध घृत 'वज्रक' नाम से जाना जाता है। यह कुष्ठ को नष्ट कर देता है।

कुष्ठनाशक महातिक्त घृत

भूनिम्बत्रिफलोशीर-पाठारिष्टाब्दयासकाः।
मधुकं शारिवे तिक्ता त्रायन्ती चन्दनामृताः।।१३।।
कृष्णापद्मकषड्ग्रन्था-विशालेन्द्रयववृषाः।
मूर्वापटोलशम्याक-पर्पटातिविषा निशे।।१४।।
सप्तच्छदशतावर्यावित्येषां पादकल्कितम्।
सर्पिरष्टगुणे तोये द्विगुणामलकद्रवम्।।१५।।
साधितं वातपित्तोत्थकुष्ठविस्फोटपाण्डुजित्।
महातिक्तं ज्वरोन्मादगण्डमालापहं मतम्।।१६।।

भूनिम्ब (चिरायता), त्रिफला, उशीर (खस), पाठा, अरिष्ट (नीम), अब्द (मुस्तक), यासक, मधुक (मुलेठी), दोनों शारिवा, तिक्ता (कुटकी), त्रायन्ती, चन्दन, अमृता (गिलोय), कृष्णा (पीपल), पद्मक, षड्ग्रन्था (वचा), विशाला (इन्द्रवारुणी), इन्द्रयव, वृष (अडूसा), मूर्वा, पटोल, शम्याक, पर्पट, अतिविषा, निशा (हल्दी), सप्तच्छद, शतावरी- इनका चतुर्थांश कल्क आठ गुणा पानी में मिलाएं तथा जल से द्विगुण आमलकी-रस मिलाएं। इनके साथ सिद्ध किया हुआ घृत वातपित्तजन्य कुष्ठ, विस्फोट एवं पाण्डुरोग को नष्ट करता है। यह 'महातिक्त' नामक घृत ज्वर, उन्माद एवं गण्डमाला रोग को भी दूर करता है।

पित्तरक्त-प्रधान कुष्ठ हेतु घृतयोग

घृतं सिद्धं पटोलेन दार्व्या वा खदिरेण वा।
निम्बेन वा प्रयोक्तव्यं कुष्ठे पितासृगुत्तरे।।१७।।

पटोल, दार्वी (दारुहल्दी), खदिर एवं निम्ब- इनमें से किसी एक के साथ सिद्ध किया हुआ घृत पित्तरक्त की प्रधानता वाले कुष्ठ में सेवन करने योग्य होता है।

कुष्ठनाशक घृत एवं विशेष पथ्याहार

कल्कपादं घृतप्रस्थं आवर्त्तिन्यास्तुलाम्भसा।
पक्वं पीत्वारनालेन जीर्णान्ते कोद्रवौदनम्।।१८।।
हिताशी विधिनानेन सप्तरात्रं त्र्यहे त्र्यहे।
प्रयुज्य मुच्यते कुष्ठ-गुल्मोदर-भगन्दरैः।।१९।।

आवर्त्तिनी (चर्मरंगा) के पाद (पाव भर) कल्क एवं एक तुला परिमाण जल में एक प्रस्थ घृत सिद्ध करना चाहिए। आरनाल (कांजी) के साथ इसका सेवन करना चाहिए। पाचन होने पर कोद्रव धान्य से सिद्ध ओदन खाना चाहिए। इस विधि से इक्कीस दिन तक हिताशन करता हुआ व्यक्ति कुष्ठ,

गुल्म, उदर एवं भगन्दर रोगों से मुक्त हो जाता है।

कुष्ठनाशक विविध लेप

सज्योतिष्कफलैर्लेपो जातीलाक्षाकटुत्रिकैः।
शिलामरिचतैलार्कक्षीरैर्वा सर्वकुष्ठहृत् ।।२०।।

जाति, लाक्षा एवं त्रिकटु के साथ पीसे गए ज्योतिष्क (ज्योतिष्मती/मालकांगनी) के फलों का लेप करने से सब प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार शिला (मैनसिल) मरिच, तेल तथा आक के दूध के साथ पीसे गए ज्योतिष्क (ज्योतिष्मती/मालकांगनी) के फलों का लेप करने से भी सभी प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं।

पथ्याकरञ्जसिद्धार्थनिशावल्गुजसैन्धवैः।
विडङ्गसहितैः पिष्टैर्लेपो मूत्रेण कुष्ठजित्।।२१।।

पथ्या (हरड़), करञ्ज, सिद्धार्थ (श्वेत सरसों), निशा (हल्दी), अवल्गुज (बाकुची) एवं सैन्धव को विडङ्ग के साथ गोमूत्र में पीसकर लेप करने से सभी प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं।

कुष्ठं कुष्ठजयी लेपः करञ्जैडगजान्वितम्।
लोध्रतार्क्ष्यजसिन्धूत्थप्रपुनाडैर्मतोऽपरः।।२२।।

करञ्ज, एडगज (चक्रमर्द) से युक्त कुष्ठ (कूठ) का लेप कुष्ठजयी-अर्थात् कुष्ठरोग को नष्ट करने वाला होता है। इसी प्रकार लोध्र, तार्क्ष्यज (रसाञ्जन), सिन्धूत्थ (सैन्धव लवण) एवं प्रपुनाड (चक्रमर्द)के साथ कूठ का लेप भी कुष्ठनाशक होता है।

कुष्ठसैन्धवसिद्धार्थ-कृमिघ्नैडगजैः समैः।
दद्रूमण्डलकुष्ठघ्नं लेपनं काञ्जिकान्वितम्।।२३।।

कुष्ठ, सैन्धव, सिद्धार्थ, कृमिघ्न (विडङ्ग) एवं एडगज (चक्रमर्द) को समान मात्रा में मिलाकर काञ्जी के साथ पीस लें। इनका लेप दद्रु एवं मण्डल नामक कुष्ठरोग को नष्ट कर देता है।

गन्धकालशिलाकुष्ठ-कालीयोशीरपत्रकैः।
सत्वग्वक्रैः प्रलेपोऽयं सिध्मजिद् वारिकल्कितैः।।२४।।

गन्धक, अल (हरताल), शिला (मैनसिल), कुष्ठ (कूठ), कालीय, उशीरपत्रक त्वग् (दालचीनी) वक्र (तगर)- इन्हें जल के साथ पीसकर लुगदी बनाएं। इसका लेपन करने से सिध्म नामक कुष्ठ नष्ट हो जाता है।

पत्रकोषणकासीस-तैलवाप्यमनःशिलाः।
सप्ताहमुषिताः कांस्ये सिध्मश्वित्रविनाशनाः।।२५।।

पत्रक (तेजपात), ऊषण (कालीमिर्च), कासीस (विशेष प्रकार का उपरस), तेल, वाप्य (कूठ) एवं मनःशिला (मैनसिल)- इन्हें सात दिन तक काँसे के पात्र में रखें; तदनन्तर इनका लेप करने से सिध्म व श्वित्र नामक कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं।

लेपः सिध्महरो दृष्टो गन्धकः सयावग्रजः।
कदल्याः खरपुष्प्या वा तैलं क्षारेण संगतम्।।२६।।

यवाग्रज (यवक्षार) एवं गन्धक के चूर्ण का लेप सिध्म-नाशक होता है। कदली अथवा खरपुष्पी (अपामार्ग) के क्षार से युक्त तेल भी सिध्म नामक कुष्ठ को नष्ट कर देता है।

कुनटी-शिखिपित्तेन भस्म वा बालकोद्भवम्।
गजदर्पेण मालत्याः क्षारो वा श्वित्रलेपनम्।।२७।।

कुनटी (नेपाली मैनसिल) एवं शिखिपित्त (मोर के पित्त) का लेपन करने पर श्वित्र कुष्ठ नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार बालक (उदीच्य) की भस्म का लेपन भी श्वित्र कुष्ठ को दूर कर देता है। श्वित्र कुष्ठ पर गजदर्प (हाथी

के मद) अथवा मालतीक्षार का लेपन करने से भी वह नष्ट हो जाता है।

कुष्ठनाशक तैलाभ्यंग

स्नुह्यश्वमारकार्कत्वग्लवणोशीरवह्निभिः।
समूत्रैस्तैलमभ्यङ्गात्पक्वं कुष्ठविनाशनम्।।२८।।

स्नुही (थूहर), अश्वमारक (कनेर), अर्कत्वक् (आक की छाल), सैन्धव लवण, उशीर (खस), चित्रक- इन्हें गोमूत्र में मिलाकर तैल सिद्ध करें। इसका अभ्यङ्ग करने से कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है।

दद्रूकुष्ठविचर्चिका-नाशक तैल

कुष्ठाश्वमारभृङ्गार्कमूत्रस्नुक्क्षीरसैन्धवैः।
तैलं सिद्धं विषावापं दद्रूकुष्ठविचर्चिनुत्।।२९।।

कुष्ठ (कूठ), अश्वमार (कनेर), भृङ्ग (भांगरा), अर्क (आक), गोमूत्र, स्नुक्क्षीर (थूहर का दूध) एवं सैन्धव लवण के साथ सिद्ध तैल विष का आवाप (प्रक्षेप) देकर प्रयोग करने से दद्रु (दाद), कुष्ठ एवं विचर्चिका (छोटे दानों वाली खुजली) आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

पामाहर तैल

मञ्जिष्ठात्रिफला-काक्षी-निशाशिलालगन्धकैः।
चूर्णितैस्तैलमादित्य-पाकात् पामापहं स्मृतम्।।३०।।

मञ्जिष्ठा, त्रिफला, काक्षी (सौराष्ट्र-मृत्तिका), निशा (हल्दी), शिला (मैनसिल), अल (हरताल) एवं गन्धक- इनका चूर्ण बनाकर तिल के तेल में मिलाएं। इसे पर्याप्त समय सूर्य की धूप में रखें; तदनन्तर इसका अभ्यङ्ग करने से पामा (छोटे दानों वाली खुजली) नष्ट हो जाती है।

सर्वत्वचारोग-नाशक क्वाथ

काकोदुम्बर्यरिष्टाब्द-व्योषजन्तुघ्नकल्कितैः।
हन्ति वृक्षकजः क्वाथः पीतः सर्वत्वगामयम्।।३१।।

काकोदुम्बरी (कठगूलर), अरिष्ट (नीम), अब्द (मुस्तक), व्योष (त्रिकटु) एवं जन्तुघ्न (विडङ्ग) का कल्क बनाएं, इसे डालकर वृक्षक (कुटज) का क्वाथ बनाएं। इसका पान करने से कुष्ठ आदि सभी त्वचा-रोग नष्ट हो जाते हैं।

त्वचारोग-निवारण हेतु गुडूच्यादि के साथ गुग्गुलुपान

गुडूची त्रिफलादार्वीक्वाथमूत्रोष्णवारिभिः।
त्वग्दोषव्रणशोफघ्नं पीतं मासेन गुग्गुलु।।३२।।

गुडूची (गिलोय), त्रिफला एवं दार्वी (दारुहल्दी) के क्वाथ के साथ एक मास पर्यन्त गुग्गलु (गूगल) का पान करने से कुष्ठ आदि त्वग्दोष, व्रण एवं शोफ नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार गोमूत्र अथवा उष्ण जल के साथ एक मास तक गूगल का सेवन करने से भी ये रोग नष्ट हो जाते हैं।

कुष्ठनाश हेतु शिलाजीत आदि के साथ गोमूत्रपान

शिलाजतु हरिद्रां वा तार्क्ष्यजं वा समाक्षिकम्।
गोमूत्रेण पिबेन्मासं कुष्ठपाण्ड्वामयं जयेत्।।३३।।

शिलाजीत, हल्दी अथवा तार्क्ष्यज (रसाञ्जन) को मधु मिलाकर गोमूत्र के साथ एक मास तक पीने से कुष्ठ एवं पाण्डुरोग नष्ट हो जाता है।

दुग्धाहार के साथ तीन सप्ताह तक बाकुचीपान

घर्मसेवी कदुष्णेन वारिणा वाकुचीं पिबेत्।
क्षीरभोजी त्रिसप्ताहात् कुष्ठरोगाद् विमुच्यते।।३४।।

जो व्यक्ति धूप का विशेष रूप से सेवन करते हुए कदुष्ण (सुखोष्ण/थोड़े गर्म) जल के साथ तीन सप्ताह तक बाकुची का पान करता है, वह कुष्ठ रोग से मुक्त हो जाता है। इस अन्तराल में केवल दुग्धाहार ही करना चाहिए, अन्यथा पूर्वोक्त लाभ नहीं मिलता है।

बाकुचीचूर्ण के साथ सिद्ध क्षीरसार का सेवन

वाकुचीचूर्णसञ्जातं क्षीरसारं समाक्षिकम्।
लीढ्वानुपिबतस्तक्रं तदैव स्यान्न कुष्ठभीः।।३५।।

बाकुची चूर्ण के साथ पकाकर तैयार किए हुए क्षीरसार (खोए जैसे गाढ़े दूध) को मधु मिलाकर चाटना चाहिए, ऊपर से तक्र का पान करना चाहिए। ऐसा करने से कुष्ठरोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

कुष्ठ-नाशक सप्तसम योग

तिलाज्यत्रिफलाक्षौद्रव्योषभल्लातशर्कराः।
वृष्यः सप्तसमो मेध्यः कुष्ठहा कामचारिणः।।३६।।

तिल, घी, त्रिफला, मधु, त्रिकटु, भल्लातक (भिलावा) एवं शर्करा- इन सातों को समान मात्रा में मिलाकर तैयार किया गया योग वृष्य, मेध्य एवं कुष्ठनाशक होता है। इसके सेवन-काल में व्यक्ति कामचारी (स्वच्छन्दचारी) रहे- अर्थात् बिना किसी तनाव व दबाव के स्वच्छन्द वृत्ति वाली जीवनचर्या बनाए रखे। इससे औषध का प्रभाव अधिक कारगर होता है।

प्रबल कुष्ठों का नाशक विशिष्ट योग

विडङ्गाग्निसितातैलधात्र्ययोमलपिप्पलीः।
प्रलिह्य सर्वकुष्ठानि जयत्यतिगुरूण्यपि।।३७।।

विडङ्ग, चित्रक, सिता (मिश्री), तैल, धात्री, अयोमल (लोहमल/मण्डूर) एवं पिप्पली- इन सबके चूर्ण को (मधु के साथ) चाटने वाला व्यक्ति शीघ्र ही प्रबल कुष्ठों को भी जीत लेता है।

अन्य कुष्ठहर योग

पथ्यागुडतिलैः पिण्डी कुष्ठं सारुष्करैर्जयेत्।
गुडारुष्कर-जन्तुघ्नसोमराजीकृताथवा।।३८।।

हरड़, तिल, अरुष्कर (शोधित भिलावा) एवं गुड़ से बनाई गई पिण्डी का उचित मात्रा में सेवन करना चाहिए। यह कुष्ठरोग को नष्ट कर देती है। इसी प्रकार गुड़, भिलावा, विडङ्ग एवं सोमराजी (बाकुची) से बनाई गई पिण्डी भी कुष्ठ को नष्ट कर देती है।

विडङ्गत्रिफलाकृष्णाचूर्णं लीढं समाक्षिकम्।
हन्ति कुष्ठं क्रिमीन्मेहं नाडीव्रणं भगन्दरम्।।३९।।

विडङ्ग, त्रिफला और पिप्पली के चूर्ण को मधु के साथ चाटने से कुष्ठ, कृमि, प्रमेह, नाडीव्रण एवं भगन्दर रोग नष्ट हो जाते हैं।

सर्पिषेन्द्रयवचूर्णं पिबेत् त्वग्दोषमुक्तये ।
तिलैः समां समां विद्यात् सोमराजीं समाहितः।।४०।।

त्वचा पर होने वाले श्वित्र कुष्ठ आदि रोगों से मुक्ति के लिए रोगी को घी में मिलाकर इन्द्रयव (इन्द्र जौ) के चूर्ण का पान करना चाहिए। इसी प्रकार तिल के साथ समान मात्रा में मिश्रित सोमराजी (बाकुची) का श्रद्धापूर्वक एक वर्ष तक सेवन करना चाहिए। इससे भी कुष्ठ आदि त्वग्दोष नष्ट हो जाते हैं।

खदिराश्मजतुक्षौद्रसर्पिर्जन्तुघ्नलेहिनः।
कुष्ठशोफामया यान्ति व्ययमात्मवतोऽचिरात्।।४१।।

खदिर, शिलाजीत, मधु, घृत एवं विडङ्ग चूर्ण- इन सबके मिश्रण का लेहन करने वाले आत्मवान् (संयमी व पथ्याहारी) व्यक्ति के कुष्ठ एवं शोफ शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

कुष्ठ-नाशक खदिर रसायन

दह्यमानाच्च्युतः कुम्भे मूलेन खदिराद्रसः।
साज्यधात्रीरसक्षौद्रो हन्यात्कुष्ठं रसायनम्।।४२।।

खदिर वृक्ष के चारों ओर ईंधन लगाकर अग्नि प्रज्ज्वलित कर दें।

इसके जलने पर इसकी जड़ में पहले से रखे घड़े में स्रवित होने वाले रस में घृत, आमलकी-रस व मधु मिलाकर सेवन करना चाहिए। यह कुष्ठ को नष्ट करता है तथा जरानाशक रसायन है।

कुष्ठहर खदिरक्वाथ योग

कषायः खादिरो लेह्यः कुष्ठं सक्षौद्रतार्क्ष्यजः।
हन्याद् वा त्रिफलाक्षौद्रसर्पिर्जन्तुघ्नसंयुतः।।४३।।

खदिर (खैर) की छाल का कषाय (काढ़ा) बनाकर उसे मधु और तार्क्ष्यज (रसाञ्जन) के साथ लेना चाहिए। इसी प्रकार त्रिफला, मधु, घृत एवं विडंग चूर्ण के साथ खदिर के कषाय का सेवन करना चाहिए। इससे कुष्ठरोग नष्ट हो जाता है।

कुष्ठनिवारण में खादिर जल की श्रेष्ठता

प्रलेपोद्वर्तन-स्नानपानभोजनकर्मणा।
शीलितं खादिरं वारि सर्वत्वग्दोषनाशनम्।।४४।।

प्रलेपन, उद्वर्तन (उबटन), स्नान, पान व भोजन में खादिरवारि (खैर वृक्ष की छाल के काढ़े) का लम्बे समय तक निरन्तर सेवन करने से श्वित्र कुष्ठ आदि त्वचा पर होने वाले दोष नष्ट हो जाते हैं।

कुष्ठनिवारण हेतु कुछ अन्य वृक्षों का औषधीय उपयोग

योज्याः खादिरकल्पेन कुष्ठामयनिवारणाः।
शिंशपारग्वधारिष्टदारुरोहीतकासनाः।।४५।।

खादिर कल्प (कल्पविधि से खदिर के सेवन) के साथ कुष्ठरोग का निवारण करने वाले शिंशपा (शीशम), आरग्वध (अमलतास), अरिष्ट (नीम), दारु (देवदारु), रोहीतक (रोहिड़ा) एवं असन- इन वृक्षों की छाल आदि से सिद्ध क्वाथ आदि का भी सेवन करना चाहिए।

कुष्ठरोगी के लिए पथ्य

शालिकोद्रवगोधूमयवमुद्गादयो हिताः।
पुराणाः कुष्ठिने तिक्तशाकजाङ्गलसंयुताः।।४६।।

कुष्ठरोगी के लिए पुराने शालि (चावल), कोद्रव (कोदो धान्य), गोधूम (गेहूँ), यव (जौ) एवं मुद्ग (मूंग) आदि हितकर होते हैं। तिक्त (कड़वे) रस वाले शाक भी कुष्ठरोग में पथ्य होते हैं; क्योंकि इनसे रक्त शुद्ध होता है तथा कुष्ठ को दूर करने में सहायता मिलती है।

।। इति कुष्ठाध्यायो द्वादशः समाप्तः।।

त्रयोदश अध्याय

अर्शो-भगन्दर

अर्श (बवासीर)- निदान एवं भेद

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात्सहजानि च।
अर्शांसि षट्प्रकाराणि विद्याद् गुदवलीत्रये।।१।।

तीनों दोषों से पृथक्-पृथक् होने वाले अर्श- **वातज, पित्तज** एवं **कफज** रूप में जाने जाते हैं। तीनों दोषों से सम्मिलित रूप में उत्पन्न होने वाला अर्श **'त्रिदोषज'** होता है। इनके अतिरिक्त **'शोणितज'** एवं **'सहज'** भेद से दो अन्य प्रकार के अर्श होते हैं। इस प्रकार अर्श रोग के छह भेद हैं।

म्लानशुष्कारुणश्याव-रूक्षाणि विषमानि च।
सर्ववातविकाराणि विद्यादर्शांसि मारुतात्।।२।।

म्लान, शुष्क, अरुण, कृष्ण, रूक्ष एवं विषम रूप वाले अर्श वातजन्य होते हैं। इनमें सभी वातजन्य विकार दिखाई देते हैं।

पित्तात् पित्तविकाराणि रक्तपीतासितानि च।
स्पर्शासहमृदून्यस्रवाहीनि क्लेदवन्ति च।।३।।

पित्त के कारण पित्तज विकारों वाले अर्श उत्पन्न होते हैं। ये रक्त (लाल), पीत (पीले) एवं कृष्ण वर्ण के होते हैं। ये स्पर्श को न सहने वाले- अर्थात् अति पीडायुक्त, मृदु, रक्तस्राव वाले एवं क्लेद (आर्द्रता) सहित होते हैं।

श्वेतपाण्डुस्थिरस्निग्धपिच्छिलानि बलासतः।
महान्ति स्तब्धसुप्तानि कफामयकराणि च।।४।।

कफजन्य अर्श श्वेत व पाण्डु वर्ण वाले स्थिर (कठोर), स्निग्ध एवं पिच्छिल होते हैं। ये आकार में बड़े, स्तब्ध एवं सुप्त रूप में होते हैं। ये अन्य कफरोगों को भी उत्पन्न करते हैं।

सर्वैः सर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैः सहजानि च।
रक्तानि रक्तवाहीनि रक्तजानि च निर्दिशेत्।।५।।

त्रिदोषज अर्श तीनों दोषों के लक्षणों से युक्त होते हैं। **सहज** अर्श भी त्रिदोषलक्षण सहित होते हैं। **रक्तज** अर्श रक्तस्रावयुक्त एवं लाल वर्ण के होते हैं।

अर्श की साध्यसाध्यता

अभ्यन्तरवलीस्थानि त्रिदोषसहजानि च।
प्रत्याख्येयानि शेषाणि कृच्छ्रसाध्यानि निर्दिशेत्।।६।।

जो 'त्रिदोषज' एवं 'सहज' अर्श गुदा के अन्दर की वलियों में होते हैं, वे प्रत्याख्येय (असाध्य) माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त शेष अर्श कष्टसाध्य होते हैं।

छर्दिमोहाङ्गरुक्तृष्णा-ज्वरहृद्बस्तिशूलिनम्।
गुदास्यपाकिनं क्षीणं वर्जयेद् गुदजातुरम्।।७।।

छर्दि, मोह, अंगपीडा, तृष्णा, ज्वर, हृदयशूल, वस्तिशूल, गुदपाक, मुखपाक से युक्त तथा दुर्बल अर्शरोगी को असाध्य मानते हुए छोड़ देना चाहिए- अर्थात् इन लक्षणों से युक्त असाध्य रोगी की चिकित्सा निष्फल होती है।

शुष्क एवं स्रावयुक्त- द्विविध अर्श

शुष्काणि कफवाताभ्यां स्राववन्त्यस्रपित्ततः।
द्वैविध्यमर्शसां ज्ञेयं शुष्काणां वक्ष्यते क्रिया।।८।।

कफवात-जन्य अर्श शुष्क रूप वाले होते हैं। पित्तजन्य अर्श स्रावयुक्त होते हैं। इस आधार पर अर्श दो प्रकार के माने जाते हैं। इनमें से पहले शुष्क रूप वाले अर्श की चिकित्सा का वर्णन किया जा रहा है।

शुष्क अर्श चिकित्सा

स्वेदो गोमयपिण्डेन सक्तुना मूलकस्य वा।
शतपुष्पेण वा कार्यो भङ्गवार्यवसेचनम्।।९।।

शुष्क अर्श का गोमयपिण्ड, मूलकपिण्ड, सक्तुपिण्ड अथवा शतपुष्पपिण्ड से स्वेदन करना चाहिए। इसी प्रकार भङ्गवारि (भांग के रस या क्वाथ) से अवसेचन करना चाहिए।

असिताहि-विडालोष्ट्र-वराह-जतुकावसा।
धूपनाभ्यञ्जने योज्या गुदजानां निवृत्तये।।१०।।

शुष्क अर्शों की निवृत्ति के लिए असिताहि (कृष्णसर्प), विडाल, उष्ट्र, वराह एवं जतुका (चमगादड़) की वसा (चर्बी) से उनका धूपन व अभ्यञ्जन (स्नेहन) करना चाहिए।

रजनीचूर्णसंयुक्तं स्नुहीक्षीरं प्रलेपनम्।
कृष्णां वा सनिशां पिष्ट्वा गोपित्तेन प्रयोजयेत्।।११।।

शुष्क अर्शों के ऊपर हल्दी के चूर्ण से युक्त स्नुहीक्षीर (थूहर के दूध) का प्रलेपन करना चाहिए अथवा हल्दी एवं कृष्णा (पीपल) को गोपित्त के साथ पीसकर लेपन करना चाहिए।

गोमूत्रं स्वर्जिकादन्तीलाङ्गलीमूलचित्रकैः।
कृष्णाशिरीष-बीजार्कक्षीरैः सामयसैन्धवैः।।१२।।
हरिद्रादक्षविड्गुञ्जागोमूत्रैः पिप्पलीयुतैः।
एतल्लेपत्रयं योज्यं सिद्धमर्शोविनाशनम्।।१३।।

गोमूत्र में स्वर्जिकाक्षार (सज्जीखार), दन्ती, लाङ्गलीमूल एवं चित्रक को पीसकर लेपन करना चाहिए। इसी प्रकार कृष्णा (पिप्पली), शिरीषबीज (सिरस वृक्ष के बीज), आमय (कूठ) व सैन्धव को आक के दूध में पीसकर लेपन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त हल्दी, दक्षविट् (मुर्गे के मल), गुञ्जा (चिर्मटी) को गोमूत्र में पीसकर लेपन करना चाहिए। इन तीन लेपों का प्रयोग करने से शुष्क अर्श नष्ट हो जाते हैं।

दन्त्यश्वमारकासीसविडङ्गैलाग्निसैन्धवैः।
सार्कक्षीरं शृतं तैलमभ्यङ्गात्पायुकीलजित्।।१४।।

दन्ती, अश्वमार (कनेर), कासीस, विडङ्ग, एला (छोटी इलायची), चित्रक एवं सैन्धव को आक के दूध में मिलाएं तथा इन सबको तिल के तेल में डालकर तेल सिद्ध करें। इस तेल का अभ्यङ्ग करने से अर्शरोग नष्ट हो जाता है।

अभया सगुडा भक्ष्या गोमूत्राध्युषिताथवा।
सकृष्णा घृतभृष्टा वा त्रिवृद्दन्तीयुतापि वा।।१५।।

अर्शरोग का निवारण करने के लिए गुड़ के साथ हरड़ का सेवन करना चाहिए अथवा गोमूत्र में डालकर रखी हुई हरड़ का सेवन करना चाहिए। हरड़ को पिप्पली के साथ घी में भूनकर सेवन करने से अथवा त्रिवृत् एवं दन्ती के साथ सेवन करने से भी अर्शरोग नष्ट हो जाता है।

सारुष्करं निषेवेत तक्रं तर्पणमादृतः।
वह्निदीप्यकयुक्तं वा सशुण्ठीबिल्वमेव वा।।१६।।

अर्शरोग में शोधित भल्लातक (भिलावे) के साथ श्रद्धापूर्वक तक्र का सेवन करना चाहिए अथवा चित्रक एवं दीप्यक के साथ तक्र का सेवन करना चाहिए। इसी प्रकार शुण्ठी एवं बिल्व के साथ तक्र का सेवन करने से भी अर्शरोग नष्ट हो जाता है।

चित्रकाक्ते घटे तक्रं सञ्जातं दधि वा पिबेत्।
भार्ग्यास्फोटागुडूचीनामेष एव विधिः स्मृतः।।१७।।

चित्रक के रस से सिक्त घट में जमाए दही का सेवन करना चाहिए अथवा चित्रक रस से सिक्त घट में तैयार किए गए तक्र का सेवन करना चाहिए। इसी प्रकार भार्गी, आस्फोटा (गिरिकर्णिका) एवं गुडूची रस से सिक्त घट में तैयार दही या तक्र का सेवन करने से भी अर्शरोग नष्ट हो जाते हैं।

चव्यचित्रकसंयुक्तामर्शोघ्नीं शीलयेत्सुराम्।
पिबेच्छीधुसुराद्यं वा विश्वचित्रकसंयुतम्।।१८।।

चव्य एवं चित्रक से युक्त अर्शोघ्नी सुरा का सेवन करना चाहिए अथवा शुण्ठी एवं चित्रक से युक्त सीधु, सुरा आदि पेयों का सेवन करने से अर्शरोग नष्ट हो जाता है।

सैन्धवं द्विगुणं दन्तीभल्लाताग्निफलत्रिकम्।
कपालसम्पुटे पक्वमश्नीयाद् गुदजामयी।।१९।।

दन्ती, शोधित भल्लातक (भिलावा), चित्रक एवं त्रिफला को सममात्रा में लें। इनसे द्विगुण मात्रा में सैन्धव लवण मिलाकर कपालसम्पुट (घड़े के ठीकरे) में पकाकर सेवन करें। इससे अर्शरोग नष्ट हो जाता है।

असितानां तिलानां प्राक् प्रकुञ्चं शीतवार्यनु।
खादतोऽर्शांसि शाम्यन्ति द्विजदार्ढ्याङ्गपुष्टिदम्।।२०।।

काले तिलों को एक प्रकुञ्च/पल (६० ग्राम) परिमाण में लें तथा खूब चबाकर खाएं। ऊपर से शीतल जल का पान करें। ऐसा करने से अर्श रोग नष्ट हो जाता है तथा दाँतों की दृढ़ता व अङ्गों की पुष्टि होती है।

व्योषगर्भं पलाशस्य त्रिगुणे भस्मवारिणि।
साधितं पिबतः सर्पिः पतन्त्यर्शांस्यसंशयम्।।२१।।

घृत से तीन गुणा पलाशक्षार युक्त जल लें, उसमें त्रिकटु मिलाकर घृत सिद्ध करें। इसका सेवन करने से अर्श (बवासीर के मस्से) नष्ट हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

त्रिफलादशमूलाग्निनिकुम्भानां पलं पलम्।
वारिद्रोणे शृतं पादशेषे गुडतुलायुतः।।२२।।
आज्यभाण्डस्थितो मासं दन्त्यरिष्टो निषेवितः।
गुदजारुच्युदावर्त्त-ग्रहणी-पाण्डुरोगहा।।२३।।

त्रिफला, दशमूल, चित्रक एवं निकुम्भ (दन्ती)- इन सबको एक-एक पल के परिमाण में लेकर एक द्रोण जल में चतुर्थ भाग शेष रहने तक उबालें। इसमें एक तुला परिमाण में गुड़ डाल दें। इस प्रकार दन्त्यरिष्ट तैयार होता है। इसे घी रखने से चिकने हो चुके घड़े में डालकर एक मास तक रखें; तदनन्तर इसका सेवन करने से अर्श, अरुचि, उदावर्त्त, ग्रहणी एवं पाण्डुरोग नष्ट हो जाते हैं।

फलारिष्ट

द्वे द्वे पले विशालायाः कपित्थस्याग्निपाठयोः।
पथ्याधात्र्योः पृथक् प्रस्थं द्विद्रोणे क्वाथयेदपाम्।।२४।।
पादशेषो रसः सर्पिःकुम्भे गुडशतान्वितः।
पक्षोषितः फलारिष्टो ग्रहण्यर्शोऽर्तिगुल्मनुत्।।२५।।

विशाला (इन्द्रवारुणी), कपित्थ, चित्रक एवं पाठा को दो-दो पल के परिमाण में लें। हरड़ एवं आंवला- इन दोनों को मिलाकर एक प्रस्थ परिमाण में लें। इन सबको दो द्रोण परिमाण जल में चतुर्थांश शेष रहने तक उबालें। इसमें सौ पल गुड़ डालकर घृत रखने से चिकने हुए घड़े में भर लें। एक पक्ष तक रखने के उपरान्त इसका सेवन करें। यह 'फलारिष्ट' नामक औषध ग्रहणी, अर्शरोग एवं गुल्म को नष्ट करता है।

वातातीसारवद् भिन्नवर्चांस्यर्शांस्युपाचरेत्।
उदावर्त्तविधानेन गाढविट्कानि चासकृत्।।२६।।

जिन अर्शों में मलभेदन की स्थिति रहती है- अर्थात् पतला मल आता है, उनकी चिकित्सा वातातिसार की चिकित्सा के समान करनी चाहिए। जिन अर्शों में मल गाढ़ा रहता है, उनकी चिकित्सा उदावर्त्त की चिकित्सा के अनुसार करनी चाहिए।

शताह्वाबिल्वकृष्णाग्निवचामधुकदारुभिः।
पुष्कराख्यशटीकुष्ठराठैः पिष्टैः पयोन्वितम्।।२७।।
तैलं पक्वं प्रयोक्तव्यं वस्तौ वातानुलोमनम्।
प्रवाहिकागुदभ्रंश-शूलमूत्रग्रहापहम्।।२८।।

शताह्वा (सोआ), बिल्व, कृष्णा (पिप्पली), चित्रक, वचा, मधुक (मुलेठी), दारुहरिद्रा (दारुहल्दी), पुष्कर (पुष्करमूल), शटी (कपूर कचरी), कूठ, राठ (मदनफल)- इन्हें पानी के साथ पीसकर कल्क बनाएं। इस कल्क के साथ तेल सिद्ध करें। इस तेल का वस्ति में प्रयोग करें। यह वातानुलोमन होता है तथा प्रवाहिका, गुदभ्रंश, शूल एवं मूत्रग्रह (मूत्रावरोध/मूत्रकृच्छ्र) को दूर करता है।

तिक्ताद्यो यापनो वा स्याद् वस्तिर्वा दाशमूलिकः।
सक्षीरलवणः स्नेहः कल्कैर्युक्तः फलादिभिः।।२९।।

तिक्ताद्य वस्ति अथवा दाशमूलिक (दशमूल से सिद्ध वस्ति) इस रोग में यापन का काम करती है- अर्थात् जब तक लेते रहेंगे तब तक राहत बनाए रखती है। इसी प्रकार फलादि (त्रिफला आदि) के कल्क से युक्त दूध एवं लवण सहित स्नेह की वस्ति भी इसमें यापन का काम करती है।

स्रावयुक्त अर्शरोग की चिकित्साविधि

स्राविणां रक्तमालोक्य क्रिया कार्यास्त्रपैत्तिकी।
पूर्वं तिक्तोपयोगश्च वह्निदीपनपाचनः।।३०।।

स्रावी- अर्थात् स्राव वाले अर्श में रक्तपित्त वाली चिकित्सा करनी चाहिए। इसमें सर्वप्रथम ऐसे तिक्त पदार्थों का सेवन करना चाहिए, जो अग्निदीपन व पाचन होते हैं।

उशीरारिष्टदार्वीत्वक्क्वाथः स्याच्छोणितार्शसाम्।
शुण्ठी-चन्दन-भूनिम्ब-धन्वयासभवोऽथवा।।३१।।

रक्तार्श (खूनी बवासीर) वाले रोगियों के लिए 'उशीरारिष्ट' एवं दार्वी-त्वक्क्वाथ (दारुहल्दी की छाल के काढ़े) का प्रयोग करना चाहिए अथवा शुण्ठी, चन्दन, भूनिम्ब (चिरायता), धन्वयास (जवासा) के क्वाथ का प्रयोग करना चाहिए। इससे खूनी बवासीर शान्त हो जाता है।

वृक्षकस्य त्वचं बीजं तार्क्षजातिविषे मधु।
पिबेत् तण्डुलतोयेन तृष्णारक्तोपशान्तये।।३२।।

वृक्षकत्वचा (कुटज की छाल) व बीज, तार्क्षज (रसाञ्जन), अतिविषा (अतीस) एवं मधु को तण्डुलजल के साथ पीना चाहिए। इससे तृष्णा एवं रक्तार्श शान्त हो जाते हैं।

समङ्गोत्पलमोचाह्वतिरीटातिलचन्दनैः।
छागक्षीरं प्रयोक्तव्यं गुदजे शोणितापहम्।।३३।।

समङ्गा (मञ्जिष्ठा), उत्पल (कमल), मोचा (कदली), तिरीट (लोध्र), तिल एवं चन्दन के साथ बकरी के दूध का सेवन करना चाहिए। इस योग से खूनी बवासीर शान्त हो जाता है।

अजाक्षीराशिनो युञ्ज्यात् सक्षौद्रं वृक्षफाणितम्।
मयूरकस्य कल्कं वा रक्तार्शी तण्डुलाम्भसा।।३५।।

रक्तार्श वाले रोगी को मधु सहित वृक्षफाणित (कुटज के फाणित) का प्रयोग करवाना चाहिए। इसी प्रकार तण्डुलजल के साथ मयूरक (अपामार्ग) का कल्क देना चाहिए। इन योगों से रक्तार्श से मुक्ति मिलती है।

सपद्मकेसरक्षौद्रं नवनीतं नवं लिहन्।
सिताकेसरयुक्तं वा शोणितार्शी सुखी भवेत्।।३६।।

जो रक्तार्श पीड़ित रोगी पद्मकेसर एवं मधु सहित ताजा मक्खन को चाटता है, वह रोगपीड़ा से मुक्त होकर सुखी हो जाता है। इसी प्रकार सिता (मिश्री) एवं नागकेसर के साथ ताजा मक्खन का सेवन करने वाला व्यक्ति भी रक्तार्श के कष्ट से मुक्त हो जाता है।

अर्शरोगहरी गुटिका

पलिकं चव्यतालीसमरिचं त्रिगुणं गुडम्।
समूला द्विपला कृष्णा चतुर्जातमृणालयोः।।३७।।
पृथगक्षम्भवेच्छुण्ठ्यास्त्रिपलं गुडिकाग्निकृत्।
सर्वार्शोवमिहृद्रोगकासगुल्मज्वरापहा।।३८।।

चव्य, तालीस, कालीमिर्च एवं पिप्पली को एक पल परिमाण में लें। गुड़ इनसे तीन गुणा लें। पिप्पली एवं पिप्पलीमूल को दो पल परिमाण में लें। चतुर्जात और मृणाल को एक-एक अक्ष परिमाण में लें। शुण्ठी तीन पल लें। सभी ओषधियों को चूर्णित कर गुड़ के साथ मिलाकर गुटिका बना लें। यह गुटिका जठराग्नि-दीपन, सभी अर्शों को नष्ट करने वाली होती है तथा हृदयरोग, कास, गुल्म एवं ज्वर को भी दूर करती है।

अर्शचिकित्सा में यन्त्रप्रयोग

गुदयन्त्रं भवेल्लौहं शार्ङ्गं वा गोस्तनाकृति।
चतुरङ्गुलमायामे नाहेनाङ्गुलपञ्चकम्।।३९।।

गोस्तन (गाय के थन) की आकृति में लौह (लोहे का बना हुआ) अथवा शार्ङ्ग (सींग का बना हुआ) 'गुदयन्त्र' होना चाहिए। यह लम्बाई में चार अंगुल तथा परिणाह (चौड़ाई) में पाँच अंगुल का होना चाहिए।

अर्शरोग में अग्नि एवं क्षार का प्रयोग

छित्त्वा वातकफोत्थानि वह्निनार्शांसि साधयेत्।
क्षारेणैव च सर्वाणि दृष्टकर्मा भिषग्वरः।।४०।।

उत्तम वैद्य को चाहिए कि वातकफजन्य बवासीर के मस्सों को काटकर अग्निदाह से चिकित्सा करे। क्षार द्वारा तो सभी प्रकार के मस्सों की चिकित्सा की जा सकती है। शस्त्र, अग्नि व क्षार द्वारा मस्सों की चिकित्सा में वैद्य का दृष्टकर्मा (क्रियात्मक अनुभव वाला) होना आवश्यक है।

अर्श में अपथ्य

यदग्निबलदं किञ्चिद् यच्च वातानुलोमनम्।
अन्नपानं यथावस्थं तद्योज्यं गुदजातुरे।।४१।।

अर्शरोग से पीड़ित व्यक्ति के लिए उसकी अवस्था को ध्यान में रखते हुए पथ्य के रूप में ऐसा अन्नपान देना चाहिए, जो अग्निबल को बढ़ाने वाला तथा वात का अनुलोमन करने वाला हो।

स्वदोषकोपनं ह्यन्नं कठिनोत्कुटकासनम्।
वेगसन्धारणं पृष्ठयानं चार्शी विवर्जयेत्।।४२।।

जिस दोष के प्रकोप से रोग हुआ है, उसे बढ़ाने वाला अन्नपान अर्शरोगी को नहीं लेना चाहिए। इसे कठिन एवं उकड़ू आसन में बैठना, मल-मूत्र आदि के वेगों का धारण करना और घोड़े-ऊँट आदि की सवारी छोड़ देनी चाहिए।

भगन्दर का स्वरूप व भेद

गुदस्य द्व्यंगुले क्षेत्रे पार्श्वत: पिटकार्तिकृत्।
भिन्नो भगन्दरो ज्ञेय: स च पञ्चविधो मत:।।४३।।

गुदा के दो अंगुल परिमाण वाले स्थान के पार्श्व भागों में फोड़े की पीड़ा के साथ फटने वाली पिटका (अर्श के मस्से) को 'भगन्दर' कहते हैं। यह पाँच प्रकार का होता है।

पञ्चविध भगन्दर के नाम

तीव्रतोदारुणा वातात्पिटका शतपोनक:।
पित्तात्तद् व्युच्छ्रिता रक्ता स चोष्ट्रग्रीवक: स्मृत:।।४४।।
कफात् कण्डूमती श्वेता परिस्रावीति गद्यते ।
त्रिदोषात्सर्वलिङ्ग: स्याच्छम्बूकावर्त्तसञ्ज्ञक:।।४५।।
उन्मार्गी पञ्चमो ज्ञेय: शल्याभ्यवहृतिक्षते:।
त्रिदोषशल्यजे त्याज्ये शेषा: कृच्छ्रप्रतिक्रिया:।।४६।।

जिसमें वातदोष के कारण तीव्र पीड़ा के साथ अरुण पिटका होती हैं, वह **शतपोनक** कहलाता है। जिसमें पित्तदोष के कारण उभरी हुई लाल पिटका होती है, वह **उष्ट्रग्रीवक** कहलाता है। जिसमें कफ के कारण श्वेत पिटका होती है, वह **परिस्रावी** नाम से जाना जाता है। जिसमें तीनों दोषों के कारण सभी प्रकार के लिङ्गों वाली पिटका होती है, वह **शम्बूकावर्त्त** कहलाता है। पञ्चम भेद **उन्मार्गी** नामक है। यदि कोई मांसाहारी व्यक्ति मांस के साथ हड्डी का टुकड़ा भी निगल लेता है तो वह जब गुदमार्ग से तिरछा निकलने लगता है तब गुदवलियों में घाव कर देता है। वह घाव पकने पर उस स्थान में गति (नासूर) पैदा कर देता है; तदनन्तर पूय के कारण फटी हुई उस गति में मांस की सड़न से कृमि उत्पन्न हो जाती हैं। वे गुद स्थान को खा-खाकर फाड़ देती हैं, इस प्रकार क्षतज उन्मार्गी भगन्दर हो जाता है।

भगन्दरपिटका-चिकित्सा

पिटकानामपक्वानामपकर्षणपूर्वकम्।
कर्म कुर्याद् विरेकान्तं भिन्नानां वक्ष्यते क्रिया।।४७।।

भगन्दर में जो पिटकाएं पकी नहीं होती हैं, उनका अपकर्षण करते हुए विरेचन पर्यन्त कर्म करवाना चाहिए। जो पिटकाएं पककर फट गई हों, उनकी चिकित्सा का विधान आगे किया जा रहा है।

एषणा-पाटना-क्षार-वह्निदाहादिकं क्रमम्।
विधाय व्रणवत् कार्यं यथादोषं चिकित्सितम्।।४८।।

भिन्न (फटी हुई) पिडका वाले भगन्दर में एषणा, पाटना, क्षार, वह्निदाह आदि क्रम करते हुए व्रण के समान चिकित्सा करनी चाहिए।

आरग्वध-निशा-कालाचूर्णाज्यक्षौद्रसंयुता।
सूत्रवर्त्तिर्व्रणे योज्या शोधनी गतिनाशनी।।४९।।

आरग्वध (अमलतास), निशा (हल्दी) एवं काला (मंजीठ) के चूर्ण में घृत व मधु मिलाकर सूत्रवर्त्ति (अग्रवर्त्ति/धागे जैसी नोकदार वर्त्ति) बनाएं। इसे भगन्दर स्थान पर लगाएं यह व्रण का शोधन करती है तथा गति को बढ़ने से रोकती है।

प्रस्तुत श्लोक में 'सूत्रवर्त्ति' के स्थान पर 'मूत्रवर्त्ति' पाठान्तर भी उपलब्ध होता है, परन्तु यह उचित नहीं है। यहाँ अनन्तकुमार-प्रणीत 'योगरत्नसमुच्चय' (भगन्दरचिकित्साधिकार- १६) की संवादिता से 'सूत्रवर्त्ति' पाठ ही स्वीकृत किया गया है। 'गदनिग्रह' (शल्यतन्त्र, भगन्दराधिकार- ७.४५) में 'अग्रवर्त्ति' पाठ मिलता है।

नाडीव्रण-नाशक योग

त्रिवृत्तेजोवती दन्ती मञ्जिष्ठारजनीद्वयम्।
तार्क्ष्यजं निम्बपत्रं च लेपो नाडीव्रणापहः।।५०।।

त्रिवृत् (निशोथ), तेजोवती (गजपिप्पली), दन्ती, मञ्जिष्ठा, हल्दी व दारुहल्दी, तार्क्ष्यज (रसाञ्जन) एवं निम्बपत्र का लेप नाड़ीव्रण को दूर करता है।

भगन्दर-नाशक तैल

करवीरनिशादन्ती लाङ्गली लवणाग्निभिः।
मातुलुङ्गार्कवत्साह्वैः पचेत् तैलं भगन्दरे।।५१।।

कनेर, हल्दी, दन्ती, लाङ्गली, लवण, चित्रक, मातुलुङ्ग, अर्क (आक) एवं वत्स (कुटज) के साथ सिद्ध किया तैल भगन्दर में उपयोगी होता है।

भगन्दररोगी के लिए अपथ्य

पृष्ठयानाङ्गनायुद्ध-व्यायाम-गुरुसेवनम्।
रूढव्रणः प्रयत्नेन त्यजेत् संवत्सरं नरः।।५२।।

भगन्दर का घाव भरने के उपरान्त भी घोड़े आदि की पीठ पर सवारी, स्त्रीसंग, युद्ध, व्यायाम एवं गुरु भोज्यपदार्थों के सेवन से एक वर्ष तक प्रयत्न-पूर्वक बचना चाहिए।

।। इत्यर्शो-भगन्दराध्यायः त्रयोदशः समाप्तः।।

चतुर्दश अध्याय

पाण्डु, कामला

पाण्डुरोग-निदान, पाण्डुरोग के भेद

तीक्ष्णाम्ल-लवणासात्म्य-मृत्तिकादिनिषेवणात्।
स्यात् पृथग्युगपद्दोषैः पाण्डुरोगश्चतुर्विधः।।१।।

तीक्ष्ण, अत्यम्ल (बहुत खट्टे), बहुत नमकीन व असात्म्य (अपनी प्रकृति के विरुद्ध) आहारद्रव्यों एवं मिट्टी आदि के सेवन से पाण्डुरोग हो जाता है। यह तीनों दोषों से पृथक्-पृथक् भी होता है तथा इनके सम्मिलित रूप से भी होता है। इस आधार पर यह- **वातज, पित्तज, कफज** एवं **त्रिदोषज** भेद से चार प्रकार का होता है।

कृष्णाभो वातपाण्डुः स्यात् तदुपद्रवसङ्गतः।
पित्तपाण्डुश्च तद्रोगी पीतमूत्राक्षिविट्छविः।।२।।

वातजन्य पाण्डुरोग वाले व्यक्ति का शरीर काली आभा से युक्त होता है तथा वातजन्य उपद्रव पैदा हो जाते हैं। पित्तजन्य पाण्डुरोगी के नेत्र, मूत्र एवं मल पीली कान्ति से युक्त हो जाते हैं।

श्वेताभं कफपाण्डुत्वं तद्विकारानुबन्धनम्।
विज्ञेयः सर्वरूपश्च पाण्डुरोगस्त्रिदोषजः।।३।।

कफजन्य पाण्डुरोगियों में श्वेताभ पीतिमा- अर्थात् श्वेतपन के साथ पीलापन होता है। त्रिदोषज पाण्डुरोग में उपर्युक्त तीनों प्रकार के लक्षण मिलते हैं।

असाध्य पाण्डुरोग

रक्तक्षयान्वितः क्षीणश्छर्दिशोफाद्युपद्रुतः।
पीतभावसमालोची पाण्डुरोगी जहात्यसून्।।४।।

जो पाण्डुरोगी रक्तक्षीणता से युक्त, बहुत दुर्बल एवं छर्दि व शोफ आदि उपद्रवों से युक्त होता है तथा जो सब कुछ पीला ही देखता है, ऐसा रोगी प्राणों से बिछुड़ जाता है।

पाण्डुरोग में स्नेहन एवं शोधन की उपयोगिता

स्नेहितान् सर्पिषा पूर्वं सर्वपाण्डुविकारिणः।
ऊर्ध्वाधः शोधनैस्तीक्ष्णैर्यथादोषमुपक्रमेत्।।५।।

सभी प्रकार के पाण्डुरोग वाले व्यक्तियों को पहले घृत से स्नेहित करें; तदनन्तर वमन-विरेचन रूप ऊपरी व नीचे वाले तीक्ष्ण शोधनों से शुद्धि कर यथादोष (दोषानुसार) शास्त्रविहित चिकित्सा करनी चाहिए।

पाण्डुरोगहर घृत

मूर्वातिक्तानिशायासकृष्णाचन्दनपर्पटैः।
त्रायन्तीवत्सभूनिम्बपटोलाम्बुददारुभिः।।६।।
अक्षमात्रैर्घृतप्रस्थं सिद्धं क्षीरे चतुर्गुणे।
पाण्डुता-ज्वरविस्फोटशोफार्शोरक्तपित्तजित्।।७।।

मूर्वा, तिक्ता (कुटकी), निशा (हल्दी) यास, कृष्णा (पिप्पली), चन्दन, त्रायन्ती, वत्स, भूनिम्ब (चिरायता), पटोल, अम्बुद (मुस्तक) एवं दारुहल्दी- इन सबको एक-एक अक्ष परिमाण में लें और चार प्रस्थ दूध लें। दूध में सब औषध-द्रव्यों को मिलाकर एक प्रस्थ घी भी मिलाएं; तदनन्तर पाकविधि से एक प्रस्थ घृत शेष रहने पर मात्रानुसार इसका सेवन करें। इस घृत से पाण्डुरोग, ज्वर, विस्फोट (फोड़े), अर्श (बवासीर) एवं रक्तपित्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

पाण्डुरोग-नाशक क्वाथ

फलत्रिकामृता-वासा-तिक्ता-भूनिम्ब-निम्बजः।
क्वाथः क्षौद्रयुतो हन्यात् पाण्डुरोगं सकामलम्।।८।।

त्रिफला, अमृता (गिलोय), वासा (अडूसा), तिक्ता (कुटकी), भूनिम्ब (चिरायता) एवं निम्ब (नीम) से बनाए क्वाथ में मधु मिलाकर पीने से कामला व पाण्डुरोग नष्ट हो जाते हैं।

गोमूत्र-हरीतकी योग, गोमूत्रभावित लोहभस्म योग

क्षीरभुङ् मूत्रसंयुक्तां पथ्यां पाण्ड्वामयी पिबेत्।
क्षीरेण लोहचूर्णं वा गोमूत्रेण सुभावितम्।।९।।

पाण्डुरोगी को चाहिए कि वह गोमूत्र के साथ पथ्या (हरड़) का सेवन करे तथा इसके सेवन-काल में केवल दूध ही भोजन के रूप में लेवे, इससे पाण्डुरोग नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार गोमूत्र से अच्छी प्रकार भावित लोहभस्म का दूध के साथ सेवन करने से भी पाण्डुरोग नष्ट हो जाता है।

त्रिफलादि योग

त्रिफलाग्न्यब्दजन्तुघ्नव्योषैर्लोहरजः समम्।
लीढं क्षौद्राज्यवत् पाण्डुकामलाशोफमेहनुत्।।१०।।

त्रिफला, चित्रक, मुस्तक, विडङ्ग, त्रिकटु एवं लोहभस्म को समान मात्रा में लें, इन सभी को मिला लें तथा इनमें घृत व मधु डालकर चाटें। इस योग से पाण्डु, कामला, शोफ एवं प्रमेह रोग नष्ट हो जाते हैं।

घोरपाण्डुनाशिनी पिण्डी

लोहचूर्णं तिलव्योषकोलैस्ताप्यसमैः समम्।
पिण्डी मधुकृता घोरपाण्डुशोफनिवारिणी।।११।।

तिल, त्रिकटु, कोल एवं ताप्य (स्वर्णमाक्षिक भस्म) व लोहभस्म-

इनको समान मात्रा में लें। इनमें मधु डालकर पिण्डी बनाएं। उचित मात्रा में इस पिण्डी का सेवन करें। यह पिण्डी घोर पाण्डु एवं शोफ को दूर कर देती है।

कामला का कारण, कामला में स्नेहन-विरेचन की उपयोगिता

जायते कामला पित्तात् पीतनेत्राङ्गलक्षणा।
कुम्भाह्वा सम्प्रवृद्धा सा तत्र स्निग्धस्य रेचनम्।।१२।।

पित्त से कामला रोग उत्पन्न होता है। इसमें नेत्र व अंग पीले हो जाते हैं। कामला जब अधिक बढ़ जाती है तो 'कुम्भा' (कुम्भकामला) कहलाती है। कामला एवं कुम्भा में रोगी को स्नेहित करने के उपरान्त विरेचन करवाना चाहिए।

कामलाहर घृत

पिष्टैर्बलानिशानिम्बत्रिफलामधुकैः समैः।
सक्षीरं माहिषं सर्पिः साधितं कामलापहम्।।१३।।

बला, निशा (हल्दी), निम्ब, त्रिफला, मधुक (मुलेठी)- इन सबको पीस लें और भैंस के दूध में मिला लें। इनमें भैंस का घृत मिलाकर सिद्ध करें। इस प्रकार सिद्ध किया हुआ घृत कामला रोग को नष्ट कर देता है।

कामलाहर अन्य योग

गुडूच्यास्त्रिफलाया वा दार्व्या निम्बस्य वा रसः।
प्रातर्माक्षिकसंयुक्तः शीलितः कामलापहः।।१४।।

गुडूची (गिलोय), त्रिफला, दार्वी (दारुहल्दी) अथवा निम्बपत्र- इनमें से किसी एक के रस को प्रात:काल मधु मिलाकर निरन्तर कुछ दिन तक पीने से कामला रोग नष्ट हो जाता है।

लोहचूर्णनिशायुग्मत्रिफलाकटुरोहिणीः।
प्रलिह्य मधुसर्पिर्भ्यां कामलावान् सुखी भवेत्।।१५।।

लोहभस्म, दोनों प्रकार की हल्दी, त्रिफला एवं कटुरोहिणी- इन सबके चूर्ण को जो व्यक्ति घृत एवं मधु के साथ चाटता है, वह कामला रोग से मुक्त होकर सुखी हो जाता है।

धात्रीलोहरजोव्योषनिशाक्षौद्राज्यशर्करा:।
लेहो निवारयत्याशु कामलामुद्धतामपि।।१६।।

आमलकी चूर्ण, लोहभस्म, त्रिकटु, हल्दी का चूर्ण, मधु, घृत एवं शर्करा- इन सबको मिलाकर बनाया गया लेह प्रचण्ड कामला को भी नष्ट कर देता है।

कल्याणक गुड

कृष्णे द्वे ग्रन्थिकं वह्निदीप्यकोषणसैन्धवम्।
क्रिमिघ्नत्रिफलाधान्यकोलाजाज्यजमोदिका:।।१७।।
पलिकानि त्रिवृच्चूर्णतैलयोश्च पलाष्टकम्।
रसप्रस्थत्रयं धात्र्या गुडस्यार्द्धशतं पचेत्।।१८।।
एतत् कल्याणकं पाण्डुकामलार्शोगरापहम्।
मेहकुष्ठज्वरश्वासग्रहणीजिद् रसायनम्।।१९।।

दोनों प्रकार की कृष्णा (छोटी पीपल, बड़ी पीपल), ग्रन्थिक (पिप्पलीमूल), चित्रक, दीप्यक, ऊषण (काली मिर्च), सैन्धव लवण, विडङ्ग, त्रिफला, धान्य, कोल (बेर), अजाजी (जीरा), अजमोदा (अजवायन)- इन्हें एक-एक पल की मात्रा में लें, निशोथ का चूर्ण एवं तेल आठ पल लें। धात्री (आंवले) का रस तीन प्रस्थ लें और गुड़ पचास पल लें। इन सभी को पकाएं। यह योग 'कल्याणक गुड' नाम से प्रसिद्ध है। यह पाण्डु, कामला, अर्श एवं गरविष (कृत्रिम विष) को नष्ट करता है तथा प्रमेह, कुष्ठ, ज्वर, श्वासरोग एवं ग्रहणी रोग को भी दूर करता है। इसके साथ ही यह रसायन भी है- अर्थात् रोगों का निवारण कर वृद्धावस्था के प्रभाव को मन्द करता है।

कामला-नाशक अञ्जन

अञ्जनं कामलार्तानां द्रोणपुष्पीरसः शुभम्।
निशागैरिकधात्रीणां चूर्णं वा सम्प्रकल्पयेत्।।२०।।

कामला रोग से पीड़ित व्यक्तियों के लिए द्रोणपुष्पी का रस उत्तम अञ्जन है- अर्थात् नेत्र में द्रोणपुष्पी रस डालने से कामला रोग नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार हल्दी, गैरिक एवं आंवले का चूर्ण भी कामला रोग को दूर करता है।

कामला-नाशक नस्य एवं अञ्जन

नस्यं कर्कोटमूलं स्याद् घ्रेयं वा जालिनीफलम्।
कामलार्त्तस्य वैडङ्गपिप्पल्यौ नावनाञ्जने।।२१।।

कर्कोटमूल (ककोड़ा की जड़) के रस का नस्य कामला रोग को दूर करता है। इसी प्रकार जालिनी फल (तोरी) का सूंघना- अर्थात् इसके रस का नस्य लेना भी कामला रोग को दूर करता है। विडङ्ग एवं पिप्पली के नस्य तथा अञ्जन से भी कामला रोग दूर हो जाता है।

प्रस्तुत श्लोक में 'वैडङ्ग' के स्थान पर 'वैरण्ड' पाठ उपलब्ध था, परन्तु यह उचित नहीं है। अतः इसके स्थान पर 'गदनिग्रह' (कायचिकित्सा, पाण्डुकामलादि-अधिकार- ७.५२) के आधार पर **वैडङ्ग** पाठ स्वीकृत किया है।

हलीमक की उत्पत्ति एवं लक्षण

हरितश्यावपीतत्वज्वरतृड्वह्निमान्द्यकृत्।
पाण्डौ स्यात् सादतन्द्राढ्यो वातपित्ताद्धलीमकः।।२२।।

पाण्डुरोग के चलते रहने पर जब शरीर हरित, कृष्ण एवं पीत वर्ण का हो जाता है और ज्वर, तृषा एवं अग्निमान्द्य रहने लगता है, इसके साथ ही अंगों के साद (दौर्बल्य) एवं तन्द्रा बनी रहती है, तब वात एवं पित्त के कारण उत्पन्न हुआ हलीमक रोग समझना चाहिए।

हलीमक-चिकित्साविधि

मधुरैरन्नपानैस्तं वातपित्तहरैर्जयेत्।
कामलापाण्डुरोगोक्तं क्रियां चात्र प्रयोजयेत्।।२३।।

मधुर एवं वातपित्तहर अन्नपान से कामला रोग को शान्त करना चाहिए तथा हलीमक में कामला एवं पाण्डुरोग के लिए वर्णित चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिए।

।। इति पाण्डुरोगकामलाध्यायश्चतुर्दश: समाप्त:।।

पञ्चदश अध्याय

हिक्का (हिचकी), श्वास (दमा)

हिक्का-श्वास निदान, हिक्का-श्वास के भेद

पित्तस्थानमतिक्रम्य वायुः कफपुरोजवः।
हिक्काश्वासौ करोत्यूर्ध्वं तौ च पञ्चविधौ पृथक्।।१।।

पित्तस्थान का अतिक्रमण कर वेग के साथ कफ का पूर्वगामी बना हुआ वात हिक्का एवं श्वास रोग को पैदा कर देता है। ये दोनों पाँच-पाँच प्रकार के होते हैं।

महाहिक्का महाशब्दवेगा स्यान्मर्मतापनी।
गम्भीराख्या च नाभ्युत्था ज्ञेया गम्भीरनादिनी।।२।।
यमला यमलैर्वेगैस्तीव्ररुङ्मूर्धकम्पिनी।
क्षुद्रहिक्काल्पवेगाच्च लक्ष्या जत्रुसमुत्थिता।।३।।
हिक्का स्यादन्नजात्यन्नपानपीडितमारुतात्।
आसां क्षुद्रान्नजे साध्ये शेषाः प्राणहृतो मताः।।४।।

हिक्का रोग का प्रथम भेद **महाहिक्का** है। यह ऊँचे शब्द के साथ तीव्र वेग वाली होती है तथा मर्मों को सन्तप्त करती है। दूसरे प्रकार की हिक्का **गम्भीरा** कहलाती है। यह नाभि से उठती है तथा गम्भीर नाद से युक्त होती है। हिक्का का तीसरा प्रकार **यमला** है। यह युगल वेगों के साथ उठती है तथा तीव्र पीड़ा पैदा करती हुई मूर्धा को कम्पित करती है। चतुर्थ भेद **क्षुद्र हिक्का** है। यह अल्प वेग वाली होती है तथा जत्रु भाग से उठती हुई प्रतीत होती है। पञ्चम भेद **अन्नजा हिक्का** है। यह अधिक अन्नपान से पीड़ित वात के कारण उत्पन्न होती है। उक्त पाँच प्रकार की हिक्काओं में क्षुद्र

हिक्का एवं अन्नजा हिक्का साध्य होती हैं, शेष हिक्काएं प्रबल होने पर प्राणहारिणी बन जाती हैं।

महाघोषो महाश्वाससञ्ज्ञो हृद्दृग्विवर्तनः।
ऊर्ध्वाह्वश्चोर्ध्वदृष्टिः स्यान्मोहहृत्पार्श्वशूलवान्।।५।।
विच्छिन्नं यः श्वसेदुच्छ्वासः छिन्नसञ्ज्ञकः।
तमकः पीनसोद्रकी समोहो दुर्दिने बली।।६।।
मन्दखेदोद्भवः श्वासः क्षुद्राख्यो निर्व्यथः स्मृतः।
क्षुद्रः साध्यस्तमो याप्यः शिष्टास्त्याज्याः प्रमाथिनः।।७।।

श्वास रोग पाँच प्रकार का होता है- प्रथम **महाश्वास** है, जिसमें श्वास लेते समय बहुत अधिक शब्द होता है, हृदय एवं आँखों के ऊपर दबाव पड़ता है तथा आँखों की पुतलियाँ भिन्न आकार की हो जाती हैं। दूसरा **ऊर्ध्वश्वास** कहलाता है। इसमें श्वास लेते समय दृष्टि ऊपर हो जाती है तथा हृदय एवं पार्श्वभाग में शूल होता है। तीसरा **छिन्नश्वास** कहलाता है। इसमें श्वास बीच में विच्छिन्न होता रहता है। चतुर्थ भेद **तमक** है, जिसमें पीनस (जुकाम) की प्रबलता रहती है। जुकाम की प्रबलता से श्वास बाधित-सा रहता है। यह मोह युक्त होता है तथा दुर्दिन (आकाश में मेघ छाने या वृष्टि होने के समय) में प्रबल हो जाता है। पाँचवा भेद **क्षुद्रश्वास** नाम से जाना जाता है। यह मन्द खेद- अर्थात् कम पीड़ा वाला होता है।

इनमें **क्षुद्रश्वास** साध्य होता है तथा **तमकश्वास** याप्य होता है। इनके अतिरिक्त अत्यधिक प्रमथन (व्याकुलता) कर देने वाले शेष श्वास रोग असाध्य होने से त्याज्य हैं- अर्थात् इनकी चिकित्सा निष्फल रहती है।

हिक्का-श्वास में तैलाभ्यंग, स्वेदन, शोधन एवं शमन की उपयोगिता

हिक्काश्वासातुरे पूर्वं तैलाक्ते स्वेद इष्यते।
ऊर्ध्वाधः शोधनं शक्ते दुर्बले शमनं मतम्।।८।।

हिक्का एवं श्वास रोग से पीड़ित व्यक्ति को अभ्यंग (तेल मालिश) करवाकर स्वेदन करना चाहिए। यदि रोगी बलवान् हो तो ऊर्ध्व और अधोभाग का शोधन वमन एवं विरेचन से करना चाहिए। यदि·रोंगी दुर्बल हो तो दोषशमन के उपाय करने चाहिएं।

हिक्का-नाशक अवलेह

कोलमज्जाञ्जनं लाजा तिक्ता काञ्चनगैरिकम्।
कृष्णा धात्री सिता शुण्ठी कासीसं दधिनाम च।।९।।
पाटल्या: सफलं पुष्पं कृष्णा खर्जूरमस्तकम्।
षडेते पादिका लेहा हिक्काघ्ना मधुसंयुता:।।१०।।

निम्न छह वर्गों की ओषधियों के मधु के साथ तैयार किया गए लेह हिक्का रोग को नष्ट कर देते हैं-

१. कोलमज्जा, अञ्जन एवं लाजा। २. तिक्ता एवं सोनागेरू।
३. पिप्पली, आंवला, शर्करा एवं शुण्ठी। ४. कासीस एवं कपित्थ फल।
५. पाटली का फल एवं पुष्प। ६. पिप्पली एवं खर्जूरमस्तक।

हिक्का-नाशक तीन नस्य

मधुकं मधुसंयुक्तं पिप्पली शर्करान्विता।
नागरं गुडसंयुक्तं हिक्काघ्नं नावनत्रयम्।।११।।

मधुयुक्त मुलेठी का चूर्ण, शर्करायुक्त पिप्पली का चूर्ण तथा गुड़युक्त शुण्ठी का चूर्ण- इन तीनों में से किसी का भी नावन- अर्थात् नस्य लेने से हिक्का रोग नष्ट हो जाता है।

हिक्का-नाशक तीन अन्य नस्य

स्तन्येन मक्षिकाविष्ठा नस्यं वालक्तकाम्बुना।
योज्यं हिक्का-निरासाय स्तन्यं वा चन्दनान्वितम्।।१२।।

स्तन्य (नारी के दूध) के साथ मक्खी की विष्ठा (मल) का नस्य लेने से हिचकी दूर हो जाती है। इसी प्रकार अलक्तक जल (लाक्षारस) का नस्य लेने से भी हिचकी दूर हो जाती है। चन्दनयुक्त स्तन्य (नारीदुग्ध) का नस्य भी हिक्का को दूर कर देता है।

हिक्का-नाशक धूमपान

नैपाल्या गोविषाणाद् वा कुष्ठात् सर्जरसस्य वा।
धूमं कुशस्य वा साज्यं पिबेद्धिक्कोपशान्तये।।१३।।

हिक्का रोग को दूर करने के लिए नैपाली (नेपाल में मिलने वाली मैनसिल) का धूमपान करना चाहिए। इसी प्रकार गोविषाण (गाय के सींग), कुष्ठ (कूठ) अथवा सर्जरस (राल) का धूमपान भी हिक्का को दूर कर देता है। घृत के साथ कुश का धूमपान करने से भी हिक्का दूर हो जाती है।

हिक्का-नाशक घृत

सैन्धवस्य पलं द्वाभ्यां पलाभ्यां सर्पिषः पिबेत्।
क्षारं चूर्णावकीर्णं वा हिक्कार्तेः सर्पिरुत्तमम्।।१४।।

दो पल घृत में एक पल सैन्धव लवण मिलाकर पीने से हिक्का रोग शान्त हो जाता है। इसी प्रकार यवक्षार अथवा चूर्णमिश्रित (चूना मिले) घृत का सेवन हिक्का रोग की उत्तम औषध है।

श्वास-कास-अपतन्त्र-नाशक अवलेह

दुरालभा कणा द्राक्षा शृङ्गी पथ्यावचूर्णिताः।
मधुसर्पिर्युतो लेहः श्वासकासापतन्त्रजित्।।१५।।

दुरालभा (धमासा), कणा (पिप्पली), द्राक्षा (मुनक्का), शृङ्गी एवं पथ्या (हरड़)- इनके चूर्ण का घृत और मधु के साथ लेहन करने से श्वास कास व अपतन्त्रक रोग नष्ट हो जाते हैं।

श्वास-नाशक अन्य योग

गुडोषणनिशारास्नाद्राक्षामागधिकाः समाः।
तैलेन चूर्णिता लीढास्तीव्रश्वासनुदः स्मृताः।।१६।।

गुड़, कालीमिर्च, हल्दी, रास्ना, द्राक्षा (मुनक्का) एवं मागधिका (पिप्पली)- इन सबको सम मात्रा में लेकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण का तिल के तैल के साथ लेहन करने से प्रचण्ड श्वास रोग भी नष्ट हो जाता है।

प्रलिह्यन् मधुसर्पिभ्यां भार्गीं मधुकसङ्गताम्।
पथ्यातिक्तकणायासयुक्तां वा श्वासनाशनीम्।।१७।।

मुलेठी युक्त भार्गी के चूर्ण को मधु व घृत के साथ चाटने से श्वास रोग नष्ट हो जाता है। पथ्या (हरड़), तिक्ता (कुटकी), कणा (पिप्पली) एवं यास से युक्त श्वासनाशिनी बूटी के चूर्ण का मधु एवं घृत के साथ लेहन करने से श्वास रोग नष्ट हो जाते हैं।

रम्भाकुन्दशिरीषाणां कुसुमं पिप्पलीयुतम्।
पिष्टं तण्डुलतोयेन पीत्वा श्वासमपोहति।।१८।।

केला, कुन्द व शिरीष के फूल को पिप्पली के साथ मिलाकर पीस लें; तदनन्तर तण्डुल-जल के साथ इसका सेवन करें। इससे श्वास रोग नष्ट हो जाता है।

हिक्का-श्वास में भार्गी-योग

हिक्काश्वासी पिबेद् भार्गीं सविश्वामुष्णवारिणा।
नागरं वा सिताभार्गीसौवर्चलसमन्वितम्।।१९।।

हिचकी और श्वास रोग से पीड़ित व्यक्ति को सोंठ मिलाकर भार्गी का चूर्ण उष्ण जल के साथ लेना चाहिए। इसी प्रकार सोंठ के साथ शर्करा, भार्गी व सौवर्चल का चूर्ण मिलाकर उष्ण जल के साथ सेवन करना चाहिए। इन योगों से हिक्का एवं श्वास रोग नष्ट हो जाते हैं।

हिक्का-श्वासहर चूर्ण

त्वगेलाम्बुशटीविश्वजीवन्तीपौष्कराझटा:।
चोरकागुरुकृष्णाब्दसुरसाश्च समांशिका:।।२०।।
चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यं शर्कराष्टगुणीकृतम्।
हिक्काश्वासहरं कासज्वरहृत्पार्श्वशूलनुत्।।२१।।

त्वक् (दालचीनी), एला (इलायची), अम्बु (उदीच्य), शटी (कपूर-कचरी), सोंठ, जीवन्ती, पौष्कर (पुष्करमूल), अझटा (भुई आंवला), चोरक, अगरु, पिप्पली एवं सुरसा (तुलसी)- इन्हें सम मात्रा में लेकर चूर्ण बना लें। चूर्ण से आठ गुणा मात्रा में शर्करा मिलाएं। यह योग हिक्का, श्वास, कास, ज्वर, हृदयशूल एवं पार्श्वशूल को नष्ट कर देता है।

हिक्का-निवारक मयूरपिच्छ एवं शल्यक-शकल का योग

दग्ध्वा पादं मयूरस्य नालं वाज्यमधूत्कटम्।
शकलं शल्यकोत्थं वा हिक्काश्वासौ लिहञ्जयेत्।।२२।।

मोर के चँन्दवे अथवा छड़ को जलाकर बनी भस्म का मधु के साथ सेवन करने से हिक्का व श्वास रोग नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार शल्यक (सेह) के शकल (कण्टकों की भस्म) का मधु के साथ सेवन करने से भी ये रोग नष्ट हो जाते हैं।

हिक्का-श्वास में मयूरपिच्छ भस्म का मधु के साथ सेवन प्रसिद्ध है। इस विषय में चक्रदत्त के टीकाकार निश्चलकर कुछ अन्य उद्धरण प्रस्तुत करते हुए सिद्धसार-संहिता के इस श्लोक को भिन्न पाठ के साथ उद्धृत करते हैं-

शिखिपिच्छभस्म पिप्पलीचूर्णसमं मधुना लेह्यमिति ख्यातम्। सुश्रुते तु- सर्पिर्मधुभ्यां शिखिपत्रजं वा। लिह्याद् भस्म पिप्पलीचूर्णयुक्तम्- इति। रविगुप्तेऽपि-

दग्ध्वा पादं मयूरस्य नालं वाज्यमधूत्कटम्- इति।

क्षारं वाऽप्यश्वगन्धाया लिह्यान्ना क्षौद्रसर्पिषा।

मयूरपादनालं वा शकलं शल्लकस्य च- इति।

नालमत्र जङ्घानालम्, पिच्छनालमिति जेज्जटश्चक्रश्च।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, हिक्का-श्वास चिकित्सा, श्लोक-७)

हिक्का-श्वास में दशमूलक्वाथ, देवदारुक्वाथ एवं मदिरा का उपयोग

तृषितो दशमूलस्य क्वाथं वा देवदारुणः।
मदिरां वा पिबेद् युक्त्या हिक्काश्वासप्रखेदितः।।२३।।

हिक्का श्वास से पीड़ित रोगी प्यास लगने पर दशमूल के क्वाथ का पान करें अथवा देवदारु के क्वाथ का पान करें। इस प्रकार युक्तिपूर्वक मात्रा में मदिरा का पान करने से भी हिक्का एवं श्वास रोग दूर हो जाते हैं।

हिक्का-श्वास में पथ्याहार

प्रविभज्य यथावस्थं हिक्काश्वासातुरे भिषक्।
कफवातहरं सर्वमन्नपानं प्रयोजयेत्।।२४।।

बुद्धिमान् वैद्य को चाहिए कि हिक्का एवं श्वास से पीड़ित रोगी की अवस्था को देखते हुए उसे कफवातहर अन्नपान का सेवन करावे।

।। इति हिक्काश्वासाध्यायः पञ्चदशः समाप्तः।।

षोडश अध्याय

कास

कास-निदान, कास रोग के भेद

कासः पञ्चविधो ज्ञेयः पृथग्दोषैः क्षतक्षयात्।
प्राणोदानादिसंरम्भात् कसनात् कास उच्यते।।१।।

कास (खांसी का रोग) पाँच प्रकार का होता है- वातज, पित्तज, कफज, क्षतजन्य एवं क्षयजन्य। इसमें प्राण एवं उदान आदि के संरम्भ (वेग) से कसन (खाँसी) आती है, अतः इसे कास कहा जाता है। इसमें वेगपूर्वक वायु की ऊर्ध्व गति होती है। 'कस गतौ' धातु से कास शब्द निष्पन्न होता है।

वातज एवं पित्तज कास के लक्षण

हृच्छिरःपार्श्वरुक्शुष्कस्वरभेदीरणात् स्मृतः।
तृड्दाहकटुपीतोष्णच्छर्दिलिङ्गी च पित्ततः।।२।।

वातजन्य कास हृदय, शिर एवं पार्श्व में पीड़ा युक्त होता है। इसमें स्वर शुष्क एवं भेदी (फटा हुआ-सा) होता है। पित्तज कास में तृषा एवं दाह होता है। इसमें कटु, पीत व उष्ण छर्दि (उल्टी) आती है।

कफज एवं क्षतज कास के लक्षण

स्यात् कफाद् गौरवोत्क्लेदपीनसारुचिलक्षणः।
सासृक्ष्ठीवनरुक् श्वासी क्षतजः स्यात् त्रिदोषजः।।३।।

कफजन्य कास में गौरव, उत्क्लेद, पीनस (जुकाम) एवं भोजन में अरुचि आदि लक्षण होते हैं। अतिमैथुन, अतिव्यायाम एवं शक्ति से अधिक किए जाने वाले अन्य साहसिक व श्रमसाध्य कार्य से उरःक्षत हो जाता

है। भाव यह है कि उक्त कार्यों में श्वास को रोककर अधिक वायु ग्रहण करनी पड़ती है। तब श्रम की अधिकता के कारण फुफ्फुसों (फेफड़ों) की कोशिकाएं क्षीण हो जाती हैं। इसे उर:क्षत या क्षत कहते हैं। इसमें पहले सूखी खाँसी आती है और पीछे रक्त भी आने लगता है। यह क्षतज कास होता है। अतिमैथुन या अतिश्रम आदि जो इसके कारण हैं, उनसे तीनों दोष कुपित हो जाते हैं; अत: यह त्रिदोषज होता है।

क्षयज कास के लक्षण, याप्य कास, असाध्य कास

पूयरक्तोद्गमी कास: क्षयज: स्यात् त्रिदोषज:।
तेषु याप्य: क्षतोद्भूत: क्षयजश्च न सिध्यति।।४।।

क्षतकास भी त्रिदोषज होता है। अतिमैथुन, असात्म्य भोजन एवं मल-मूत्र आदि के वेगों को रोकने से कुपित दोषों के कारण रस, रक्त आदि धातुओं का क्षय हो जाने के कारण यह कास होता है, इसमें खाँसी के साथ पूय एवं रक्त का वमन होता है। इस प्रकार कास के पाँच भेद होते हैं। इनमें क्षतज कास याप्य होता है तथा क्षयज कास असाध्य होता है। शेष की चिकित्सा की जा सकती है।

वातज कास की चिकित्सा- कासहर चूर्ण

चूर्णिता विश्वदु:स्पर्शाशृङ्गी-द्राक्षाशटीसिता:।
लीढ्वा तैलेन वातोत्थं कासं जयति दुस्तरम्।।५।।

शुण्ठी, दु:स्पर्शा (दुरालभा/धमासा), शृङ्गी, द्राक्षा (मुनक्का), शटी (कपूरकचरी) एवं शर्करा- इनका चूर्ण बनाकर तिल के तेल के साथ चाटने से वातजन्य प्रबल कास नष्ट हो जाता है।

अपराजित लेह

शटीशृङ्गीकणाभार्गीगुडवारिदयासकै:।
स तैलैर्वातकासघ्नो लेहोऽयमपराजित:।।६।।

शटी, शृङ्गी, कणा, भार्गी, गुड़, मुस्तक एवं यासक का चूर्ण बनाकर तेल के साथ चाटने से वातजन्य कास नष्ट हो जाता है। यह योग 'अपराजित लेह' के रूप में प्रसिद्ध है।

कास-हिक्का-श्वासहर लेह

कुनटी-सैन्धव-व्योष-विडङ्गामयहिङ्गुभिः।
लेहः साज्यमधुः कासहिक्काश्वासेषु पूजितः।।७।।

कुनटी (शोधित नेपाली मैनसिल), सैन्धव लवण, व्योष (त्रिकटु), विडङ्ग, आमय (कूठ) एवं हींग- इन सबके चूर्ण में घृत व मधु मिलाकर चाटने से कास, हिक्का एवं श्वास रोग नष्ट हो जाते हैं।

पित्तज कास के नाशक तीन लेह

पिप्पली शर्करावांशीलाजामलकगोस्तनाः।
मधुकं पिप्पलीमूलं मूर्वा द्राक्षा महौषधम्।।८।।
उपकुल्या सखर्जूरा तुका गोक्षुरकान्विता।
साज्यक्षौद्रास्त्रयो लेहाः श्लोकार्द्धैः पित्तकासिनाम्।।९।।

निम्न तीन वर्गों की ओषधियों के चूर्ण को घृत व मधु के साथ चाटने से पित्तजन्य कास नष्ट हो जाता है-

१. पिप्पली, शर्करा, वंशलोचन, लाजा, आंवला एवं मुनक्का।
२. मुलेठी, पिप्पलीमूल, मूर्वा, द्राक्षा (अंगूर) एवं सोंठ।
३. उपकुल्या (पिप्पली), खजूर, तुका (वंशलोचन) एवं गोखरू।

कफज कास के नाशक तीन लेह

भद्रमुस्ताभया धात्री पिप्पली तामलक्यपि।
अभया पिप्पली मुस्तं देवदारु महौषधम्।।१०।।
चित्रकं पिप्पलीमूलं पिप्पली गजपिप्पली।
त्रीन् लेहान् कफकासघ्नानेतान् विद्यान्मधुप्लुतान्।।११।।

निम्न तीन वर्गों की ओषधियों के चूर्ण को मधु मिलाकर पृथक्-पृथक् लेह बनाएं। इनमें से किसी एक के लेहन करने (चाटने) से कफजन्य कास नष्ट हो जाता है-

१. भद्रमुस्ता, अभया, धात्री, पिप्पली एवं तामलकी (भुई आंवला)।

२. अभया, पिप्पली, मुस्तक, देवदारु एवं सोंठ।

३. चित्रक, पिप्पलीमूल, पिप्पली एवं गजपिप्पली।

क्षतज एवं क्षयज कास के नाशक योग

मञ्जिष्ठाञ्जनमूर्वाग्निपाठाकृष्णानिशारजः।
क्षतक्षयजकासघ्नं ज्येष्ठपुष्परसोत्कटम्।।१२।।

मञ्जिष्ठा, रसाञ्जन, मूर्वा, चित्रक, पाठा, पिप्पली एवं हल्दी के चूर्ण को ज्येष्ठ पुष्परस (बड़ी मक्खी के मधु) के साथ मिलाकर सेवन करने से क्षतज एवं क्षयज कास नष्ट हो जाता है।

सर्वकासहर योग

देवदारु-बला-रास्ना-त्रिफला-व्योष-पद्मकैः।
सविडङ्गैः सितातुल्यैस्तच्चूर्णं पञ्चकासजित्।।१३।।

देवदारु, बला, रास्ना, त्रिफला, त्रिकटु, पद्मक (पद्माख) एवं विडङ्ग का चूर्ण बनाएं। इस चूर्ण के समान मात्रा में शर्करा मिलाएं। यह योग पाँच प्रकार के कास रोग को नष्ट कर देता है।

हरीतकी रसायन

शङ्खपुष्प्यात्मगुप्ताग्निदशमूलीशटीबलाः।
सकोलाभार्ग्यपामार्ग-पिप्पलीमूलपौष्कराः।।१४।।
द्विपलांशा हरीतक्यः शतमेकं यवाढकम्।
जलपञ्चाढके पक्त्वा क्वाथे गुडशतान्विताः।।१५।।

अभयास्ताः पचेत् तैलकृष्णाज्यकुडवैः पुनः।
मधुमानीयुतास्तस्मादद्यात्पथ्ये सकल्किते ।।१६।।
एतद् रसायनं सर्वकासश्वासक्षयापहम्।
ग्रहण्यरुचिहिक्काशोंज्वरहृद्रोगशोफजित्।।१७।।

शङ्खपुष्पी, आत्मगुप्ता (कौंच बीज), चित्रक, दशमूल (बिल्व, अरणी, सोनापाठा, गम्भारी, पाटला, बृहती, कण्टकारी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, गोखरू), शटी (कपूरकचरी), बला, कोला (गजपिप्पली), भार्गी, अपामार्ग, पिप्पलीमूल एवं पौष्कर (पुष्करमूल)- इन्हें दो-दो पल की मात्रा में लें। एक सौ हरीतकी (बड़ी हरड़) लें। एक आढक परिमाण में यव (जौ) लें। इन सबको पाँच आढक जल में पकाकर क्वाथ बनाएं। इसे छानकर पूर्वनिर्दिष्ट सौ हरीतकियां डाल दें; तदनन्तर इसमें एक कुडव तेल, एक कुडव घी तथा एक कुडव पिप्पली मिलाकर हरीतकियों को पुनः पकाएं। शीतल होने पर एक मानी (८ पल) मधु मिला लें। इस प्रकार तैयार किए गए इस योग में से प्रतिदिन २ हरीतकी एवं थोड़ा-सा अवलेह लेकर खाएं। यह रसायन सभी प्रकार के कास-श्वास एवं क्षयरोग को नष्ट कर देता है। इसके सेवन से ग्रहणी, अरुचि, हिक्का, अर्श, ज्वर, हृदयरोग एवं शोफ नष्ट हो जाते हैं। यह योग '**अगस्त्य हरीतकी रसायन**' नाम से '**अष्टांगहृदय**', चिकित्सा-स्थान (३.१२६-१३२) में भी उल्लिखित है।

सर्वकासहर घृत

घृतं रास्नाबलाव्योषश्वदंष्ट्राकल्कपाचितम्।
कण्टकारीरसे पानात् पञ्चकासनिषूदनम्।।१८।।

रास्ना, बला, व्योष (त्रिकटु) एवं श्वदंष्ट्रा (गोखरू) के कल्क के साथ कण्टकारी (बृहती) के रस में घृत पकाएं। इस घृत का पान करने से पाँचों प्रकार के कास नष्ट हो जाते हैं।

सर्वकास-नाशक धूमपान

शिलालेङ्गुदयष्ट्यब्दमांसी-धूमं पिबेत् त्र्यहम्।
गुडक्षीरानुपानाढ्यं सर्वकासनिवृत्तये।।१९।।

शिला (मैनसिल), अल (हरताल), इङ्गुद, मधुयष्टि, मुस्तक एवं जटामांसी का धूमपान तीन दिन तक करें। अनुपान के रूप में गुड़मिश्रित दुग्ध का सेवन करें। इस योग से सभी प्रकार के कास निवृत्त हो जाते हैं।

।। इति कासाध्याय: षोडश: समाप्त:।।

सप्तदश अध्याय

छर्दि-तृष्णा

छर्दि-निदान, छर्दि के भेद

दुष्टैर्दोषै: पृथक् सर्वैर्बीभत्सालोचनादिभि:।
छर्दय: पञ्च विज्ञेयास्तासां लक्षणमुच्यते ।।१।।

दूषित हुए तीनों दोषों द्वारा पृथक्-पृथक् छर्दि रोग उत्पन्न होता है। तीनों दोष एक साथ सम्मिलित रूप में भी इसे उत्पन्न करते हैं। बीभत्स (भयंकर या घृणित) दृश्य दिखने से भी छर्दि होती है। इस प्रकार छर्दि रोग के पाँच भेद होते हैं- वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज एवं बीभत्सादिदृश्य-जन्य।

वातज एवं पित्तज छर्दि के लक्षण

कृष्णफेनकषायाच्छशूलवेगवतीरणात्।
पैत्तिकी पीतरक्तोष्णहरिता दाहलक्षणा।।२।।

वातजन्य छर्दि में काले रंग के झाग से युक्त, कषाय रस वाला द्रव निकलता है। पित्तजन्य छर्दि में पीले, लाल और हरे रंग का उष्ण द्रव वाला छर्दन होता है। इसमें जलन भी रहती है।

कफज एवं सन्निपातज छर्दि के लक्षण

श्लेष्मजा पिच्छिलस्वादु शीत-सान्द्र-कफोद्भमा।
सर्वरूपान्विता ज्ञेया सन्निपातसमुत्थिता।।३।।

कफजन्य छर्दि पिच्छिल, स्वादु, शीतल एवं सान्द्र (गाढ़े) कफ वाली होती है। सन्निपात-जन्य छर्दि पूर्वनिर्दिष्ट सभी लक्षणों से युक्त होती है।

बीभत्स छर्दि के लक्षण एवं असाध्य छर्दिरोग की पहचान

पूत्यनिष्टमनस्तापा छर्दिर्बीभत्सजा मता।
सासृक् चन्द्रकिनी त्याज्या क्षीणस्योपद्रवान्विता।।४।।

बीभत्स आदि दृश्यों से होने वाली छर्दि दुर्गन्ध आदि के कारण अनिष्ट मनस्ताप करने वाली होती है। क्षीणकाय रोगी की रक्त एवं चन्द्रक चिह्न वाली छर्दि असाध्य होती है, अत: उसकी चिकित्सा निष्फल रहती है।

छर्दि में लंघन, विरेचन

आमाशयभवा: सर्वाश्छर्दयस्तासु लङ्घनम्।
पूर्वं वातान्वितां मुक्त्वा योज्यं पश्चाद् विरेचनम्।।५।।

सभी प्रकार का छर्दि रोग आमाशय से उत्पन्न होता है, अत: उसमें पहले लङ्घन करवाना चाहिए, परन्तु वातजन्य छर्दि में लङ्घन त्याज्य है। लङ्घन के अनन्तर विरेचन का प्रयोग करवाना चाहिए।

अभया-मधु योग एवं शोधन-शमन चिकित्सा

अभया मधुना लेह्या हृद्यं वान्यद् विरेचनम्।
वमनं बलिनि प्रोक्तं दुर्बले शमनं स्मृतम्।।६।।

छर्दि रोग में मधु के साथ अभया (हरड़) का चूर्ण चाटना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य हृदय को प्रिय लगने वाला छर्दि-शामक द्रव्य लेना चाहिए। बलवान् रोगी के लिए वमन एवं विरेचन का प्रयोग करवाना चाहिए। दुर्बल के प्रति दोषों का शमन करने वाले उपाय व उपचार करने चाहिए।

वातछर्दि में लवणघृत योग

ससैन्धवं पिबेत् सर्पिर्वातच्छर्दिनिवारणम्।
लवणत्रययुक्तेन संयुक्तं त्र्यूषणेन वा।।७।।

वातजन्य छर्दि का निवारण करने के लिए सैन्धव लवण युक्त घृत का पान करना चाहिए। इसी प्रकार सैन्धव, सौवर्चल एवं विड लवण इन तीन

से युक्त अथवा त्रिकटु से युक्त घृत का पान भी वातजन्य छर्दि को नष्ट कर देता है।

पित्तछर्दिहर योग

सोदीच्यं गैरिकं पेयं सेव्यं वा तण्डुलाम्बुना।
शीतं धात्रीरसाढ्यं वा पित्तच्छर्दिनिवृत्तये।।८।।

पित्तजन्य छर्दि को दूर करने के लिए उदीच्य (सुगन्धबाला) सहित गैरिक का पान करना चाहिए। इसी प्रकार तण्डुल-जल (तण्डुलोदक) के साथ सेव्य (उशीर/खस) के शीतल क्वाथ का पान करना चाहिए अथवा धात्रीरस युक्त खस का शीतल क्वाथ पीना चाहिए। इन योगों से पित्तजन्य छर्दि नष्ट हो जाती है।

श्लेष्मछर्दिहर योग

विडङ्गत्रिफलाविश्वचूर्णं मधुयुतं जयेत्।
क्रिमिघ्नप्लवशुण्ठीनामथवा श्लेष्मजां वमिम्।।९।।

मधु के साथ विडङ्ग, त्रिफला एवं शुण्ठी के चूर्ण का सेवन करने से कफजन्य छर्दि नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार विडङ्ग, प्लव (नागरमोथा) एवं शुण्ठी का चूर्ण मधु के साथ लेने से भी कफज छर्दि दूर हो जाती है।

त्रिदोषजछर्दिहर योग

श्रीफलस्य गुडूच्या वा कषायो मधुसंयुतः।
पेयश्छर्दित्रये शीतो मूर्वा वा तण्डुलाम्बुना।।१०।।

श्रीफल (बिल्व) अथवा गडूची के क्वाथ को शीतल कर मधु मिलाकर पीने से तीनों दोषों से उत्पन्न छर्दि नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार तण्डुल जल के साथ मूर्वा को पीसकर पीने से भी त्रिदोषजन्य छर्दि दूर हो जाती है।

छर्दिनाशक कुछ अन्य योग

कृष्णोषणशिलाचूर्णं लाजातुल्यं समाक्षिकम्।
कपित्थबीजपूर्णाम्बु-कल्कितं छर्दिनाशनम्।।११।।

पिप्पली, कालीमिर्च, शिला (शोधित मैनसिल) का चूर्ण बनाएं। इसके समान मात्रा में लाजा (खील) मिला लें। ऊपर से उचित मात्रा में मधु मिला लें; तदनन्तर इसका मधु के साथ सेवन करने से छर्दि रोग नष्ट हो जाता है।

कोलमज्जा कणा धात्री, लाजा विश्वं फलत्रिकम्।
श्यामाञ्जनाब्दकोलास्थि, मक्षिकाविट् सितायुता।।१२।।
कणोषणकपित्थाम्बु, त्वगेलापत्रकं समम्।
सक्षौद्राः पादिका लेहाः षडेते छर्दिनाशनाः।।१३।।

निम्न छह वर्गों में निर्दिष्ट औषधियों का मधु के साथ लेहन करने से छर्दि रोग नष्ट हो जाता है-

१. कोलमज्जा (बेर की गुठली के अन्दर की गिरी), पिप्पली, आंवला।
२. लाजा (खील), सोंठ, त्रिफला।
३. श्यामा (काली निशोथ), रसाञ्जन, मुस्तक, कोलस्थि (बेर की गुठली)।
४. मक्षिकाविट् (मधुमक्खी का मल/मोम) व शर्करा।
५. पिप्पली, कालीमिर्च, कपित्थरस (कैंथ का रस)।
६. दालचीनी, इलायची, तेजपत्र।

जीर्णछर्दि-चिकित्सा

पवनघ्नी चिरोत्थासु प्रयोज्या छर्दिषु क्रिया।
कल्याणक-घृतक्षीरवृष्यमांसरसादिभिः।।१४।।

पुरानी छर्दि में 'कल्याणक घृत', दूध आदि वृष्य पदार्थ एवं मांसरस आदि के प्रयोग द्वारा वातनाशक क्रिया करनी चाहिए। कल्याणक घृत बनाने की विधि अध्याय- ५, ज्वरप्रकरण, श्लोक-८६-८९ में वर्णित है।

तृष्णारोग (अति प्यास) का निदान एवं भेद

तृष्णापि पञ्चधा दोषैरामतश्च क्षतक्षयात्।
कारणं वातपित्तं हि तत्रातस्तन्निवारयेत्।।१५।।

दूषित हुए तीनों दोषों द्वारा पृथक्-पृथक् तृष्णा रोग उत्पन्न होता है। आम दोष एवं क्षतक्षय के कारण भी तृष्णा रोग उत्पन्न होता है। इस प्रकार इसके पाँच भेद होते हैं- वातज, पित्तज व कफज तृष्णा, आमदोषज एवं क्षतक्षयज तृष्णा।

तृष्णाहर योग

समध्वैन्द्रं पिबेत्तोयमन्यद् वा तृट्प्रणाशनम्।
तप्तलोष्टोदकं वापि लाजाक्षौद्रसितायुतम्।।१६।।

मधु मिलाकर ऐन्द्र जल (वर्षा का पानी) पीना चाहिए अथवा अन्य पिपासा शमन करने वाले उत्तम पेय लेने चाहिए। इसी प्रकार गर्म पत्थर बुझाया हुआ पानी अथवा लाजा, मधु एवं शर्करा युक्त पानी पीना चाहिए। इन योगों से तृष्णा रोग शान्त हो जाता है।

तृष्णाहर लेह

सिता केसरं सक्षौद्रं कृष्णाजीरकदाडिमैः।
लेहो वा तृड्जयी कृष्णा-मधु-क्षीर-द्रुमाङ्कुरैः।।१७।।

शर्करा, केसर, मधु, पिप्पली, जीरक एवं दाडिम (अनार) से बनाया लेह तृष्णा रोग को शान्त कर देता है। इसी प्रकार पिप्पली, मधु एवं क्षीरद्रुम (वटवृक्ष) के अंकुरों से बनाया गया लेह भी तृष्णा रोग का शमन कर देता है।

तृष्णाहारी गुडिका

वट-शुङ्गामय-क्षौद्र-लाजा-नीलोत्पलैः कृता।
गुडिका वदने न्यस्ता क्षिप्रं तृष्णामुदस्यति।।१८।।

बड़ की शुङ्गा (कोपल), आमय (कूठ), मधु, लाजा एवं नीलकमल को पीसकर गुटिका बनाकर मुख में रखें। यह शीघ्र ही तृष्णा को दूर कर देती है।

दारुणा तृष्णा को नष्ट करने वाला नस्य

गोस्तनेक्षुरस-क्षीर-यष्टीमधु-मधूत्पलैः।
नियतं नस्ततः पिष्टैस्तृष्णा शाम्यति दारुणा।।१९।।

गोस्तन (मुनक्का), इक्षुरस, क्षीर (दूध), यष्टिमधु (मुलेठी), मधु एवं कमल- इन सबको पीसकर नस्य लेने से भयङ्कर तृष्णा भी शान्त हो जाती है।

तृष्णाहर गण्डूष

क्षीरेक्षुरस-मार्द्वीक-क्षौद्र-सीधु-गुडोदकैः।
वृक्षाम्लाम्लैश्च गण्डूषास्तालु-शोष-प्रणाशनाः।।२०।।

दूध, ईख का रस, मुनक्का, मधु, सीधु, गुड़ का शर्बत, वृक्षाम्ल एवं अनार आदि का अम्लरस- इन द्रव्यों के गण्डूष (कुल्ले लेना) तालुशोष को दूर कर देते हैं- तृष्णा का शमन कर देते हैं।

।। इति छर्दितृष्णाध्यायः सप्तदशः समाप्तः।।

अष्टादश अध्याय

मूत्रकृच्छ्र, उपदंश, वृद्धि

मूत्रकृच्छ्र- निदान भेद एवं लक्षण

अष्टौ स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि तीक्ष्णाध्यशनखेदतः।
सशूलं वातिकं कृच्छ्रं पित्तजं दाहसंयुतम्।।१।।

तीक्ष्ण पदार्थों के सेवन, अध्यशन एवं खेद (अतिश्रम/आयास) के कारण आठ प्रकार का मूत्रकृच्छ्र रोग हो जाता है। वातजन्य मूत्रकृच्छ्र शूलयुक्त होता है। पित्तजन्य मूत्रकृच्छ्र दाहयुक्त होता है।

कफाद् गौरवशोफाढ्यं कष्टं स्यात् सर्वदोषजम्।
रक्तजं शोणितस्रावि शुक्रजं तन्निरोधतः।।२।।

कफजन्य मूत्रकृच्छ्र गौरव एवं शोफ से युक्त होता है। सर्वदोषज मूत्रकृच्छ्र अधिक कष्टदायक होता है। रक्तज मूत्रकृच्छ्र में खून का स्राव होता है। शुक्रज मूत्रकृच्छ्र शुक्र वेग के अवरोध के कारण होता है।

वातसंवर्तितं शुक्रं कफं वाश्मवदश्मरी।
तीव्ररुग् वस्तिमार्गे स्याद् भिन्नाश्मा शर्करा स्मृता।।३।।

वात द्वारा संवर्तित (पिण्डीभूत एवं सुखाया गया) शुक्र अथवा कफ अश्म (पत्थर) के समान कठोर होकर अश्मरी का रूप धारण कर लेता है। यह वस्ति मार्ग में तीव्र वेदना पैदा कर देता है। अश्मरी जब टूट जाती है तो वह शर्करा (छोटे-छोटे टुकड़ों/कंकड़ों) का रूप धारण कर लेती है।

वातज मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा

अभ्यङ्ग-स्नेहन-स्वेद-निरूहोत्तरवस्तयः।
कुशस्थिरादिसंसिद्धा वातकृच्छ्रे रसा मताः।।४।।

अभ्यंग, स्नेहन, स्वेदन, निरूहवस्ति, उत्तरवस्ति तथा कुशादि गण और स्थिरादि गण के द्रव्यों द्वारा सिद्ध किए गए रस वातजन्य मूत्रकृच्छ्र में हितकर होते हैं। स्थिरादि गण का विवरण प्रस्तुत ग्रन्थ में द्वितीय अध्याय के प्रथम व द्वितीय श्लोक में देखें। कुशादि गण का विवरण प्रस्तुत ग्रंन्थ में द्वितीय अध्याय के उनचासवें श्लोक में देखें।

पित्तरक्तज मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा

पित्तशोणितजे दार्वीं मधु धात्र्यम्बुना पिबेत्।
एर्वारुबीजयष्ट्याह्वदार्वीं वा तण्डुलाम्भसा।।५।।

पित्तशोणितज मूत्रकृच्छ्र में दार्वी (दारुहल्दी) एवं मधु को आमलकी रस के साथ पीना चाहिए अथवा एर्वारुबीज (खरबूजे के बीज), मधुयष्टी (मुलेठी) एवं दार्वी को तण्डुल-जल के साथ पीना चाहिए।

कफज मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा

मूत्रेण सुरया वापि कदलीस्वरसेन वा।
कफकृच्छ्रविनाशाय श्लक्ष्णपिष्टां त्रुटिं पिबेत्।।६।।

कफजन्य मूत्रकृच्छ्र का नाश करने के लिए गोमूत्र, सुरा अथवा कदली स्वरस के साथ महीन पिसी हुई इलायची का सेवन करना चाहिए।

शुक्रज मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा

लेहः शुक्रविबन्धोत्थे शिलाजतु समाक्षिकम्।
वृष्यैर्बृंहितधातोश्च विधेया प्रमदोत्तमा।।७।।

शुक्रावरोध-जन्य मूत्रकृच्छ्र में मधुयुक्त शिलाजीत का लेहन करना चाहिए। वृष्य योगों के सेवन से प्रवृद्ध शुक्र वाले व्यक्ति के लिए स्त्रीसंग

विधान किया जाता है, जिससे शुक्रावरोध-जन्य मूत्रकृच्छ्र न हो।

मूत्रकृच्छ्रहर योग

कुसुम्भं मूत्रकृच्छ्रेषु सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ।
शिलाजत्वश्मभित्कृष्णात्रुटीनां वा पिबेद्रज:।।८।।

मधुमिश्रित जल के साथ कुसुम्भ का सेवन करना सभी प्रकार के मूत्रकृच्छ्रों में हितकर होता है। इसी प्रकार शिलाजीत, अश्मभिद् (पाषाणभेद), पिप्पली एवं इलायची का चूर्ण लेना चाहिए।

द्राक्षासितोत्पलकल्कं कृच्छ्रघ्नं मस्तुना युतम्।
पिबेद् वा कामत: क्षीरमुष्णं गुडसमन्वितम्।।९।।

द्राक्षा (मुनक्का), शर्करा एवं उत्पल (कमल) के कल्क को मस्तु के साथ पीना चाहिए। इसी प्रकार जी भरकर गुड़ मिले उष्ण दूध का पान करना चाहिए। इन योगों से मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है।

अश्मरीनाशक विविध योग

शर्करा सयवक्षारा सर्वकृच्छ्रप्रभेदनी ।
मूलं कपोतवङ्काया अश्मरीघ्नं सुरादिभि:।।१०।।

यवक्षार सहित शर्करा का प्रयोग सभी प्रकार के मूत्रकृच्छ्र को नष्ट कर देता है। सुरा आदि के साथ कपोतवंका (हुरहुर) के मूल का सेवन भी अश्मरी को नष्ट कर देता है।

क्वाथश्च शिग्रुमूलोत्थ: कदुष्णोऽश्मरिपाटन:।
श्वदंष्ट्रैरण्डकौन्त्येलायष्टीकृष्णाश्मभेदिना।।११।।
क्वाथेनाश्मजतु क्षिप्रं शर्कराश्मविबन्धजित्।
पिबेद् वरुणमूलत्वक्-क्वाथं वा कल्कसंयुतम्।।१२।।

शिग्रुमूल का क्वाथ कदुष्ण (थोड़ा गर्म) रूप में पीने से अश्मरी को

नष्ट कर देता है। श्वदंष्ट्रा, एरण्ड, कौन्ती (रेणुकाबीज), एला, मधुयष्टी, पिप्पली एवं अश्मभेदी (पाषाणभेद) के क्वाथ के साथ शिलाजतु का सेवन करने से शर्करा एवं अश्म की रुकावट नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार शर्करा या अश्मरी को नष्ट करने के लिए वरुणमूल की त्वचा का क्वाथ कल्क सहित पीना चाहिए- अर्थात् पीते समय क्वाथ में पड़ी पिसी हुई त्वक् का भी पान कर लेना चाहिए।

शृङ्गवेरयवक्षारपथ्याकालीयकान्वितः।
दधिमण्डो भिनत्त्युग्रामश्मरीमाशु पानतः।।१३।।

शृङ्गवेर (अदरक), यवक्षार, पथ्या (हरड़) एवं कालीयक (पीत चन्दन) से युक्त दधिमण्डक का पान करने से उग्र अश्मरी भी शीघ्र नष्ट हो जाती है।

अश्मरी एवं मूत्रकृच्छ्र में वीरतरादिगण की उपयोगिता

सर्वथा सम्प्रयोक्तव्यो गणो वीरतरादिकः।
शल्यवित् तामशाम्यन्तीं प्रत्याख्याय समुद्धरेत्।।१४।।

अश्मरी एवं मूत्रकृच्छ्र के निवारण के लिए वीरतरादिगण (अध्याय-२, श्लोक २९-३० में वर्णित) का प्रयोग मुख्यरूप से करना चाहिए। औषध-प्रयोग से असाध्य बनी अश्मरी की जानकारी रोगी और उसके बन्धुजनों को देकर शल्यवित् (सर्जरी स्पेशलिस्ट) वैद्य द्वारा शल्यक्रिया से अश्मरी को बाहर निकाल देना चाहिए।

उपदंश का निदान स्वरूप एवं भेद

नखदन्तक्षतायास-कुयोनि-गमनादिभिः।
उपदंशो ध्वजशोफः स दोषैः पञ्चधा स्मृतः।।१५।।

नख (नाखून) एवं दन्त (दाँत) आदि के क्षत से आयास के कारण तथा कुत्सित-योनिगमन आदि कारणों से उपदंश रोग हो जाता है। इसमें लिङ्ग के ऊपर सूजन आ जाती है। यह पाँच प्रकार का होता है।

वातज एवं पित्तज उपदंश के लक्षण

त्वक्स्फोटनः सरुक् स्तम्भः श्यावरूक्षोऽनिलात्मकः।
दाहपाकयुतः पित्तात् कण्डूमान् कठिनः कफात्।।१६।।

वातजन्य उपदंश में त्वचा में स्फोटन (फटना), पीड़ा, स्तब्धता, (जकड़न), कालापन एवं रूक्षता होती है। पित्तजन्य उपदंश जलन एवं पाक से युक्त होता है तथा कफजन्य उपदंश खुजली व कठोरता से युक्त होता है।

रक्तज एवं त्रिदोषज उपदंश के लक्षण

रक्तजो रक्तनिष्यन्दी कृष्णस्फोटोग्रदाहवान्।
त्रिदोषः सर्वरूपः स्यात् क्रिमिलो लिङ्गशातनः ।।१७।।

रक्तज उपदंश में रक्तस्राव होता है। इसमें कृष्णस्फोट (काला फोड़ा) एवं तीव्र जलन होती है। त्रिदोषज उपदंश में पूर्वोक्त सभी लक्षण दिखते हैं। कृमियुक्त उपदंश लिङ्ग को नष्ट कर देता है।

उपदंश में सिरावेध, जलौका-प्रयोग एवं शोधन

स्निग्धस्विन्नस्य तेष्वादौ ध्वजमध्ये सिरां व्यधेत्।
जलौकपातनं वा स्यादूर्ध्वाधः शोधनं तथा।।१८।।

सभी प्रकार के उपदंशों में पहले स्निग्ध व स्विन्न रोगी के लिङ्ग की मध्यवर्ती शिरा का वेधन करना चाहिए अथवा जलौका (जोंक) के प्रयोग द्वारा दूषित रक्त का निस्सारण करना चाहिए। वमन-विरेचन द्वारा भी रोगी का शोधन करना चाहिए।

वातज-उपदंशहर योग

प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वसरलागुरुदारुभिः।
सरास्ना-कुष्ठ-वृश्चीवैर्वातिके लेपसेचने।।१९।।

वातजन्य उपदंश में प्रपौण्डरीक, मधुयष्टि (मुलेठी), सरल (चीड़), अगरु (अगर), देवदारु, रास्ना, कूठ एवं वृश्चीव (बिच्छू बूटी) द्वारा लेपन व

सेचन करना चाहिए।

पित्तज-उपदंशहर योग

अञ्जनोत्पलमञ्जिष्ठाचन्दनोशीरगैरिकैः।
सयष्टीपद्मकैर्लेपः पैत्ते क्षीरादि चोक्षणम्।।२०।।

पित्तजन्य उपदंश में अञ्जन (रसाञ्जन), उत्पल (कमल), मञ्जिष्ठा, चन्दन, उशीर, गैरिक, मधुयष्टि एवं पद्मक (पद्माख) से लेप करना चाहिए तथा दूध आदि से प्रोक्षण (सेचन) करना चाहिए।

कफज-उपदंशहर योग

धवाश्वकर्णसालानां त्वग्भिर्लेपः कफोत्थिते।
आरग्वधादिभिः क्वाथः परिषेकः प्रशस्यते।।२१।।

कफजन्य उपदंश में धव, अश्वकर्ण एवं साल वृक्ष की छाल को पीसकर लेपन करना चाहिए। इसमें आरग्वधादि गण के क्वाथ से परिषेक (सेचन) करना हितकर होता है। आरग्वधादि गण का विवरण अध्याय-२, श्लोक ११-१२ में देखें।

पाकयुक्त उपदंश में शस्त्रक्रिया एवं व्रणतुल्य चिकित्सा

पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरो हि सः।
शस्त्रकर्माशु पक्वे स्याद् व्रणवच्च परिक्रमः।।२२।।

उपदंश में पाक होने (व्रण के पकने) से बचाव रखना चाहिए; क्योंकि वह शिश्न (लिंग) को नष्ट कर देता है। उपदंश में लिंग का पाक होने पर शीघ्र ही शस्त्रकर्म (शल्यक्रिया/सर्जरी) करना चाहिए तथा व्रण के समान चिकित्सा करनी चाहिए।

उपदंश में व्रणरोपण योग

कुमुदोत्पलकह्लारपङ्कजानि प्ररोहणम्।
मषी वान्तः प्रदग्धायास्त्रिफलाया घृतान्विता।।२३।।

कुमुद, उत्पल (नीलकमल), कह्लार (रक्तकमल) एवं पङ्कज (कमल)- इनका प्रयोग करने से व्रणरोपण होता है अथवा अन्त:प्रदग्ध (पुटपाक विधि से जलाकर तैयार की गई) त्रिफला की घृतमिश्रित मषी का प्रयोग करना चाहिए।

सर्वविध लिंगरोगों में हितकर लेप

रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया वा समन्वितम्।
सक्षौद्रं लेपनं योज्यं सर्वलिङ्गगदापहम्।।२४।।

शिरीष अथवा पथ्या (हरड़) से युक्त रसाञ्जन का मधु के साथ लेपन करना चाहिए। यह सभी लिंगरोगों को नष्ट करता है।

उपदंश की साध्यासाध्यता

बलाबलं परिच्छिद्य दोषाणां सन्निवारणैः।
उपदंशद्वयं शेषं प्रत्याख्याय समाचरेत्।।२५।।

वैद्य को चाहिए कि दोषों के बलाबल का निश्चय कर चिकित्सा क्रम के द्वारा पूर्व वर्णित से शेष रहे दो प्रकार के उपदंश (रक्तज व त्रिदोषज) का प्रत्याख्याय उपचार करें- अर्थात् ठीक होने की जिम्मेदारी न लेते हुए चिकित्सा करें।

वृद्धि (अण्डकोषों का बढ़ना)

वृद्धि- निदान, लक्षण व भेद

वृद्धिः सप्तविधा दोषैः फलकोशप्रदूषणात्।
वातात् तु पूर्णवस्त्याभा पित्तेनोदुम्बरोपमा।।२६।।
कफेन कठिना वृत्ता रक्तजा पित्तलिङ्गिनी।
मेदसा महती मृद्वी मूत्रजा दृतिवत् स्मृता।।२७।।

वृषण (अण्डकोष) के फलकोषों के दूषित होने से उनकी सात प्रकार से वृद्धि होती है- वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, मेदज, मूत्रज एवं आन्त्रज।

वातजन्य वृद्धि भरी हुई वस्ति (थैली) के समान दिखती है। पित्तजन्य वृद्धि गूलर के फल जैसी दिखती है। कफजन्य वृद्धि कठोर एवं गोलाई लिए होती है। रक्तज वृद्धि में पित्तज वृद्धि जैसे ही लक्षण दिखाई देते हैं। मेदोजन्य वृद्धि कोमल होती है। मूत्रज वृद्धि दृति (मशक) के समान दिखाई देती है।

असाध्य वृद्धि

वंक्षणासङ्गिनी वाताद् द्विगुणान्त्रभवा क्रमात्।
आध्मातवस्तिवद् दीर्घा सान्त्रवृद्धिर्न सिध्यति।।२८।।

वातजन्य वृद्धि वंक्षण से सम्बद्ध होती है। यही क्रमशः बढ़ने पर द्विगुण हो जाती है तथा आन्त्रजा वृद्धि (आँत उतरना) कहलाती है। फूले हुए थैले जैसी बड़ी यह आन्त्रजा वृद्धि असाध्य होती है।

वातज वृद्धि की चिकित्सा

स्नेहस्वेदविरेकादिर्वातवृद्धौ क्रिया मता।
क्षीरेणैरण्डजं तैलं पातव्यं च यथाबलम्।।२९।।

वातज वृद्धि में स्नेहन, स्वेदन एवं विरेचन आदि क्रिया करनी चाहिए अथवा बल के अनुसार दूध के साथ एरण्ड का तेल पीना चाहिए।

पित्तज एवं रक्तज वृद्धि की चिकित्सा

जलौकाभिर्हरेद् रक्तं पित्तरक्तसमुत्थयोः।
शीताः प्रदेहसेकाश्च प्रयोज्याः पित्तनाशनाः।।३०।।

पित्तज एवं रक्तज वृद्धि में जलौका (जोंक) द्वारा रक्तहरण करवाना चाहिए तथा पित्त का शमन करने वाले शीतल लेप एवं परिषेक (सेचन) करने चाहिए।

कफज वृद्धि की चिकित्सा

कफजं मूत्रसम्पिष्टैरुष्णवीर्यैः प्रलेपयेत्।
पातव्यो मूत्रसंयुक्तः कषायः पीतदारुणः।।३१।।

कफज वृद्धि से ग्रस्त वृषण (अण्डकोष) के ऊपर गोमूत्र के साथ पिसे हुए उष्णवीर्य पदार्थों से लेपन करना चाहिए तथा पीतदारु (हल्दी) के क्वाथ में गोमूत्र मिलाकर पीना चाहिए।

मेदोज वृद्धि की चिकित्सा

मेदोवृद्धौ भवेत्स्वेदः सुरसादिश्च लेपनम्।
स्रावयेन्मूत्रजां स्विन्नां विद्धवाधः सीवनीं त्यजन्।।३२।।

मेदोजन्य वृद्धि में स्वेदन करवाना चाहिए तथा सुरसा (तुलसी) आदि का लेपन करना चाहिए। मूत्रज वृद्धि में स्वेदन पूर्वक सीवनी को छोड़कर उसके नीचे के भाग में सुश्रुतनिर्दिष्ट 'व्रीहिमुख' नामक शस्त्र से वेधन कर अन्दर भरे मूत्र जैसे स्राव को निकाल देवे। सुश्रुत में इसका उल्लेख इस प्रकार है-

सेवन्याः पार्श्वतोऽधस्ताद् विध्येद् व्रीहिमुखेन तु।
अथात्र द्विमुखीं नाडीं दत्वा विस्रावयेद् भिषक्।। (सु.चि.-१९.१९)

वृद्धि में दाह, वातनिग्रह एवं व्रणतुल्य चिकित्सा

अन्त्रवृद्धाववृद्धायां दाहो वातविनिग्रहः।
विदग्धासु च सर्वासु योज्यं कर्म व्रणाश्रयम्।।३३।।

अन्त्रजन्य वृद्धि के बहुत बढ़ने से पहले ही दाह का प्रयोग एवं वात का निग्रह (नियन्त्रण) करना चाहिए। सभी के दग्ध कर दिए जाने पर व्रणाश्रय कर्म का प्रयोग करना चाहिए- अर्थात् व्रण जैसी चिकित्सा करनी चाहिए।

।। इति मूत्रकृच्छ्राध्यायोऽष्टादशः समाप्तः ।।

एकोनविंश अध्याय

उदावर्त्त, शूल, हृद्रोग

उदावर्त्त का निदान

क्रुद्धः पक्वाशयेऽपानो विट्शोषावर्त्तनो बली।
ऊर्ध्वगोऽधःख-संरोधी ह्युदावर्त्तकरः स्मृतः।।१।।

पक्वाशय में कुपित हुआ बली 'अपान' नामक वायु मल को सुखा देता है। नीचे के छिद्र (मलद्वार) को अवरुद्ध कर घूमता हुआ ऊर्ध्वगामी बन जाता है। इस प्रकार वह उदावर्त्त रोग को पैदा करता है।

उदावर्त्त के लक्षण

हृत्कुक्षिपार्श्वरुग्वस्तिशोफाध्मानगलग्रहाः।
ज्वरच्छर्द्यान्ध्यबाधिर्यतृष्णाद्यास्तत्कृता गदाः।।२।।

हृदय, कुक्षि व पार्श्व भागों में पीड़ा, वस्ति में शोफ, आध्मान, गलग्रह, ज्वर, छर्दि, अन्धता, बधिरता एवं तृष्णा आदि रोग उदावर्त्त के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हो जाते हैं।

उदावर्त्त की आरम्भिक चिकित्सा

उदावर्तिनमभ्यक्त-स्विन्नगात्रमुपाचरेत्।
वर्तिकास्थापनस्नेह-वस्तिरेचनकर्मणा।। ३ ।।

अभ्यङ्ग एवं स्वेदन करवाने के उपरान्त उदावर्त्त रोगी की चिकित्सा वर्तिकास्थापन, स्नेहवस्ति एवं विरेचन कर्म द्वारा करनी चाहिए।

उदावर्त्ती के लिए हितकर आनाहशूलहरी वर्त्ति

राठधूमविडव्योषगुडमूत्रविपाचिता।
गुदेऽङ्गुष्ठसमा वर्तिर्निधेयानाहशूलनुत्॥४॥

राठ (मदनफल), धूम (शिलारस), विड (विड लवण), व्योष (त्रिकटु), गुड़ एवं गोमूत्र में पकाई गई अङ्गुष्ठ परिमाण वाली वर्ति उदावर्त्त रोगी की गुदा में रखनी चाहिए। इससे आनाह एवं शूल दूर हो जाते हैं।

उदावर्त्तहर चूर्ण

रामठोग्रामयस्वर्जिविडभागा द्विरुत्तराः।
चूर्णमुष्णाम्बुनानाहशूलहृद्रोगगुल्मजित्॥५॥

हींग, उग्रा (वचा), आमय (कूठ), स्वर्जिकाक्षार (विड लवण), विड- इनको उत्तरोत्तर द्विगुण मात्रा में लें- अर्थात् हींग से द्विगुण उग्रा (वचा); उससे द्विगुण आमय (कूठ), उससे द्विगुण स्वर्जिकाक्षार और उससे भी द्विगुण विड लवण की मात्रा लें। इन सबका चूर्ण बनाकर उष्ण जल के साथ सेवन करने से अनाह, शूल, हृद्रोग एवं गुल्मरोग नष्ट हो जाते हैं।

उदावर्त्तहरी गुटिका

त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विचतुःपञ्चभागिकाः।
गुडिका गुडतुल्यास्ता विड्विबन्धगदापहाः॥६॥

त्रिवृत् (निशोथ), कृष्णा (पिप्पली) तथा हरीतकी को क्रमशः दो, चार व पाँच भाग में लें। इन सबके समान परिमाण में गुड़ मिलाकर गुटिका बनाएं। यह विड्विबन्ध (उदावर्त्त) रोग को नष्ट कर देती है।

उदावर्त्त में हितकर आहार एवं वस्तियाँ

वात्यं क्षीररसैः सेव्यमन्यद् यच्चानुलोमनम्।
पित्तश्लेष्मानुबन्धे च तद्धिता वस्तयो मताः॥७॥

वात में हितकारी द्रव्य का क्षीर एवं रस के साथ सेवन करना चाहिए। इसी प्रकार अन्य वातानुलोमन द्रव्यों का भी सेवन करना चाहिए। पित्त व श्लेष्मजन्य उदावर्त्त में ऐसी वस्तियाँ देनी चाहिएं, जो पित्त व श्लेष्म के विकार को दूर करें।

शूल

उदावर्त्तजन्य शूल का निदान एवं भेद

वाताद्वस्तौ भवेच्छूलं पित्तान्नाभौ विदाहि च।
कफाद्धृदि सहृल्लासं सर्वरूपात्मकं त्यजेत्।।८।।

वातजन्य उदावर्त्त में वस्ति के अन्दर शूल होता है। पित्तजन्य उदावर्त्त में नाभि में जलन के साथ शूल होता है। कफजन्य उदावर्त्त में हृल्लास सहित हृदय में शूल होता है। जिसमें ये तीनों रूप दिखें, ऐसे उदावर्त्त को असाध्य मानते हुए छोड़ देना चाहिए- अर्थात् उसकी चिकित्सा निष्फल रहती है।

वातशूलहर योग

यवानी हिङ्गुसिन्धूत्थक्षारसौवर्चलाभयाः।
सुरामण्डेन पातव्या वातशूलनिषूदनाः।।९।।

अजवायन, हींग, सैन्धव लवण, यवक्षार, सौवर्चल लवण एवं अभया को सुरामण्ड के साथ पीना चाहिए। यह योग वातशूल को नष्ट कर देता है।

वातशूलहरी गुटिका- १.

सौवर्चलाम्लकाजाजीमरिचैर्द्विगुणोत्तरैः।
मातुलुङ्गरसैः श्लिष्टा गुडिकानिलशूलहृत्।।१०।।

सौवर्चल, अम्लक (अम्लवेतस), जीरा एवं कालीमिर्च- इनको उत्तरोत्तर द्विगुण मात्रा में लेकर चूर्ण बनाएं; तदनन्तर इन्हें मातुलुंग-रस में भिगोकर गोलियाँ बना लें। ये गोलियाँ वातजन्य शूल को नष्ट कर देती हैं।

वातशूलहरी गुटिका- २.

शुक्ताम्लवेतसव्योषयवानी-लवणत्रिकैः।
बीजपूररसोपेता गुडिका वातशूलिनः।।११।।

शुक्त, अम्लवेतस, व्योष (त्रिकटु), यवानी एवं सैन्धव, सौवर्चल व विड लवण द्वारा बीजपूर रस के साथ बनाई हुई गुटिका वातशूली के लिए हितकर होती है।

वातशूल, गुल्म एवं अपतन्त्र का नाशक चूर्ण

तुम्बुरूण्यभयां हिङ्गु पौष्करं लवणत्रयम्।
पिबेद् यवाम्बुना वातशूलगुल्मापतन्त्रकी।।१२।।

वातशूल, गुल्म एवं अपतन्त्रक रोग से ग्रस्त व्यक्ति- तुम्बुरू (नेपाल धनिया), अभया, हिङ्गु, पौष्कर (पुष्कर मूल), सैन्धव, सौवर्चल और विड लवण के चूर्ण का यवाम्बु के साथ पान करें। इससे उक्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

पित्तशूलहर योग- १.

धात्र्या रसं विदार्या वा त्रायन्तीगोस्तनाम्बु वा।
पिबेत् सशर्करं सद्यः पित्तशूलप्रमर्दनम्।।१३।।

आमलकी, विदारी, त्रायन्ती अथवा गोस्तन (मुनक्का) के रस को शर्करा मिलाकर पिएं। यह योग शीघ्र ही पित्तशूल को नष्ट कर देता है।

पित्तशूलहर योग- २.

प्रलिह्यात् पित्तशूलघ्नं धात्रीचूर्णं समाक्षिकम्।
शर्करामाक्षिकोपेतं लाजातर्पणमापिबेत्।।१४।।

मधु सहित धात्रीचूर्ण का लेहन करें। इसी प्रकार शर्करा एवं मधु के साथ लाजाओं के पेय का पान करें। ये दोनों योग पित्तशूल को नष्ट कर देते हैं।

कफशूलहर योग

वचाब्दाग्न्यभया-तिक्ता-चूर्णं गोमूत्रसंयुतम्।
सक्षारं वा पिबेत् क्वाथं बिल्वादेः कफशूलवान्।। १५।।

कफजन्य शूल से ग्रस्त व्यक्ति को वचा, मुस्तक, चित्रक, अभया एवं तिक्ता का चूर्ण गोमूत्र के साथ पीना चाहिए। इसी प्रकार बिल्वादि क्वाथ को क्षार मिलाकर पीना चाहिए। ये दोनों योग उदावर्त्त रोगी के कफजन्य शूल को नष्ट कर देते हैं।

हृद्रोग

हृद्रोग- निदान एवं भेद

वातादिभिः पृथक् सर्वैः कृमिदोषाच्च पञ्चधा।
हृद्रोगः शूलवज्ज्ञेयः सकण्ड्वर्तिश्च जन्तुजः।।१६।।

दूषित हुए तीनों दोषों से पृथक्-पृथक् एवं सम्मिलित रूप से हृदय रोग पैदा होता है। कृमिदोष से भी हृदय रोग होता है। इस प्रकार इसके पाँच भेद होते हैं- वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज एवं कृमिजन्य। सभी प्रकार का हृद्रोग शूल सहित होता है। कृमिजन्य हृद्रोग में हृदयगत कृमियों के काटने से कण्डू के साथ पीड़ा होती है।

वातज हृद्रोग की चिकित्सा

लवणाम्लयुतं तैलं हृद्रोगे वातिके पिबेत्।
सिद्धं वा मूत्रवद् गुल्म-शूलानाहनिवारणम्।।१७।।

वातजन्य हृद्रोग में लवण एवं अम्ल से युक्त तिल के तेल को गोमूत्र के साथ सिद्ध करके पीना चाहिए। यह गुल्म, शूल एवं आनाह को नष्ट कर देता है।

पञ्चाशदभयाकल्कः सौवर्चलपलद्वयम्।
घृतप्रस्थं जले सिद्धं हृद्रोगश्वासगुल्मजित्।।१८।।

पचास हरीतकी लेकर उनका कल्क बनाएं। इसमें दो पल सौवर्चल लवण मिलाएं। इन सबको जल में मिलाकर उस जल में एक प्रस्थ घृत सिद्ध करें। यह घृत हृद्रोग, श्वास एवं गुल्मरोग को नष्ट कर देता है।

शुण्ठी सौवर्चलं हिङ्गु दाडिमं साम्लवेतसम्।
चूर्णमुष्णाम्बुना पेयं श्वासहृद्रोगमुक्तये।।१९।।

शुण्ठी, सौवर्चल, हिङ्गु, दाडिम एवं अम्लवेतस- इन सबका चूर्ण बनाकर उष्ण जल के साथ लेना चाहिए। यह शूल एवं हृद्रोग को नष्ट कर देता है।

पित्तज हृद्रोग की चिकित्सा

सेका लेपा हिमाः पैत्तै मधुरैश्च विरेचनम्।
पिष्टा वा कटुका पेया यष्ट्याह्वा वा सिताम्बुना।।२०।।

पित्तजन्य हृद्रोग में शीतल गुण वाले सेक एवं लेप हितकर होते हैं। इस रोग में मधुर विरेचनीय पदार्थों से विरेचन लेना हितकर होता है। इस रोग में कुटकी अथवा मुलेठी को शर्करामिश्रित जल के साथ पीना चाहिए। इससे पित्तजन्य हृद्रोग दूर हो जाता है।

स्थिरादिकल्कवत् सर्पिः क्षीरेणेक्षुरसेन वा।
द्राक्षारसेन वा पक्वं पित्तहृद्ररोगनाशनम्।।२१।।

स्थिरादि गण के द्रव्यों का कल्क मिलाकर दूध, इक्षुरस अथवा द्राक्षारस के साथ सिद्ध किया हुआ घृत पित्तजन्य हृद्रोग को नष्ट कर देता है।

कफज हृद्रोग की चिकित्सा

कृष्णा शटी वचा रास्ना शुण्ठी पथ्या सपौष्करा।
चूर्णिता वा शृता मूत्रे पातव्या कफहृद्गदे।।२२।।

पिप्पली, शटी (कपूरकचरी), वचा, रास्ना, शुण्ठी, पथ्या एवं पौष्कर

(पुष्करमूल) को चूर्ण कर गोमूत्र में मिलाकर पीना चाहिए अथवा इन्हें उबालकर इनके क्वाथ को गोमूत्र के साथ पीना चाहिए। इससे कफजन्य हृद्रोग नष्ट हो जाता है।

त्रिदोषज व कृमिज हृद्रोग की चिकित्सा

त्रिदोषे लङ्घनं पूर्वं यथावस्थं क्रिया मता।
क्रिमिजे च पिबेन्मूत्रं विडङ्गामयसंयुतम्।।२३।।

त्रिदोषजन्य हृद्रोग में पहले लङ्घन करवाना चाहिए तथा अवस्थानुसार चिकित्सा क्रिया करनी चाहिए। कृमिजन्य हृद्रोग में पहले विडङ्ग एवं आमय (कूठ) युक्त गोमूत्र का पान करवाना चाहिए।

।। इत्युदावर्त्ताध्याय ऊनविंशतितमः समाप्तः ।।

विंश अध्याय

उन्माद, अपस्मार

उन्माद का निदान एवं भेद

दुष्टामेध्यान्नपानेच्छाभयशोकादिसम्प्लवात्।
मनोऽधिस्मृतिविक्षेप उन्मादः पञ्चधा स्मृतः।।१।।

दूषित एवं अमेध्य अन्नपान के कारण तथा इच्छा, भय, शोक आदि के सम्प्लव (आवेग) से मन की स्मृति का विक्षोभ हो जाना ही 'उन्माद' रोग है। यह पाँच प्रकार का माना जाता है।

वातज एवं पित्तज उन्माद के लक्षण

विद्यादास्फोटनाक्रन्द-हास्यनृत्यैर्मरुद्भवम्।
पैत्तं तु कोपशीतेच्छा-तर्जनाभिद्रवादिभिः।।२।।

आस्फोटन (अंगों का पीटना), आक्रन्दन (रोना, चिल्लाना), हास्य एवं नृत्य आदि लक्षणों से वातज उन्माद को पहचानें। कोप, शीतल पदार्थों की इच्छा एवं अभिद्रव (चारों ओर व्याकुलतापूर्वक दौड़ना) आदि लक्षणों से पित्तज उन्माद को जानें।

चरक-संहिता, चिकित्सास्थान- ९.१२ में 'अभिद्रव' एवं 'अतिद्रव'- ये दोनों पाठान्तर मिलते हैं। वहां अधिकांश हिन्दी–व्याख्याकार 'अतिद्रव' पाठ स्वीकार करते हैं तथा इसका अर्थ 'अधिक दौड़ना' करते हैं। हमारे विचार से 'अभिद्रव' पाठ अधिक उचित प्रतीत होता है।

कफज एवं त्रिदोषज उन्माद के लक्षण

निद्राल्पभाष्य-नारीच्छारोचकैः कफजः स्मृतः।
सर्वलिङ्गान्वितो घोरो विवर्ज्यः सान्निपातिकः।।३।।

निद्रा, अल्पभाषण, स्त्रीसंसर्ग की इच्छा एवं अरोचक (भोजन में अरुचि) इत्यादि लक्षणों से कफज उन्माद की पहचान होती है। उपर्युक्त सभी लक्षणों से युक्त जो उन्माद होता है, वह सान्निपातिक- अर्थात् कुपित हुए तीनों दोषों के संसर्ग से होने के कारण अति भयंकर होता है। यह असाध्य होने से त्याज्य होता है- अर्थात् इसकी चिकित्सा निष्फल रहती है।

आगन्तु उन्माद के लक्षण

अमर्त्यज्ञान-विज्ञानबल-वाग्-विक्रमादिभिः।
आगन्तुः पञ्चमो ज्ञेयो देवादिग्रहदूषणात्।।४।।

देवोचित ज्ञान, विज्ञान, वाणी एवं पराक्रम आदि लक्षणों से आगन्तु रूप उन्माद जानना चाहिए। यह देव अथवा ग्रह आदि के प्रति किए गए दोष से उत्पन्न होता है।

उन्माद का प्रारम्भिक उपचार

वातिके स्नेहपानं प्राग् विरेकः पित्तसम्भवे।
कफजे वमनं कार्यं परो वस्त्यादिकः क्रमः।।५।।

वातजन्य उन्माद में पहले स्नेहपान करवाना चाहिए। पित्तजन्य उन्माद में विरेचन करवाना चाहिए तथा कफजन्य उन्माद में वमन करवाना चाहिए। इसके अनन्तर वस्ति आदि का चिकित्सा क्रम करना चाहिए।

उन्माद-नाशक घृत एवं अपस्मारहर अगद

निशायुक्-त्रिफला-श्यामा-वचासिद्धार्थहिङ्गुभिः।
शिरीष-कटभी-श्वेता-मञ्जिष्ठा-व्योष-दारुभिः।।६।।

सकरञ्जैर्घृतं मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम्।
अपस्मारविषघ्नं च बस्तमूत्रेण चागद:।।७।।

दोनों प्रकार की हल्दी, त्रिफला, श्यामा (निशोथ), वचा, सिद्धार्थ (श्वेत सरसों), हिङ्गु, शिरीष, कटभी, श्वेता (अपराजिता), मञ्जिष्ठा, व्योष (त्रिकटु), दारुहल्दी, करञ्ज- इन ओषधियों के साथ गोमूत्र में सिद्ध किया गया घृत अपस्मार (मिर्गी) एवं विष को नष्ट करता है। इन्हीं ओषधियों के साथ बकरी के मूत्र में सिद्ध किया गया घृत विशिष्ट प्रकार का अगद- अर्थात् विषनाशक योग बन जाता है।

सारस्वत घृत

पाठा-हरीतकी-शिग्रु-वचा-त्र्यूषण-सैन्धवै:।
पलांशै: सर्पिष: प्रस्थमजाक्षीराढके शृतम्।।८।।
एतत् सारस्वतं नाम स्मृतिमेधाविवर्धनम्।
जडगद्गदमूकत्वं प्रसभाद्धन्ति पानत:।।९।।

पाठा, हरीतकी, शिग्रु, वचा, त्रिकटु, सैन्धव- इन्हें एक-एक पल परिमाण में लेकर एक आढक परिमाण वाले बकरी के दूध में डाल दें; तदनन्तर इस दूध में एक प्रस्थ घृत सिद्ध कर उचित मात्रा में पान करें। यह 'सारस्वत' नामक घृत स्मृति एवं मेधा को बढ़ाता है, जडता (बुद्धि की मन्दता), गद्गदत्व (वाणी का अटकना) एवं मूकत्व (गूंगेपन) को हठात् नष्ट कर देता है।

अपस्मार-उन्माद-नाशक नस्य एवं अञ्जन

यष्टीहिङ्गुवचावक्र-शिरीष-लशुनामयै:।
साजमूत्रैरपस्मारे सोन्मादे नावनाञ्जने।।१०।।

मुलेठी, हींग, वचा, वक्र (तगर), शिरीष, लशुन एवं आमय (कूठ)- इन्हें बकरी के मूत्र में मिलाकर अपस्मार तथा उन्माद रोग में नावन (नस्य)

के रूप में देना चाहिए। इस योग का अञ्जन के रूप में प्रयोग करने से भी ये दोनों रोग नष्ट हो जाता है।

बन्ध-ताडन-संरोध-त्रासनैर्विविधाश्रयैः।
उन्मादिनमुपक्रम्य पश्चात् सान्त्वैरुपाचरेत्।।११।।

आरम्भ में विविध प्रकार के बन्धन, ताडन, संरोध एवं त्रासन द्वारा उन्मादग्रस्त की चिकित्सा करनी चाहिए; तदनन्तर उसे सान्त्वना भी देनी चाहिए।

उन्मादहर व्यावहारिक उपाय

पूजाबल्युपहारेष्टि-होम-मन्त्राञ्जनादिभिः।
जयेदागन्तुमुन्मादं यथाविधि शुचिर्भिषक्।।१२।।

शुचि- अर्थात् पवित्र आचरण वाले वैद्य को विधिवत् पूजा, बलि (बलि वैश्वदेव यज्ञ के अनुसार दी जाने वाली भोजन आदि की भेंट), उपहार (पूज्य, श्रद्धेय व स्नेहीजनों के लिए भेंट), इष्टि (यज्ञविशेष), होम (हवन), मन्त्र एवं अञ्जन आदि द्वारा आगन्तु उन्माद का निराकरण करना चाहिए।

अपस्मार (मिर्गी)

अपस्मार- निदान एवं भेद

तमोवेशः संरम्भो दोषोद्रेकहतस्मृतेः।
अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः।।१३।।

तीनों दोषों के प्रकोप से स्मृति के नष्ट हो जाने से तमोवेश (ज्ञानाभाव/नि:सञ्ज्ञता) एवं संरम्भ (क्रोधावेग) रूप वाला अपस्मार नामक भयंकर रोग हो जाता है। यह चार प्रकार का होता है- वातज, पित्तज, कफज एवं त्रिदोषज।

कृष्णपीतसिताभासा वातपित्तकफैः क्रमात्।
दृश्यन्ते तद्विकाराश्च सर्वैः कृच्छ्रस्त्रिदोषजः।।१४।।

अपस्मार के वात, पित्त एवं कफ से होने वाले विकार क्रमशः कृष्ण, पीत एवं श्वेत रूप में दिखते हैं। त्रिदोषज अपस्मार इन सभी विकारों से युक्त होता है तथा उसकी चिकित्सा बहुत कठिन होती है।

अपस्मार में आरम्भिक उपचार- पञ्चकर्म

पञ्च कर्माणि तत्रादौ यथादोषं प्रयोजयेत्।
सर्वतः शुद्धदेहस्य स्यादुन्मादहरी क्रिया।।१५।।

उन्माद रोग में दोषों की अवस्था को देखते हुए सबसे पहले पञ्चकर्म करवाने चाहिएं; तदनन्तर सर्वथा शुद्ध देह वाले रोगी के प्रति उन्माद रोग के निवारणार्थ चिकित्सा क्रिया करनी चाहिए।

अपस्मारहर ब्राह्मी घृत

शङ्खपुष्पी-वचाकुष्ठैः सिद्धं ब्राह्मीरसे घृतम्।
पुराणं हन्त्यपस्मारं सोन्मादं मेध्यमुत्तमम्।।१६।।

शङ्खपुष्पी, वचा एवं कुष्ठ (कूठ) के साथ ब्राह्मी के रस में सिद्ध किया पुराना घृत उन्माद सहित अपस्मार को नष्ट कर देता है तथा मेधा के लिए अत्यन्त हितकर होता है।

अपस्मारनाशक घृततैल-योग

तैलतुल्यं घृतप्रस्थं क्षीरद्रोणे पलांशिकैः।
जीवनीयैः शृतं पानात् तदपस्मारनोदनम्।।१७।।

एक-एक पल परिमाण में जीवक, ऋषभक आदि जीवनीय गण के द्रव्यों को एक द्रोण गोदुग्ध में मिलाएं; तदनन्तर उसमें एक प्रस्थ तिल का तेल व एक प्रस्थ गोघृत मिलाकर सिद्ध करें। इस योग के पान से अपस्मार रोग नष्ट हो जाता है।

अपस्मारहर तैलनस्य

शिग्रुकुष्ठशिलाजाजीलशुनव्योषहिङ्गुभिः।
बस्तमूत्रे शृतं तैलं नावनं स्यादपस्मृतौ।।१८।।

शिग्रु, कुष्ठ, शिला, अजाजी, लशुन, व्योष एवं हिङ्गु के साथ बकरी के मूत्र में सिद्ध किया गया तेल अपस्मार रोग में उत्तम नावन (नस्य) होता है। इसके प्रयोग से अपस्मार नष्ट हो जाता है।

अपस्मार में सावधानी एवं पथ्य

जलाग्निद्रुमशैलादीन् विषमान् परिवर्जयन्।
प्रयतः शीलयन् मेध्यमपस्मारी रसायनम्।।१९।।

अपस्मारी (मिर्गी रोग से ग्रस्त) व्यक्ति को चाहिए कि जल, अग्नि, वृक्ष एवं पर्वत आदि विषम स्थानों से दूर रहे तथा यत्नपूर्वक मेध्य आहार, औषध एवं रसायन का सेवन करे।

।। इत्युन्मादापस्माराध्यायो विंशतितमः समाप्तः।।

एकविंश अध्याय

वातव्याधि, वातरक्त

वातव्याधि- निदान एवं भेद

अशीतिर्वातजा रोगा जायन्ते तत्प्रकोपतः।

रुग्भङ्ग-तोद-सङ्कोच-शोषोद्वेष्टनलक्षणाः।।१।।

वातजन्य रोग ८० प्रकार के होते हैं। ये प्रकुपित वात से उत्पन्न होते हैं। इनमें रुजा (पीड़ा), भङ्ग (टूटन), तोद (चुभन), संकोच (सिकुड़न), शोष (अंग का सूखना) एवं उद्वेष्टन (ऐंठन) इत्यादि लक्षण होते हैं।

आक्षेपक, धनुस्तम्भ एवं पक्षाघात का लक्षण

आक्षेपको मुहुःक्षेपाद् धनुस्तम्भस्तदाकृतिः।

कृत्स्नदेहार्द्धरुक्कारी पक्षाघातो निगद्यते।।२।।

'आक्षेपक' में बार-बार अंगों का क्षेपण होता है। 'धनुस्तम्भ' (धनुषबाय) में धनुष जैसी आकृति हो जाती है। सम्पूर्ण शरीर के आधे भाग में रुजा (पीड़ा) करने वाला 'पक्षाघात' कहलाता है।

गृध्रसी का लक्षण

मारुताकुञ्चितांसस्था सिरा ज्ञेयैकबाहुकम्।

गृध्रसी सक्थिकर्मघ्नी सैव पार्ष्ण्यङ्गुलिश्रिता।।३।।

वात के कारण कन्धे पर स्थित आकुञ्चित (सिकुड़ी हुई) सिरा 'एकबाहुक' (अवबाहुक) नामक रोग के रूप में जानी जाती है। गृध्रसी (सायटिका) रोग में सक्थि की क्रिया बाधित हो जाती है, यह पार्ष्णि (एड़ी) तथा अंगुलियों में प्रभाव भी फैला रहता है।

अर्दित का लक्षण

वक्त्रार्द्धं वायुना वक्रं तदर्दितमुदाहरेत्।
क्रोष्टुशीर्षं च जानुस्थं शोफं वातास्त्रसम्भवम्।।४।।

वात के कारण मुख का आधा भाग वक्र हो जाता है, इसे 'अर्दित' रोग (मुख का लकवा) कहते हैं। वातरक्त से होने वाले घुटने के शोफ (सूजन) को 'क्रोष्टुशीर्ष' कहते हैं; क्योंकि इसमें सूजा हुआ भाग क्रोष्टा (गीदड़) के सिर जैसा दिखता है।

वातरोगहर क्रियाएं एवं भोज्य द्रव्य

अभ्यङ्गः स्वेदनं वस्तिर्नस्यं स्नेहविरेचनम्।
स्निग्धाम्ललवणस्वादुवृष्यं वातामयापहम्।।५।।

अभ्यङ्ग (तेल मालिश), स्वेदन (पसीना लेना), वस्ति, नस्य, स्नेहन एवं विरेचन क्रियाएं वात रोगों को नष्ट करती हैं। इसी प्रकार स्निग्ध, अम्ल, लवण एवं मधुर भोज्य तथा वृष्य द्रव्य भी वातरोगों को नष्ट करते हैं।

सर्ववातविकार-नाशक तैल- १.

बलानिष्क्वाथकल्काभ्यां तैलं पक्वं पयोन्वितम्।
सर्ववातविकारघ्नमेवं सैरीयपाचितम्।।६।।

बला के क्वाथ एवं कल्क के साथ दूध में पकाया तेल सभी वात विकारों को नष्ट करता है। इसी प्रकार सैरीय के साथ पकाया तेल भी वात विकारों को नष्ट करता है।

सर्ववातविकार-नाशक तैल- २.

अश्वगन्धा-तुलार्द्धाम्बु तैलप्रस्थं पयोन्वितम्।
मांसी त्वक् पत्रं मञ्जिष्ठा द्रवन्ती सुरसाझटा।।७।।
बला दारु स्थिरा यष्टी रास्नैला पुष्करं वचा।
श्वदंष्ट्रा कुष्ठं पूतिकं शताह्वा सपुनर्नवा।।८।।

व्याघ्रोशीरं पयस्या च पिष्टैरक्षांशिकैः शृतम्।
सर्वानिलगदध्वंसि चतुर्धा सम्प्रयोजितम्।।९।।

एक तुला परिमाण में अश्वगन्धा लें, एक प्रस्थ तेल लें, आधा प्रस्थ जल मिलाएं, साथ में दूध भी मिलाएं; तदनन्तर आगे लिखी ओषधियों को एक-एक अक्ष के परिमाण में लेकर पीस लें तथा इनके साथ तेल सिद्ध करें- जटामांसी, त्वक् (दालचीनी), पत्र (तेजपात), मञ्जिष्ठा, द्रवन्ती, सुरसा (तुलसी), अझटा (भूम्यामलकी/भुई आँवला), बला, दारुहल्दी, स्थिरा, यष्टी (मुलेठी), रास्ना, एला, पुष्कर, वचा, श्वदंष्ट्रा (गोखरू), कुष्ठ (कूठ), पूतिक (करञ्ज), शताह्वा (सोआ), पुनर्नवा, व्याघ्री (कण्टकारी), उशीर (खस), पयस्या (दुग्धिका/क्षीरकाकोली)। इनसे तैयार तेल का भोजन, पान, अभ्यङ्ग एवं नस्य- इन चार रूपों में प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार प्रयुक्त यह तेल सभी वातरोगों को नष्ट कर देता है।

सर्ववातविकार-नाशक तैल- ३.

मूलकानां रसप्रस्थे तैलप्रस्थं प्रसाधितम्।
दध्यम्लकाञ्जिकक्षीरैराढकांशैर्वचाबलात्।।१०।।
रास्नापुष्करविश्वाग्निशिग्रुसैन्धवगोक्षुरात्।
कल्कं कृत्वा च पिप्पल्या कृत्स्नवातार्तिनाशनम्।।११।।

मूली के एक प्रस्थ रस में एक प्रस्थ तेल सिद्ध करें। यह सभी वातरोगों को नष्ट करता है। इसमें सिद्ध करते समय दधि, अम्ल (अनार आदि का रस), काञ्जिक व क्षीर को आधे आढक परिमाण में मिलाएं। इसमें वचा, बला, रास्ना, पुष्कर, विश्वा (शुण्ठी), चित्रक, शिग्रु, सैन्धव लवण, गोखरू और पिप्पली का कल्क भी मिलाएं। इस प्रकार तैयार किया गया यह तेल सभी वातरोगों को नष्ट कर देता है।

सर्ववातविकार-नाशक तैल- ४.

प्रसारणीशतक्वाथे तैलप्रस्थं पय:समम्।
जीवकर्षभकौ मेदे काकोल्यौ कुष्ठचन्दने।।१२।।
शताह्वादारुमञ्जिष्ठारास्ना: पिष्ट्वा विपाचितम्।
वस्तिपानादिभिर्युक्तमेतन्मारुतरोगनुत्।।१३।।

प्रसारणी के शत परिमाण (तुला परिमाण) क्वाथ में एक प्रस्थ तेल को एक प्रस्थ दूध मिलाकर पकाएं। पकाते समय इसमें जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, कूठ, चन्दन, शताह्वा, देवदारु , मञ्जिष्ठा एवं रास्ना को भी पीसकर डाल दें। इस प्रकार सिद्ध किए हुए तेल का वस्ति एवं पान आदि में प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार प्रयुक्त यह तेल वातरोगों को नष्ट कर देता है।

तीव्र वातरोगों का नाशक विशिष्ट योग

तैलप्रस्थं पयस्तुल्यं श्वदंष्ट्रास्वरसाढके।
गुडस्य शृङ्गवेरस्य पृथग् मानीशृतं पिबेत्।।१४।।
क्षीरानु तद्विरिक्तश्च खादेत् विश्वं गुडान्वितम्।
जीर्णे क्षीरान्नभुक् सर्वांस्तीव्रान् वातगदाञ्जयेत्।।१५।।

श्वदंष्ट्रा (गोखरू) के एक आढक परिमाण स्वरस में एक प्रस्थ दूध के साथ एक प्रस्थ तेल पकाएं। उबले हुए गुड़ एवं अदरक को पृथक्श: एक मानी (आठ पल) परिमाण में पान करें (?) तथा ऊपर से दूध पिएं। इससे विरेचन होने पर गुड़ से युक्त शुण्ठी का सेवन करें। जीर्ण होने पर खीर का सेवन करें। इस प्रकार सेवन करने से यह योग सभी तीव्र वातरोगों को जीत लेता है।

वातरोग-नाशक घृत- १.

पचेद् घृताढकं क्वाथे लशुनस्य शतोद्भवे।
कर्षं चव्याग्निकृष्णानां पलिके विश्वहिङ्गुनी।।१६।।
लवणानां पृथक् पिष्ट्वा पलार्द्धं चाम्लवेतसात्।
गृध्रसीवातरुग्गुल्मपक्षाघातादिवारणम्।।१७।।

लशुन के एक तुला परिमाण क्वाथ में एक आढक घी पकाएं। इसमें एक कर्ष परिमाण में चव्य, चित्रक एवं पिप्पली डालें और एक पल परिमाण में सोंठ एवं हींग डालें। इसके अतिरिक्त सैन्धव, सौवर्चल एवं विड- इन तीनों लवणों को पीसकर मिलाएं तथा आधा पल अम्लवेतस डालें। इस प्रकार तैयार यह योग गृध्रसी, वातरोग, गुल्म एवं पक्षाघात आदि रोगों को नष्ट करता है।

वातरोग-नाशक घृत- २.

चव्यसौवर्चलव्योषशिग्रुसैन्धवधान्यकैः।
अक्षांशैः सर्पिषः प्रस्थं पिष्टैः प्रस्थोन्मितैः पृथक्।।१८।।
मूलकार्द्रकमांसानां रसशुक्ताम्लकाञ्जिकैः।
मस्तुतक्रयुतैः पक्वं सदागतिगदापहम् ।।१९।।

चव्य, सौवर्चल, व्योष (त्रिकटु), शिग्रु, सैन्धव लवण, धान्यक (धनिया)- इन्हें एक-एक अक्ष परिमाण में लेकर पीस लें; तदनन्तर मूलक (मूली) एवं अदरक से बने शुक्त, अम्ल व काञ्जिक, मांसरस तथा मस्तु एवं तक्र को अलग से एक-एक प्रस्थ परिमाण में लें। इनके साथ एक प्रस्थ घृत सिद्ध करें। यह घृत वातरोगों को नष्ट कर देता है।

वातरोगों में स्नेहों का उपयोग

वसामज्जाज्यतैलानि वातव्याधिषु योजयेत्।
कफपित्तानुबन्धोत्थे कार्यस्तत्प्रशमः क्रमः।।२०।।

वसा, मज्जा, घृत एवं तेल का वातरोगों में प्रयोग करना चाहिए। कफ एवं पित्त के अनुबन्ध (संयोग) से उठने वाले वातरोग में वातशमन की चिकित्सा करनी चाहिए।

गृध्रसी एवं क्रोष्टुशीर्ष का उपचार

गृध्रस्यां क्रोष्टुशीर्षे च कृत्वा शोणितमोक्षणम्।
समीरणहरं कर्म प्रयोक्तव्यमशेषतः।।२१।।

गृध्रसी एवं क्रोष्टुशीर्ष नामक वातरोग में रक्तमोक्षण करवाकर सभी वातहर क्रियाओं का प्रयोग करना चाहिए।

ऊरुस्तम्भ का लक्षण

श्लेष्ममेदोऽन्वितो जित्वा वातमूरुद्वयाश्रितम्।
ऊरुस्तम्भं करोत्युग्रं सादगौरवरूपिणम्।।२२।।

मेद से युक्त श्लेष्मा (कफ) दोनों ऊरुओं (जंघाओं) में स्थित वात को अभिभूत कर प्रबल 'ऊरुस्तम्भ' पैदा कर देता है। इसमें ऊरुओं के अन्दर साद (जकड़न) एवं गौरव (भारीपन) का अनुभव होता है।

ऊरुस्तम्भ की चिकित्सा

सर्वो रूक्षः क्रमः कार्यस्तत्रादौ कफनाशनः।
पश्चाद् वातविनाशाय कृत्स्नः कार्यः क्रियाविधिः।।२३।।

ऊरुस्तम्भ रोग की चिकित्सा करते समय आरम्भ में कफ को नष्ट करने वाला रूक्ष चिकित्सा-क्रम अपनाना चाहिए; तदनन्तर वात का निवारण करने के लिए सम्पूर्ण चिकित्सा-विधि करनी चाहिए।

वातरक्त

वातरक्त- निदान एवं लक्षण

प्रदुष्टं सुकुमाराणां वातरक्तं श्रमादिभिः।
पूर्वं तत्पाणिपादेषु स्थित्वा देहं प्रपद्यते।।२४।।

अधिक श्रम आदि के कारण सुकुमार (नाजुक प्रकृति वाले) लोगों का दूषित हुआ वातरक्त पहले उनके हाथ-पैर में स्थित होकर तत्पश्चात् देह में व्याप्त हो जाता है। इस व्याधि को 'वातरक्त' नाम से जाना जाता है।

वातरक्त के भेद

रुग्भेदशोषपारुष्यकार्ष्ण्याद् वातोत्तरं वदेत्।
ताम्रशोफातिरुग्दाहमृदुत्वै रक्तपित्तजम्।।२५।।

रुजा (पीड़ा), भेद, शोफ, पारुष्य (कठोरता) एवं कार्ष्ण्य (कालापन)- इन लक्षणों से युक्त वातरक्त को वातोत्तर (वातप्रधान) जानना चाहिए।

कफेन मन्दरुक्कण्डूस्तैमित्यघनशोफवत्।
द्वन्द्वतः सन्निपाताच्च लिङ्गैरेतैश्च लक्षयेत्।।२६।।

कफ से होने वाले वातरक्त में मन्द पीड़ा, कण्डू, स्तैमित्य (स्तब्धता) एवं घना शोफ (सूजन)- ये लक्षण दिखते हैं। द्वन्द्वज वातरक्त में कारणभूत दोनों दोषों के लक्षण दिखते हैं तथा त्रिदोषजन्य वातरक्त में पूर्वोक्त सभी लक्षण दिखाई देते हैं।

वातरक्त की साध्यासाध्यता

एकदोषं नवं साध्यं याप्यं सांवत्सरं द्विजम्।
त्याज्यं त्रिदोषजं भिन्नं स्फुटितं प्रस्रुतं च यत्।।२७।।

एक दोष से उत्पन्न वातरक्त को साध्य जानें। दो दोषों से उत्पन्न वातरक्त को एक वर्ष की अवधि तक याप्य रूप में जानें। जो वातरक्त त्रिदोषज होता है और भेद, स्फुटन एवं स्राव से युक्त होता है, उसे असाध्य मानकर छोड़ देना चाहिए- अर्थात् उसकी चिकित्सा निष्फल होती है।

वातरक्त में रक्तमोक्षण एवं पञ्चकर्म

तत्रासृङ्मोक्षणं पूर्वं स्निग्धे वातोत्तराद्दृते।
यथादोषं च निर्दिष्टः पञ्चकर्माश्रयः क्रमः।।२८।।

वातोत्तर वातरक्त को छोड़कर शेष वातरक्त में पहले रोगी को स्निग्ध कर रक्तमोक्षण करवाना चाहिए तथा दोषों की स्थिति के अनुसार पञ्चकर्म चिकित्सा करनी चाहिए।

वातरक्तहर विविध लेप

कणिकाजापयोलेप: सघृतो वातरक्तजित्।
प्रभृष्टै: क्षीरनिष्पीष्टैस्तिलैर्वाप्यथवोमया।।२९।।

कणिक (पिप्पली) को अजादुग्ध (बकरी के दूध) में पीसें, तदनन्तर उसमें घृत मिलाकर लेप करें। यह योग वातरक्त को जीत लेता है। इसी प्रकार दूध के साथ पीसे गए भुने तिलों का लेपन करने से तथा दूध के साथ पिसी उमा (अलसी) के लेपन करने से भी वातरक्त दूर हो जाता है।

शताह्वाक्षीरसम्पिष्टा बीजं वा वर्द्धमानजम्।
प्रदेहो वोदकक्रव्य-वेसवारा: सुसंस्कृता:।।३०।।

दूध में पिसी शताह्वा (सोआ) अथवा दूध में पिसे वर्धमान (एरण्ड बीज) का लेप भी वातरक्त को शान्त करता है। इसी प्रकार उदकक्रव्य (जलचर प्राणियों का मांस) से बना एवं वातनाशक मसालों से संस्कारित वेसवार (पिष्ट मांसरस) भी वातरक्त को शान्त करता है।

पित्तरक्तोत्तरे लेपो यष्ट्याज्यक्षीरसक्तुभि:।
जीवनीयौषधैर्वापि घृतपिष्टै: प्रकल्पित:।।३१।।

पित्तरक्त की अधिकता वाले वातरक्त में मुलेठी, घृत, दूध एवं सक्तुओं के साथ तैयार किया गया लेप हितकर होता है। इसी प्रकार घृत में पिसी जीवनीय गण की जीवक, ऋषभक आदि ओषधियों का लेप भी इसमें हितकर होता है।

कल्क: श्लेष्मोत्तरे लेपो वाजिगन्धातिलोद्भव:।
श्वेतसर्षपकल्को वा वर्षाभूशिग्रुजोऽथवा।।३२।।

श्लेष्मप्रधान वातरक्त में अश्वगन्धा एवं तिल को पीसकर बनाए गए कल्क का लेप हितकर होता है। इसी प्रकार श्वेत सर्षप (सफेद सरसों), वर्षाभू (पुनर्नवा) अथवा शिग्रुमूल के कल्क का लेपन भी कफप्रधान वातरक्त को शान्त करता है।

सभी प्रकार के वातरक्त में हितकर योग

सर्वेषु सगुडां पथ्यां गुडूचीक्वाथमेव वा।
पिप्पली-वर्द्धमानं वा शीलयेत् सुसमाहितः।।३३।।

सभी प्रकार के वातरक्त में गुड़ सहित हरीतकी अथवा गडूची के क्वाथ का श्रद्धापूर्वक सेवन करना चाहिए। इसी प्रकार 'पिप्पलीवर्धमान' योग का निरन्तर श्रद्धापूर्वक सेवन भी सभी प्रकार के वातरक्त में हितकर होता है।

इस योग में पिप्पली का सेवन क्रमशः बढ़ाते हुए निर्दिष्ट अवधि तक करना होता है। पुनः क्रमशः घटाते हुए प्रयोग पूर्ण किया जाता है। इस विषय में विशेष विवरण के लिए चरकसंहिता, चिकित्सास्थान- १.३, श्लोक- ४० द्रष्टव्य है।

।। इति वातव्याधि-वातरक्त-चिकित्साध्याय एकविंशतितमः समाप्तः।।

द्वाविंश अध्याय

मदात्यय

मद्य के मिथ्यायोग से मदात्यय की उत्पत्ति

ये विषस्य गुणाः प्रोक्तास्ते मद्येऽपि प्रतिष्ठिताः।
तेन मिथ्योपयुक्तेन भवत्युग्रो मदात्ययः।।१।।

जो गुण विष के बताए गए हैं, वे सभी गुण मद्य में भी होते हैं, अतः अनुचित रीति से प्रयुक्त मद्य से भयंकर 'मदात्यय' रोग उत्पन्न हो जाता है।

वातज एवं पित्तज मदात्यय के लक्षण

हृच्छिरःपार्श्वरुक्स्तम्भ-हिक्का-कासैर्मरुद्भवः।
तृड्-दाह-स्वेद-पीतत्वं मूर्च्छाभिः पैत्तिकः स्मृतः।।२।।

हृदय, सिर एवं पार्श्व में पीड़ा व जकड़न तथा हिक्का एवं कास- इन चिह्नों से वातजन्य मदात्यय की पहचान होती है। तृषा, दाह, स्वेद, शरीर में पीलापन एवं मूर्छा (बेहोशी आना)- इन लक्षणों से पित्तज मदात्यय की पहचान होती है।

कफज एवं त्रिदोषज मदात्यय के लक्षण

हृल्लासारोचकच्छर्दिस्तैमित्यैः कफसम्भवः।
ज्ञेयस्त्रिदोषजश्चापि सर्वलिङ्गैर्मदात्ययः।।३।।

हृल्लास, अरोचक, छर्दि, स्तैमित्य (स्तब्धता)- इन लक्षणों से कफजन्य मदात्यय की पहचान होती है। उपर्युक्त तीनों दोषों के लक्षणों से युक्त मदात्यय को त्रिदोषजन्य जानना चाहिए।

वातज मदात्यय की चिकित्सा

मद्यं सौवर्चलव्योषयुक्तं किञ्चिज्जलान्वितम्।
जीर्णमद्याय दातव्यं वातपानात्ययापहम्।।४।।

वातजन्य मदात्यय को दूर करने के लिए पहले पिए गए मद्य के जीर्ण होने पर सौवर्चल, त्रिकटु एवं थोड़ा जल मिलाकर उचित मात्रा में मद्य पिलाना चाहिए।

शुक्तसौवर्चलं साग्नि सोषणार्जकदीप्यकम्।
मद्यं पीत्वा जयत्युग्रं पवनोत्थं मदात्ययम्।।५।।

शुक्त (सिरका), सौवर्चल (सोंचर नमक), चित्रक, कालीमिर्च, अर्जक (तुलसी का भेद) एवं दीप्यक (अजवायन) के साथ उचित मात्रा में मद्य पिलाने से उग्र वातजन्य मदात्यय रोग भी नष्ट हो जाता है।

कोल-दाडिम-वृक्षाम्ल-यवानी-लवणान्विताः।
पातव्या वातविच्छित्त्यै स्निग्धा मद्येन सक्तवः।।६।।

कोल (बेर), दाडिम (अनार), वृक्षाम्ल, यवानी (अजवायन) एवं सैन्धव लवण से युक्त तथा घृत से स्निग्ध सत्तुओं का मद्य के साथ पान करने से वातजन्य मदात्यय नष्ट हो जाता है।

वातज मदात्यय में पथ्य

योजयेन्मातुलुङ्गाम्र-दाडिमैः पानकान्यपि।
स्निग्धोष्णलवणाम्लांश्च रसाञ्जाङ्गलजाञ्छुभान्।।७।।

वातजन्य मदात्यय में मातुलुङ्ग, आम्र एवं दाडिम से बने पानकों का उपयोग करना चाहिए। इसी प्रकार स्निग्ध, उष्ण, नमकीन जाङ्गलज रसों का भी उपयोग करना चाहिए। यह सब वातजन्य मदात्यय में हितकर होता है।

पित्तज मदात्यय की चिकित्सा

पैत्ते क्षौद्रसितायुक्तं मद्यमर्धोदकं पिबेत्।
मधुरौषधनिष्क्वाथयुक्तं वा शर्करान्वितम्।।८।।

पित्तजन्य मदात्यय में मधु एवं शर्करा से युक्त आधा जल मिला मद्य पीना चाहिए अथवा मधुर औषधों के क्वाथ से युक्त शर्करामिश्रित मद्य पीना चाहिए। इससे पित्तजन्य मदात्यय दूर होता है।

मुद्गयूषः सितायुक्तः स्वादुर्वा पैशितो रसः।
पित्तपानात्यये योज्याः सर्वतश्च हिमाः क्रिया।।९।।

पित्तजन्य मदात्यय में शर्करायुक्त मुद्गयूष पीना चाहिए अथवा मधुर मांसरस पीना चाहिए। इसमें सभी शीतल क्रियाएं अपनानी चाहिएं।

कफज मदात्यय की चिकित्सा

वमनद्रव्यसंयुक्त-मद्येनोल्लेखनं मतम्।
पानरोगे कफोद्भूते लंघनं च यथाबलम्।।१०।।

कफजन्य मदात्यय में वमनद्रव्य से युक्त मद्यपान द्वारा उल्लेखन करवाना चाहिए तथा रोगी के सामर्थ्य के अनुसार लङ्घन (उपवास) करवाना चाहिए।

दीपनीयौषधोपेतं पिबेन्मद्यं समाहितः।
त्रिफलाया रसं वापि व्योषचूर्णसमन्वितम्।।११।।

कफजन्य मदात्यय में दीपनीय गण की औषधियों के साथ सावधानी से उचित मात्रा में मद्य पिलाना चाहिए अथवा त्रिकटु चूर्ण के साथ त्रिफला का रस पिलाना चाहिए।

शुष्कमूलकजो यूषः कौलत्थो वा कटूत्कटः।
यवान्नविकृतिर्योज्या जाङ्गलान्यकृतानि च।।१२।।

कफजन्य मदात्यय में सूखी मूली का यूष अथवा कटु (चरपरे रस वाले) द्रव्यों (कालीमिर्च आदि) से तीक्ष्ण बना कुलत्थ का यूष देना चाहिए। यव (जौ) से बने दलिया, रोटी आदि तथा अकृत (मसाला आदि से रहित) जाङ्गल द्रव्यों का प्रयोग करवाना चाहिए।

त्रिदोषज मदात्यय की चिकित्सा

सर्वजे सर्वमेवेदं प्रयोक्तव्यं चिकित्सितम्।
ये च तृष्णादयो रोगास्ते निवार्याः स्वभेषजैः।।१३।।

त्रिदोषज मदात्यय में युक्तिपूर्वक उपर्युक्त सभी उपायों का प्रयोग करना चाहिए। मदात्यय के साथ जो तृष्णा आदि रोग हैं, वे उनके लिए विहित औषधों द्वारा दूर किए जाने चाहिएं।

मद्य से कृश व्यक्ति को पुष्ट करने के उपाय

मद्यप्रक्षीणदेहस्य वस्तयः सानुवासनाः।
अभ्यङ्गोत्सादनस्नानसर्पिः क्षीरनिषेवणम्।।१४।।

मद्य सेवन से क्षीणकाय बने व्यक्ति को अनुवासन सहित वस्तियाँ देनी चाहिएं तथा अभ्यङ्ग (तेल मालिश), उत्सादन (उबटन) एवं स्नान करवाना चाहिए। भोजन में घृत एवं दूध का सेवन करवाना चाहिए।

शतावरी सवृश्चीवयष्टीकल्कैर्घृतं शृतम्।
बलातिबलानिष्क्वाथ-क्षीरपानं क्षयापहम्।।१५।।

शतावरी, वृश्चीव (पुर्ननवा) एवं यष्टी (मुलेठी) के कल्क के साथ पकाया हुआ घृत मद्यपान-जन्य दुर्बलता को दूर कर देता है। इसी प्रकार बला एवं अतिबला के क्वाथ के साथ दुग्धपान करने से मद्यसेवन-जन्य क्षीणता दूर हो जाती है।

पय:पुनर्नवाक्वाथ-यष्टीकल्क-प्रसाधितम्।
घृतं पुष्टिकरं पानान्मद्यपानहतौजस:।।१६।।

मद्यपान से हतौजा (ओज:क्षय से निस्तेज हुए) शराबी व्यक्ति के लिए दूध, पुनर्नवा-क्वाथ एवं मुलेठी के कल्क से सिद्ध किया हुआ घृत मात्रानुसार पीने के लिए देना चाहिए। इससे उसके क्षीण शरीर की पुष्टि हो जाती है।

।। इति मदात्ययाध्यायो द्वाविंशतितम: समाप्त:।।

त्रयोविंश अध्याय

विसर्प

विसर्प- निदान एवं भेद

लवणाम्लकटूष्णादि-संसेवा-दोषकोपतः।
विसर्पः सप्तधा ज्ञेयः सर्वतः प्रतिसर्पणात्।।१।।

निरन्तर अधिक मात्रा में लवण, अम्ल, कटु एवं उष्ण पदार्थों के सेवन से कुपित दोषों के कारण 'विसर्प' रोग हो जाता है। यह सात प्रकार का होता है। सब ओर विसर्पण (प्रसरण) करने से यह रोग विसर्प नाम से जाना जाता है।

वातज एव पित्तज विसर्प के लक्षण

वातात् कृष्णमृदुस्फोटशोफवज्ज्वरतोदवान्।
पित्तात् स्यात्पीतरक्ताभस्फोटदाहज्वरान्वितम्।।२।।

वातजन्य विसर्प में काले व मृदु स्फोट होते हैं। इसमें शोफ, ज्वर एवं तोद (चुभन जैसी पीड़ा) होती है। पित्तजन्य विसर्प में पीले, लाल स्फोट होते हैं तथा दाह एवं ज्वर होता है।

कफज एवं त्रिदोषज विसर्प के लक्षण

कफात्पाण्डुसितस्फोटकण्डूश्लेष्मज्वरैः स्मृतः।
सन्निपातसमुत्थश्च सर्वरूपैः समन्वितः।।३।।

कफजन्य विसर्प में पाण्डु एवं श्वेत वर्ण के स्फोट होते हैं, यह कण्डू व श्लेष्मज्वर से युक्त होता है। तीनों दोषों के सन्निपात (समूह) से होने वाला विसर्प रोग पूर्वोक्त सभी लक्षणों से युक्त होता है।

क्षतज विसर्प के लक्षण

क्षतजो रक्तपित्ताभ्यां श्यावलोहितशोफवान्।
पाकदाहज्वराटोपी कृष्णस्फौटैश्चितो मत:।।४।।

क्षतज (शस्त्र आदि के आघात से उत्पन्न) विसर्प रक्त सहित पित्त के दूषित होने से काले व लाल शोफ से युक्त होता है। यह पाक, दाह एवं ज्वर के आटोप वाला तथा काले स्फोटों (धब्बों) से व्याप्त होता है।

वातपित्तज विसर्प के लक्षण

अग्निदग्धैरिव स्फोटै: शान्ताङ्गारारुणप्रभ:।
दाहतृष्णादिभिर्ज्ञेयो वातपित्तात्मिकोऽग्निक:।।५।।

जिसमें आग से जले के समान स्फोट होते हैं तथा शान्त अंगार जैसे लाल दिखाई देते हैं, जिसमें दाह एवं तृष्णा आदि लक्षण होते हैं, वह विसर्प वातपित्त-जन्य होता है तथा अग्निक (अग्निविसर्प) नाम से जाना जाता है।

मेचकी एवं कर्दम विसर्प के लक्षण

पाण्डुपीतारुणस्फोटो मेचकी कफपित्तज:।
मलिनोष्णाश्रयक्लेदी कर्दम: कर्दमोपम:।।६।।

कफपित्तज विसर्प पाण्डु (श्वेताभ पीला), पीत (पीला) व अरुण (लाल) स्फोटों वाला होता है। यह 'मेचकी' नाम से जाना जाता है। जो विसर्प मलिन एवं उष्ण आश्रय के साथ क्लेदी होता है तथा कीचड़ के समान दिखता है, उसे 'कर्दम' कहते हैं।

विसर्प की साध्यसाध्यता

एकदोषास्त्रय: साध्या: शेषा: साध्येतरा मता:।
उभयान्तश्रिता: सर्वे मर्मजाश्च विशेषत:।।७।।

एकदोष-जन्य- अर्थात् वातज, पित्तज एवं कफज विसर्प साध्य होते हैं। शेष असाध्य होते हैं। उभयान्ताश्रित- अर्थात् बाह्याभ्यन्तर आश्रय में स्थित

मर्मज विसर्प विशेष रूप से असाध्य होते हैं।

विसर्प में पञ्चमूल-प्रयोग

तृणवर्ज्यं प्रयोक्तव्यं पञ्चमूल-चतुष्टयम्।
प्रदेहसेकसर्पिभिर्विसर्पे वातसम्भवे।।८।।

वातजन्य विसर्प में प्रदेह (लेपन), सेक (सेचन) एवं सर्पि (घृत) के साथ चार पञ्चमूलों का प्रयोग करना चाहिए। तृणों वाला एक पञ्चमूल इसमें त्याज्य होता है।

चार पञ्चमूल- १. बृहत्पञ्चमूल- इसमें बिल्व, अग्निमन्थ, श्योनाक, गम्भारी एवं पाटला नामक द्रव्य सम्मिलित हैं। २. **लघुपञ्चमूल-** इसमें पृष्टपर्णी, स्थिरा, एरण्ड तथा छोटी एवं बड़ी बृहती सम्मिलित हैं। ३. **वल्लिज पञ्चमूल-** इसमें विदारी, शारिवा, छालशृङ्गी, वत्सादनी (गिलोय) तथा हल्दी सम्मिलित हैं। ४. **कण्टकी पञ्चमूल-** इसमें गृध्रनखी, वरी (शतावरी), श्वदंष्ट्रा (गोखरू), सैरीय एवं करमर्दिका (करौंदा) सम्मिलित हैं। इनका वर्णन प्रस्तुत ग्रन्थ में द्वितीय अध्याय के ४५वें से ४८वें श्लोक तक किया है।

वातज विसर्प में हितकर लेपन एवं सेचन

लेपनं पिष्टसंसिद्धैर्यष्टीसर्पिः-पयोयवैः।
वातिके क्षीरसेको वा घृतमण्डेन वा स्मृतः।।९।।

वातजन्य विसर्प में पिष्ट के साथ सिद्ध यष्टि (मुलेठी), घृत, दूध अथवा यव से लेपन करना चाहिए अथवा क्षीर या घृतमण्ड से सेचन करना चाहिए।

पित्तज विसर्प में हितकर लेपन

प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठा-पद्मकोशीरचन्दनैः।
सयष्टीन्दीवरैः पैत्ते क्षीरपिष्टैः प्रलेपनम्।।१०।।

पित्तजन्य विसर्प में प्रपौण्डरीक, मञ्जिष्ठा, पद्मक, उशीर, चन्दन, मुलेठी, नीलकमल- इनका दूध के साथ पीसकर लेपन करना चाहिए।

विसर्प में न्यग्रोधादिगण एवं शतधौत घृत का उपयोग

सेकालेपाज्ययोगेषु न्यग्रोधादिः प्रशस्यते।
लेपनं शतधौतं वा सर्पिर्यष्टीमधूत्कटम्।।११।।

सेक, आलेप एवं घृतयोगों में न्यग्रोधादि गण उत्तम माना जाता है। इसी प्रकार यष्टीमधु युक्त शतधौत घृत का लेपन भी उत्तम माना जाता है।

पित्तज विसर्पहर लेप

स्रोतोजोशीरशीताब्द-मुक्ताम्बुमणिगैरिकैः।
सघृतः पयसा पिष्टैर्लेपः पित्तविसर्पजित् ।।१२।।

स्रोतोज (स्रोतोऽञ्जन), उशीर (खस), शीत (शीतल/पुष्पकासीस), अब्द (मुस्तक), मुक्ता (मोती), अम्बुमणि (चन्द्रकान्तमणि), गैरिक (गेरू)- इन्हें दूध के साथ पीसकर तथा घृत मिलाकर लेप करना चाहिए। यह पित्तजन्य विसर्प को नष्ट कर देता है।

कफज विसर्पहर लेप

गायत्री-सप्तपर्णाब्द-धवारग्वधदारुभिः।
सकुरुण्टैर्भवेल्लेपो विसर्पे श्लेष्मसम्भवे।।१३।।

गायत्री (खदिर), सप्तपर्ण, मुस्तक, धव, आरग्वध (अमलतास), दारु (देवदारु) एवं कुरण्ट- इन्हें पीसकर लेप करना चाहिए। इससे कफजन्य विसर्प नष्ट हो जाता है।

कफज विसर्प में वरुणादि गण की उपयोगिता

मधुकत्रिफलावीरा-शिरीषैर्लेपमाचरेत्।
वरुणादिगणः शस्तः कफजे सर्वकर्मसु।।१४।।

कफजन्य विसर्प में मधुक (मुलेठी), त्रिफला, वीरा एवं शिरीष का लेपन करना चाहिए। कफज विसर्प में पान आदि सभी कर्मों में वरुणादि गण प्रशस्त माना जाता है। वरुणादि गण के द्रव्यों की जानकारी के लिए प्रस्तुत

ग्रन्थ में द्वितीय अध्याय के नवम, दशम श्लोक देखें।

सर्वविसर्पहर क्वाथ- १.

पटोलारिष्टदार्वीत्वक् तिक्तात्रायन्तिकाः शृताः।
सयष्टिमधुकाः सर्वान् विसर्पान् घ्नन्ति पानतः।।१५।।

पटोल, अरिष्ट (नीम), दार्वी (दारुहल्दी), त्वक् (दालचीनी), तिक्ता (कुटकी), त्रायन्ती (त्रायमाणा) एवं यष्टिमधुक (मुलेठी)- इनके क्वाथ का पान सभी प्रकार के विसर्प रोगों को नष्ट कर देता है।

सर्वविसर्पहर क्वाथ- २.

मुस्तारिष्टपटोलानां क्वाथः सर्वविसर्पनुत्।
धात्रीपटोलमुद्गानामथ वा घृतसंयुतः।।१६।।

मुस्ता, अरिष्ट (नीम) एवं पटोल का क्वाथ सभी प्रकार के विसर्प रोगों को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार धात्री, पटोल एवं मूंग का घृतमिश्रित क्वाथ सभी प्रकार के विसर्प रोग को नष्ट कर देता है।

विसर्प में संशोधन, रक्तमोक्षण एवं व्रणतुल्य चिकित्सा

संशोधनं च सर्वेषु कार्यं शोणितमोक्षणम्।
पक्वेषु व्रणनिर्दिष्टं कर्म कृत्स्नं प्रयोजयेत्।।१७।।

सभी प्रकार के विसर्प रोगों में पहले संशोधन एवं रक्तमोक्षण करवाना चाहिए। विसर्पों के पक जाने पर व्रण-चिकित्सा में निर्दिष्ट सभी क्रियाएं करनी चाहिए।

।। इति विसर्पाध्यायस्त्रयोविंशतितमः समाप्तः ।।

चतुर्विंश अध्याय

शोफ, श्लीपद, गलगण्ड, गण्डमाला, ग्रन्थि, अर्बुद

शोफ-निदान, शोफ के भेद

क्षीणमांसस्य गुर्वम्ल-साभिष्यन्दान्नसेवनात् ।
शोफः स्यात् षड्विधो घोरो दोषैरुत्सेधलक्षणः।।१।।

क्षीण मांस वाले कृशकाय व्यक्ति द्वारा गुरु एवं अभिष्यन्दी पदार्थों के सेवन से छह प्रकार का भयंकर शोफ (सूजन) हो जाता है। शरीर के अंगों पर उभार आना इस रोग का लक्षण है।

वातज एवं पित्तज शोफ के लक्षण

चलः स्यात्पीडनान्निम्नो वातात्कृष्णारुणार्त्तिकृत्।
क्षिप्रपाकी मृदुः पित्तात् पीतरक्तोष्मदाहवान्।।२।।

वातजन्य शोफ दबाने पर गड्ढे के रूप में निम्न (नीचा) हो जाता है- अर्थात् दब जाता है। कृष्ण तथा अरुण रंग का यह शोफ पीड़ाजनक होता है। पित्तजन्य शोफ क्षिप्रपाकी (शीघ्र पकने वाला), मृदु एवं पीले रंग के रक्त वाला होता है। यह ऊष्मा (उष्णता) एवं दाह से युक्त होता है।

कफज, रक्तज एवं त्रिदोषज शोफ के लक्षण

स्निग्धः काठिन्यकण्डूमाञ्शुक्लः पाण्डुः कफोद्भवः।
पित्तवद् रक्तजागन्तुः सर्वलिङ्गी च सर्वजः।।३।।

कफजन्य शोफ स्निग्ध, कठोर, खुजली युक्त, शुक्ल एवं पाण्डु (पीताभ श्वेत) होता है। रक्तज आगन्तु शोफ भी पित्त के समान लक्षणों

वाला होता है। सर्वज- अर्थात् त्रिदोषज शोफ में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं।

शोफ के विभिन्न स्थान

उपर्यामाशयस्थैस्तु पक्वाशयगतैरधः।
मध्ये मध्यगतैर्दोषैः सर्वव्यापी च सर्वगैः।।४।।

आमाशयस्थ दोषों से होने वाला शोफ शरीर के ऊपरी भाग में होता है। पक्वाशयगत दोषों से होने वाला शोफ शरीर के अधोभाग में होता है। इन दोनों के मध्यवर्ती दोषों से होने वाला शोफ शरीर के मध्य भाग में होता है। शरीर में सर्वत्र व्याप्त दोषों से होने वाला शोफ पूरे शरीर में व्यापक रूप से फैल जाता है।

साध्य एवं कष्टसाध्य शोफ

विगतोपद्रवः साध्यो बलस्थस्यैकदोषजः।
श्वयथुः सर्वगः कष्टो यश्चोर्ध्वमुपसर्पति।।५।।

बलवान् व्यक्ति का उपद्रवों से रहित तथा एकदोषजन्य शोफ साध्य होता है। सर्वग (सारे शरीर में व्याप्त) तथा ऊर्ध्वग (शरीर के ऊपरी भाग में व्याप्त) शोफ कष्टसाध्य होता है।

शोफ में औषधसिद्ध घृत व तैल का प्रयोग

यथादोषं गणैः स्वैः स्वैः सर्पिस्तैलानि कल्पयेत्।
प्रलेपसेकपानानि भिषक् श्वयथुरोगिषु।।६।।

वैद्य को चाहिए कि दोषों की स्थिति के अनुसार विविध शोफों को दूर करने वाले औषधगणों के साथ घृत एवं तेल सिद्ध करे तथा उन्हें शोफरोगियों के लिए प्रलेप, सेचन एवं पान के रूप में उपयोग में लावे।

शोफ में पञ्चकर्म की उपयोगिता

पञ्चकर्माणि योज्यानि यथावस्थं विधानतः।
वक्ष्यन्तेऽतः परं योगाः सामान्याः शोफनाशनाः।।७।।

शोफरोगियों की अवस्था के अनुसार विधिवत् पञ्चकर्म का प्रयोग करवाना चाहिए। इसके आगे शोफ को नष्ट करने वाले सामान्य योगों का वर्णन किया जा रहा है।

शोफनाशक विविध योग

पिबेदुष्णाम्बुना दारु-पथ्या-शुण्ठी-पुनर्नवाः।
विडङ्गातिविषा-वत्स-विश्व-दारूषणानि वा।।८।।

दारुहल्दी, पथ्या (हरीतकी), शुण्ठी (सोंठ) एवं पुनर्नवा का चूर्ण उष्णजल के साथ लेना चाहिए अथवा विडङ्ग, अतिविषा, वत्स, शुण्ठी, दारुहल्दी व कालीमिर्च का उष्णजल के साथ सेवन करना चाहिए। ये दोनों योग शोफ को नष्ट करते हैं।

त्र्यूषणायोरजःक्षारैः शोफनुत् त्रिफलारसः।
कटुकायोरजो-व्योष-त्रिवृद्भिर्वा समन्वितः।।९।।

त्रिकटु, लोहभस्म एवं क्षार (यवक्षार) के साथ त्रिफला-रस का सेवन करने से शोफ दूर हो जाता है। इसी प्रकार कटुका (कुटकी), लोहभस्म, त्रिकटु एवं त्रिवृत् के साथ त्रिफला-रस का सेवन करने से भी शोफ दूर हो जाता है।

पुरं मूत्रेण संसेव्यं पिप्पली वा पयोन्विता।
गुडेन वाभया तुल्या विश्वं वा शोफरोगिणा।।१०।।

शोफरोगी को गोमूत्र के साथ पुर (गुग्गुलु) का सेवन करना चाहिए अथवा दूध के साथ पिप्पली का सेवन करना चाहिए। इसी प्रकार गुड़ के साथ

अभया (हरड़) अथवा शुण्ठी (सोंठ) का सेवन करना चाहिए। इनसे शोफ नष्ट हो जाता है।

युक्त्या गुडार्द्रकं सेव्यं क्षीरयूषरसाशिना।
शोफ-शोषोदरोन्माद-गुल्मार्शः-श्वासशुद्धये।।११।।

शोफ, शोष, उदर, उन्माद, गुल्म, अर्श एवं श्वास रोग का निवारण करने के लिए युक्तिपूर्वक गुड़ एवं अदरक का सेवन करना चाहिए और आहार के रूप में क्षीर, यूष एवं रस लेना चाहिए।

क्षीरं शोफहरं दारुवर्षाभूनागरैः शृतम्।
पेयं वा चित्रकव्योषत्रिवृद्दारुप्रसाधितम्।।१२।।

दारु (दारुहल्दी), वर्षाभू (पुनर्नवा) एवं नागर (शुण्ठी) के साथ पकाया दूध शोफहर होता है। इसी प्रकार चित्रक, त्रिकटु, त्रिवृत् एवं दारुहल्दी के साथ पकाया दूध भी शोफ को दूर करता है।

श्लीपद का स्वरूप एवं भेद

मेदो-मांसाश्रयं शोफं पादयोः श्लीपदं वदेत्।
स्वलिङ्गादर्शिभिर्दोषैस्तत् त्रिधा स्यात्कफोत्तरम्।।१३।।

शोफ जब दोनों पैरों के मेद और मांस तक पहुंच जाता है, तब उसे श्लीपद (फीलपाँव/हाथीपाँव) कहते हैं। तीनों दोषों के लिङ्गों के आधार पर यह तीन प्रकार का होता है- वातज, पित्तज एवं कफज। तीनों प्रकार के श्लीपद रोग में कफ की प्रधानता रहती है।

असाध्य श्लीपद, श्लीपद का कारण देशविशेष

समातीतमसाध्यं स्याद् वल्मीकाकृति विस्रुतम्।
सर्वत्र शीतले देशे जायते तत् स्थिरोदके।।१४।।

एक वर्ष बीतने पर श्लीपद रोग (फीलपाँव/हाथीपाँव) असाध्य हो

जाता है। उस समय यह वल्मीक (बाँम्बी) की आकृति वाला एवं स्रावयुक्त हो जाता है। यह तराई वाले उस ठण्डे क्षेत्र में होता है, जहाँ खेत आदि में पानी अधिक समय तक सञ्चित रहता है।

श्लीपद की चिकित्साविधि

तत्रोपनाहनस्वेदरक्तमोक्षादिको विधिः।
सर्वश्च शोफनिर्दिष्टो यथायोगमुदीरितः।।१५।।

श्लीपद रोग में उपनाहन (पुल्टिस बांधना), स्वेद, रक्तमोक्षण आदि विधियों का प्रयोग करना चाहिए। शोफ रोग के प्रकरण में निर्दिष्ट विधियों का भी इसकी चिकित्सा में यथाचित प्रयोग करना चाहिए।

गलगण्ड

त्रिविधो गलगण्डोऽपि वातमेदःकफान्वयः।
कृष्णारुणास्यवैरस्य-तालुशोषकरोऽनिलात्।।१६।।

गलगण्ड (घेंघा) रोग तीन प्रकार का होता है- वातज, मेदज एवं कफज। वातज गलगण्ड में ग्रन्थि काले एवं अरुण वर्ण की होती है। इसमें वात के कारण आस्यवैरस्य (मुख का स्वादहीन होना) तथा तालुशोष (तालु का सूखना) होता है।

मेदजः स्यान्मृदुः स्निग्धः कफजश्च महान् स्थिरः।
क्षीणस्य च समातीतो गलगण्डो न सिध्यति ।।१७।।

मेदज गलगण्ड मृदु एवं स्निग्ध होता है तथा कफज गलगण्ड बड़ा एवं स्थिर होता है। एक वर्ष बीतने पर क्षीण व्यक्ति का गलगण्ड साध्य नहीं रहता है।

गण्डमाला

ग्रन्थयः श्लेष्ममेदोभ्यां धात्र्यस्थिप्रमिता गले।
गण्डमाला समाख्याता बहुकालानुबन्धिनी।।१८।।

कफ एवं मेद के कारण गले में आंवले की गुठली जितनी बड़ी ग्रन्थियाँ हो जाती हैं, इन्हें 'गण्डमाला' कहते हैं। यह बहुत समय तक चलने वाला रोग है।

गण्डमाला चिकित्सा

स्वेदोपनाहनालेप-रक्तमोक्ष-विशोधनैः।
स्वैर्गणैस्तैलपानैश्च गण्डमालां जयेद् भिषक्।।१९।।

वैद्य को चाहिए कि स्वेद, उपनाहन (पुल्टिस बांधना), आलेपन (औषध का लेप), रक्तमोक्षण एवं दोषों के विशोधन द्वारा गण्डमाला की चिकित्सा करे। दोषों का शमन करने वाले औषधगणों के साथ सिद्ध तेल एवं क्वाथों से भी इस रोग का निवारण करना चाहिए।

गण्डमालापहं तैलं सिद्धं शाखोटकत्वचा।
निम्बाश्वमारनिर्गुण्डी-साधितं वापि नावनम्।।२०।।

शाखोटक (सहोरा) वृक्ष की त्वचा (छाल) के साथ सिद्ध किया हुआ तेल गण्डमाला रोग को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार निम्ब, अश्वमार (कनेर) एवं निर्गुण्डी के द्वारा साधित तेल का नावन (नस्य) भी गण्डमाला को दूर कर देता है।

ग्रन्थि में अग्नि व क्षार का प्रयोग

ग्रन्थीनुद्धृत्य वापक्वान् वह्निकर्म प्रयोजयेत्।
पक्वान् क्षारेण संशोध्य व्रणवत् समुपक्रमेत्।।२१।।

अपक्व ग्रन्थियों को निकालकर अग्निकर्म (दाह) का प्रयोग करना चाहिए। पक्व ग्रन्थियों का क्षार द्वारा शोधन कर व्रण के समान चिकित्सा करनी चाहिए।

ग्रन्थि में अग्निप्रयोग

त्यक्त्वेन्द्रवस्तिमापाट्य पार्ष्ण्यूर्ध्वं द्वादशाङ्गुलम्।
मीनाण्ड-सदृशं मेदो हृत्वा वह्निं प्रयोजयेत्।।२२।।

पार्ष्णि (एड़ी) के ऊपर की ओर बारह अंगुल स्थान पर पिण्डी वाली जगह इन्द्रवस्ति नामक मर्म होता है। उसे छोड़कर उत्पाटन करें, वहाँ मीनाण्ड (मछली के अण्डे) जैसे मेदोजाल को हटाकर अग्निप्रयोग (दाह) करें।

अर्बुद- चिकित्सा

पृथग्दोषैरसृङ्मांस-मेदोभिर्जायतेऽर्बुदम्।
तत्स्वदोषविकारि स्यादसाध्ये रक्तमांसजे।।२३।।

वात, पित्त एवं कफ- इन तीनों दोषों से पृथक्-पृथक् अर्बुद की उत्पत्ति होती है। इसके अतिरिक्त रक्त, मांस एवं मेद से भी अर्बुद बनता है। वह रक्त, मांस व मेद में विद्यमान दोष के कारण होता है। रक्तज एवं मांसज अर्बुद असाध्य होते हैं।

गलगण्डक्रिया तस्य बद्धूवा पट्टादिवस्त्रकैः।
शस्त्राग्निक्षारकर्माणि विधिवच्च प्रयोजयेत्।।२४।।

अर्बुद में गलगण्ड रोग में वर्णित चिकित्सा-विधि अपनानी चाहिए। उसे पट्ट आदि वस्त्रों से बाँधकर शस्त्रकर्म, अग्निकर्म एवं क्षारकर्म भी विधिवत् करने चाहिए।

।। इति शोफाध्यायश्चतुर्विंशतितमः समाप्तः।।

पञ्चविंश अध्याय

व्रण

व्रण का स्वरूप, दोषज व क्षतज व्रण

द्विधा व्रणः परिज्ञेयः शारीरागन्तुभेदतः।
दोषैराद्यस्तयोरन्यः शस्त्रादिक्षतसम्भवः।।१।।

व्रण दो प्रकार का जानना चाहिए- शारीर व्रण एवं आगन्तु व्रण। इनमें प्रथम शरीरस्थ दोषों के कारण होता है तथा दूसरा शस्त्र आदि के आघात से विक्षत (घायल) होने पर होता है।

वातज एवं पित्तज व्रण के लक्षण

वाताद् रूक्षारुणश्याव-स्वच्छाल्पस्रुतिवेदनः।
रागोष्णस्रावदाहाद्यः पीतनीलश्च पित्ततः।।२।।

वातजन्य व्रण रूक्ष, अरुण व कृष्णवर्ण का होता है। इसमें स्वच्छ तथा अल्पस्राव के साथ वेदना होती है। पित्तजन्य व्रण लालिमायुक्त, उष्ण स्राव वाला एवं दाहयुक्त तथा नील व पीत वर्ण का होता है।

कफज, रक्तज एवं द्वन्द्वज व्रण

कफात् पाण्डुः सकाठिन्यः शुक्लशीतघनस्रुतिः।
रक्तो रक्तस्रुती रक्ताद् द्वित्रिजः स्यात्तदन्वयः।।३।।

कफजन्य व्रण पाण्डु, कठोरतायुक्त एवं शुक्ल वर्ण का होता है। इसमें शीतल व सघन स्राव होता है। दूषितरक्त-जन्य व्रण लाल रंग वाला एवं रक्तस्राव युक्त होता है। उपर्युक्त में से किन्हीं दो या तीन निमित्तों से होने वाले व्रण में अपने निमित्तों का भी समन्वय (सम्बन्ध) होता है।

शमनं त्वविदग्धस्य विदग्धस्य च पाचनम्।
पक्वस्य पाटनं शुद्धिः संरोहः स्याद् व्रणस्य च।।४।।

अविदग्ध (अपक्व) व्रण का शमन करना चाहिए, विदग्ध (पक्व) का पाचन करना चाहिए। इसे अनन्तर पक्व का पाटन एवं शोधन करना चाहिए। इस चिकित्सा-क्रम से व्रण का शीघ्र रोपण (भराव) होता है।

व्रणपाचन पिण्डी

तिलकिण्वातसीकुष्ठसक्तूनां लवणान्विता।
दध्यम्लमर्दिता पिण्डी परं पाचनमिष्यते।।५।।

तिलकिण्व (तिलकुट), अतसी, कुष्ठ (कूठ) एवं सत्तू द्वारा निर्मित लवणयुक्त, दधि एवं अम्ल रसों के साथ मर्दित की हुई पिण्डी व्रण को पकाने में अति उपयोगी होती है।

विदग्ध, विपक्व शोफ

दाह-रुक्-तोद-रागैस्तु विदग्धं शोफमादिशेत्।
मन्दैरेतैर्विपक्वं च वलिमत् पिण्डितोन्नतम्।।६।।

व्रण के साथ हुए जिस शोफ में दाह, पीड़ा, चुभन एवं लालिमा हो, उसे विदग्ध शोफ जानना चाहिए। जिसमें ये सभी लक्षण मन्द अवस्था में हों तथा जो वलियों से युक्त हो, पिण्डितोन्नत- अर्थात् पिण्डिताकार में उभरा हुआ हो, उसे विपक्व शोफ जानना चाहिए।

व्रणदारण योग

निकुम्भा-स्नुक्पयोऽश्मारि-चिरबिल्वाग्निकादयः।
कपोतदक्षविड्-युक्ताः क्षारो वा दारणं परम्।।७।।

निकुम्भा (दन्ती), स्नुक्-क्षीर (थूहर का दूध), पाषाणभेद, चिरबिल्व, चित्रक आदि को कबूतर व दक्ष (मुर्गेविट) बींट/मल पक्षी की बींट के साथ

व्रण (घाव) पर लगाने से उसका विदारण हो जाता है। इसी प्रकार क्षार का लेपन करने से भी शीघ्र ही व्रण का विदारण हो जाता है- अर्थात् वह पक कर फट जाता है।

व्रणशोधन लेप

तिलसैन्धवयष्ट्याह्व-निम्बपत्रनिशायुगैः।
त्रिवृद्घृतयुतैः पिष्टैः प्रलेपो व्रणशोधनः।।८।।

तिल, सैन्धव, मुलेठी, निम्बपत्र, दोनों प्रकार की हल्दी- इन्हें त्रिवृत् और घृत के साथ पीसकर लेप करने से व्रण का शोधन होता है।

व्रणशोधन योग, व्रणरोपण योग

निम्बपत्रतिलैः कल्को मधुना क्षतशोधनः।
रोपणः सर्पिषा युक्तो यवकल्केऽप्ययं विधिः।।९।।

निम्बपत्र व तिलों को पीसकर बनाए गए कल्क का मधु के साथ लेपन करने से व्रण का शोधन होता है। इसी प्रकार घृत से युक्त यवकल्क का लेपन करने से व्रण का रोपण (भराव) होता है।

शुद्ध व्रण का लक्षण

निरुत्सङ्गी मृदुः स्निग्धो जिह्वाभो विगतव्यथः।
निरास्रावो न चोत्सन्नो व्रणः शुद्धः प्रकीर्तितः।।१०।।

निरुत्सङ्गी (कोटर-रहित, छिद्र-रहित), मृदु, स्निग्ध, जिह्वातुल्य, पीड़ा-रहित, आस्राव-रहित एवं उभारयुक्त व्रण शुद्ध होता है।

व्रणचिकित्सा में योग्य द्रव्यों का विभाग

पञ्चमूलद्वयं वाते न्यग्रोधादिश्च पैत्तिके।
आरग्वधादिको योज्यः कफजे सर्वकर्मसु।।११।।

वातजन्य व्रण में दोनों पञ्चमूलों का, पित्तजन्य व्रण में न्यग्रोधादि गण

का, कफज व्रण में आरग्वधादि गण का प्रयोग करना चाहिए। व्रण-सम्बन्धी सभी चिकित्सा-क्रियाओं में इसी निर्देश के अनुसार द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए।

पञ्चमूल प्रथम- बिल्व, अग्निमन्थ/अरणी, श्योनाक, गम्भारी, पाटला। (सिद्धसारसंहिता-२.४५) **पञ्चमूल द्वितीय-** पृष्टपर्णी, स्थिरा, एरण्ड, छोटी और बड़ी बृहती। (सिद्धसारसंहिता-२.४६)।

न्यग्रोधादि गण- इसके द्रव्यों की जानकारी के लिए इस ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय का तृतीय व चतुर्थ श्लोक देखें। **आरग्वधादि गण-** इसके द्रव्यों की जानकारी के लिए इस ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय का ग्यारहवां तथा बारहवां श्लोक देखें।

तिलादि का व्रणरोपण लेप

तिलोत्पलबलादार्वीमेदामधुकचन्दनैः।
समङ्गाधातकीसर्पिर्युक्तैर्लेपः प्ररोहणः।।१२।।

तिल, उत्पल (कमल), बला, दार्वी (दारुहल्दी), मेदा, मधुक (मुलेठी), चन्दन, समङ्गा (मञ्जिष्ठा), धातकी एवं घृत- इन सबको पीसकर बनाया गया लेप लगाने से व्रण का रोपण होता है- अर्थात् घाव भर जाता है।

व्रणसन्धानकारी योग

व्रणसन्धानकृल्लेपो घृतं क्षीरिद्रुमाङ्कुरैः।
त्रिफला-वटशुङ्गाज्यगायत्रीलोध्रजोऽथ वा।।१३।।

बरगद (बड़), पीपल, गूलर आदि क्षीरी (दूध वाले) वृक्षों के अंकुरों को घृत के साथ पीसकर लेपन करने से व्रण का सन्धान हो जाता है। इसी प्रकार त्रिफला, वटशुंगा (बड़ के अंकुर), गायत्री (खदिर) वृक्ष एवं लोध्र वृक्ष के अंकुरों का घृत के साथ लेपन करने से भी व्रण का सन्धान (जुड़ाव) हो जाता है।

अर्जुनादि की छाल का व्रणरोपण लेप

अर्जुनोदुम्बराश्वत्थलोध्र-जम्बू-त्वचः समाः।
यष्टीकट्फल-लाक्षाश्च चूर्णिताः क्षतरोहणम्।।१४।।

अर्जुन, उदुम्बर, अश्वत्थ, लोध्र एवं जम्बू (जामुन) वृक्ष- इन सबकी छाल समान मात्रा में लेकर पीस लें। इन्हीं के साथ मुलेठी, कट्फल (काफल) एवं लाक्षा का चूर्ण बनाकर मिला लें। इन सबका लेप करने से व्रण का रोपण हो जाता है- अर्थात् घाव भर जाता है।

व्रणरोपण-शोधन घृत

तिक्ता-सिक्थ-निशा-यष्टी-नक्ताह्वफलपल्लवैः।
पटोलमालती-निम्ब-पत्रैर्व्रण्यं घृतं श्रृतम् ।।१५।।

तिक्ता (कुटकी), सिक्थ (मधुमक्खी के छत्ते से निकला मोम), हल्दी, मुलेठी, नक्तमाल (करञ्ज) के फल व पत्ते, पटोलपत्र, मालतीपत्र व निम्बपत्र- इन सबके साथ सिद्ध किया घृत व्रण के शोधन व रोपण के लिए हितकर होता है।

व्रणरोपण तैल

प्रपौण्डरीक-यष्ट्याह्वाकाकोलीद्वयचन्दनैः।
तैलं सिद्धं व्रणं हन्ति क्षीर-वृक्ष-कषायवत् ।।१६।।

प्रपौण्डरीक, मुलेठी, काकोली, क्षीरकाकोली एवं चन्दन से सिद्ध किया गया तेल व्रण को समाप्त कर देता है। इसी प्रकार क्षीरी (दूध वाले वट आदि) वृक्षों का कषाय भी व्रण को समाप्त कर देता है।

व्रण के शोधन व रोपण हेतु अन्य उपाय

चैल-पट्टादिभिर्बन्धो व्रणशोधनरोपणः।
करञ्जप्लक्षजम्ब्वादि-पत्रदानं च शस्यते।।१७।।

चैल (वस्त्र) एवं पट्ट (पट्टी) आदि से व्रण का बन्धन करना चाहिए। इससे व्रण का शोधन व रोपण होता है। व्रण के ऊपर करञ्ज, प्लक्ष एवं जामुन आदि के पत्ते भी बांधने चाहिए। ये भी व्रण के शोधन व रोपण के लिए उत्तम माने जाते हैं।

व्रणकृमिहर योग

व्रणेभ्यः क्रिमिजुष्टेभ्यः सुरसादिर्गणो हितः।
कलाय-विदली-पत्रं कोशाम्रास्थि च पूरणम्।।१८।।

जिन व्रणों में कृमि पैदा हो गए हों, उनके लिए सुरसा (तुलसी) आदि द्रव्यों का रस-सेचन व लेपन करना हितकर होता है। कलाय (मटर) एवं विदली के पत्र तथा कोशाम्र की गुठली का लेपन करने से व्रण भर जाते हैं। अन्यत्र भी कहा है- **'सुरसादिरसासेको लेपनं लशुनेन वा'** (गदनिग्रह, शल्यतन्त्र- ३.७१) अर्थात् कृमियुक्त व्रण पर तुलसी आदि के रस का सेचन और लशुन आदि का लेपन करने से कृमि नष्ट हो जाते हैं।

व्रण में शल्यचिकित्सा-विधि

नाडीनां गतिमन्विष्य शस्त्रेणापाट्य कर्मवित्।
सर्वं व्रणक्रमं कुर्याच्छोधनारोपणादिकम्।।१९।।

कर्मवित् (शल्यक्रिया-विशेषज्ञ) वैद्य को चाहिए कि नाड़ियों की गति का अन्वेषण करने के उपरान्त शस्त्र से उत्पाटन कर व्रणचिकित्सा में उपयोगी सम्पूर्ण क्रियाविधि को सम्पन्न करें तथा व्रणों के शोधन व रोपण आदि कर्म भी करे।

व्रण में शल्यनिर्हरण-विधि

सशल्याच्छल्यमाहृत्य क्षतात्कङ्कमुखेन तु।
व्रणोपसंहितं कार्यं यथाविधि भिषग्जितम्।।२०।।

शल्य सहित क्षत (घाव) से 'कङ्कमुख' नामक शस्त्र से शल्य (अन्दर फँसे हुए कील, कांटे या नुकीले काष्ठ आदि) को निकालकर यथाविधि व्रणोपसंहित (व्रण को सीने की) चिकित्सा करनी चाहिए।

व्रण में बृंहणीय विधि एवं शोधन की उपयोगिता

बृंहणीयो विधिः कार्यश्चिरोत्थक्षतशोषिणाम्।
दुष्टव्रणेष्वसृङ्मुक्तिरूर्ध्वं चाधश्च शोधनम्।।२१।।

चिरकाल से हुए घाव के कारण क्षीण हुए व्यक्तियों के लिए बृंहणीय विधि (घृत, दुग्ध आदि पौष्टिक भोजन से शरीर को पुष्ट करने की प्रक्रिया) अपनानी चाहिए। व्रण के दूषित होने पर उसमें से दूषित रक्त को निकाल देना चाहिए तथा शरीर के शोधन हेतु वमन एवं विरेचन करवाना चाहिए।

आगन्तु व्रण की प्रारम्भिक चिकित्सा

बद्ध्वागन्तु-व्रणं सद्यो घृतक्षौद्रसमन्वितम्।
शीता क्रिया प्रयोक्तव्या पित्तरक्तोष्मनाशनी।।२२।।

आगन्तु व्रण को घृत एवं मधु लगाकर तुरन्त बाँध देना चाहिए तथा पित्तरक्त और उष्णता को शान्त करने वाली शीतल क्रिया करनी चाहिए।

व्रण में पट्टिकाबन्धन विधि

क्षीरित्वक्-कुशिकाबन्धः स्थिरः स्याद् घृत-चैलवान्।
भिन्नास्थिच्युतसन्धेश्च पाको रक्ष्यः प्रयत्नतः।।२३।।

व्रण के ऊपर घृत एवं वस्त्र युक्त क्षीरीत्वक् (दूध वाले वृक्षों की छाल) के साथ कुशिकाबन्ध (खपची का बन्धन) इस प्रकार करना चाहिए, जिससे वह स्थिर रहे, हिले-डुले नहीं। जिसमें अस्थि (हड्डी) टूट गई हो या अपने स्थान से हट गई हो, ऐसे व्रण को प्रयत्नपूर्वक पकने से बचाना चाहिए।

व्रण में पथ्यापथ्य

शालिमुद्गयवानद्याज्जाङ्गलं च सदा व्रणी।
दधिक्षीराम्लगुर्वन्नं मैथुनं च विवर्जयेत्।।२४।।

व्रण वाले व्यक्ति को सदा शालि, मुद्ग एवं यव से बना भोजन करना चाहिए तथा दही, दूध, खट्टे पदार्थ, गुरु भोजन एवं मैथुन से सदा दूर रहना चाहिए।

।। इति व्रणाध्याय: पञ्चविंशतितम: समाप्त:।।

षड्विंश अध्याय

शालाक्य तन्त्र

(नेत्र, नासा, कर्ण, जिह्वा, दन्त, मुख, कण्ठ एवं सिर के रोग)

नेत्ररोग

निमिप्रोक्त शालाक्य तन्त्र का संक्षेपीकरण

यद्विदेहाधिपेनोक्तं तन्त्रं शालाक्यसञ्ज्ञकम्।
विस्तीर्णत्वान्न सर्वोक्तिस्तस्य लेशो विधीयते।।१।।

विदेहाधिपति (विदेह देश के राजा निमि) ने आयुर्वेद के जिस शालाक्य तन्त्र का उपदेश किया था, वह बहुत विस्तृत था, उसे यहाँ सम्पूर्ण रूप से उद्धृत करना सम्भव नहीं है। अत: उसका संक्षिप्त रूप यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

अति प्राचीन काल में विदेहराज निमि ने बहुत विस्तृत 'शालाक्य तन्त्र' की रचना की थी, जिसमें कण्ठ, कर्ण, नेत्र, नासिका, मुख, दन्त एवं सिर के रोगों का विस्तृत निदान तथा चिकित्सा का वर्णन था। राजर्षि निमि के उस ग्रन्थ से बहुत से उद्धरण परवर्ती ग्रन्थकारों ने आदरपूर्वक उनका नामोल्लेख करते हुए अपने ग्रन्थों में प्रस्तुत किए हैं। विदेहराज निमि का यह 'शालाक्य तन्त्र' 'सिद्धसार-संहिता' के रचयिता आचार्य रविगुप्त के समय में भी उपलब्ध था, अत एव वे कहते हैं कि उसे पूर्ण रूप से उद्धृत करना यहाँ सम्भव नहीं, इसलिए उसका संक्षेप किया जा रहा है। निमि के नाम से आयुर्वेद के आचार्यों द्वारा उद्धृत श्लोकों का संकलन किया जाए तो एक बहुत बड़ा संग्रह सामने आ सकता है।

नेत्र की रचना पञ्चभूतमय

क्षिति-ज्योतिर्जलवायुः पिण्डं रक्तसितासितम्।
स्वमार्गगुणमाकाशं नयनबुद्बुदं वदेत्।।२।।

नयन रूप बुद्बुद में क्षिति (पृथ्वी) के अंश से पिण्ड जैसा आकार, ज्योति (अग्नि) के अंश से रक्त भाग, वायु के अंश से कृष्ण भाग तथा जल के अंश से श्वेत भाग बनता है। इसमें आकाश महाभूत से अश्रुओं का मार्ग रूप अवकाश (स्पेस) बनता है। इस प्रकार पञ्च महाभूतों के मेल से यह नयनबुद्बुद (नेत्र रूपी बुलबुला) बना है। यहाँ नयन को बुद्बुद इसलिए कहा है कि यह बुलबुले के आकार जैसा दिखता है। यही तथ्य सुश्रुतसंहिता में और अधिक स्पष्ट रूप में वर्णित है-

पलं भुवोऽग्नितो रक्तं वातात् कृष्णं सितं जलात्।
आकाशादश्रुमार्गाश्च जायन्ते नेत्रबुद्बुदे।।(सु.सं., उत्तरतन्त्र-१.१२)

अर्थात् नेत्र में पृथ्वी तत्त्व से मांस भाग, अग्नि तत्त्व से रक्त भाग, वात से कृष्ण भाग तथा जल से श्वेत भाग बनता है। इसमें आकाश से अश्रुमार्ग बनें है। इस प्रकार पञ्च महाभूतों से नेत्रबुद्बुद की रचना हुई है।

चार प्रकार का नेत्राभिष्यन्द

वातात् पित्तात्कफाद् रक्तादभिष्यन्दश्चतुर्विधः।
प्रायेण जायते घोरः सर्वनेत्रामयाकरः।।३।।

प्रायः वात, पित्त व कफ के प्रकोप एवं दूषित रक्त से चार प्रकार का घोर अभिष्यन्द प्रकट हो जाता है। यही सभी नेत्ररोगों को पैदा करता है। अभिष्यन्द का अर्थ है- पीड़ा, खुजली, लालिमा और शोथ आदि के साथ आँखों से बहने वाला स्राव।

वातज व पित्तज अभिष्यन्द के लक्षण

शीताश्रुशुष्कदूषीकारुक्स्तम्भैर्वातिकः स्मृतः।
उष्णाश्रु-पीतदूषीका-दाह-रागैश्च पैत्तिकः।।४।।

शीतल अश्रु, शुष्क दूषीका (सूखी गीड़ आना), पीड़ा एवं स्तब्धता (जकड़न)- इन लक्षणों से वातिक अभिष्यन्द जाना जाता है। उष्णाश्रु (गर्म आँसू आना), पीत दूषीका (पीली गीड़), दाह, राग (लालिमा)- इन लक्षणों से पैत्तिक अभिष्यन्द की पहचान होती है।

कफज एवं रक्तज अभिष्यन्द के लक्षण

सितोपदेहपिच्छाश्रुकण्डूशोफैः कफात्मकः।
ताम्राश्रुरक्ततादाहै रक्तजो रक्तराजिमान्।।५।।

आँखों में चिपचिपे श्वेत मल का आना, चिपचिपाहट युक्त अश्रु आना, आँखों में खुजली एवं शोफ से कफात्मक अभिष्यन्द की पहचान होती है। लालिमा युक्त आँसू, रक्तस्राव एवं दाह (जलन) से रक्तज अभिष्यन्द की जानकारी होती है। इसमें आँखों में लाल धारियाँ प्रकट रूप में दिखती हैं।

अभिष्यन्द का परिणाम अधिमन्थ

अभिष्यन्दः प्रवृद्धः स्यादधिमन्थः स्वलक्षणैः।
तीव्रमूर्द्धार्द्ध-नेत्रार्तिर्विषमाहितसेविनाम्।।६।।

विषम एवं अपथ्य भोज्य पदार्थों का सेवन करने वालों का अभिष्यन्द पूर्ववर्णित अपने लक्षणों के साथ जब अधिक बढ़ जाता है, तो वह 'अधिमन्थ' कहलाता है। इसमें तीव्र आधाशीशी (अर्द्धावभेदक/आधे सिर में होने वाला दर्द) एवं नेत्रपीड़ा होती है।

अभिष्यन्दहर योग

सुखाम्बुपिष्टसम्भूतैः शर्करालोध्रसैन्धवैः।
पूरणं वातिके तद्वत् सितानागरशाबरैः।।७।।

वातिक अभिष्यन्द में शर्करा, लोध्र एवं सैन्धव को शीतल जल के साथ पीसकर नेत्रों में लगाना चाहिए। इसी प्रकार सिता (शर्करा), नागर (सोंठ) एवं शाबरलोध्र को शीतल जल के साथ पीसकर लगाना चाहिए।

कुरण्टपुष्पयष्ट्याह्वसिताविश्वैः समस्तुभिः।
शुण्ठीसैन्धवयष्ट्याह्वलोध्रैर्भृष्टैर्घृतेन वा।।८।।

वातज अभिष्यन्द में कुरण्टपुष्प, मुलेठी, सिता (श्वेता), शुण्ठी एवं मस्तु- इन्हें पीसकर आँखों में लगाना चाहिए अथवा शुण्ठी, सैन्धव, मुलेठी एवं लोध्र को घी में भूनकर व पीसकर लगाना चाहिए। इससे वातज अभिष्यन्द नष्ट हो जाता है।

नेत्रशूलहर योग

यष्टीचन्दनमञ्जिष्ठा-लोध्रकाञ्चनगैरिकैः।
पूरणं तीव्रशूलघ्नं तथा बिल्वादिनाम्भसा।।९।।

मुलेठी, चन्दन, मञ्जिष्ठा, लोध्र एवं काञ्चनगैरिक (सोनागेरू) को पीसकर आँख में लगाने से तीव्र शूल (दर्द) नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार बिल्व आदि से साधित जल से नेत्रपूरण करने पर भी तीव्र शूल नष्ट हो जाता है।

नेत्रशूलहर आश्च्योतन

एरण्डेन शृतं क्षीरमाजमाश्च्योतनं परम्।
शूलघ्नं वा कणोदीच्ययष्टीसैन्धवसाधितम्।।१०।।

एरण्ड के बीज की गिरी के साथ बकरी के दूध को पकाकर शीतल होने पर आँख में डालें। यह अति उत्तम आश्च्योतन है तथा नेत्रपीड़ा को नष्ट करता है। कणा (पिप्पली), उदीच्य (सुगन्धबाला), मुलेठी एवं सैन्धव के साथ सिद्ध बकरी का दूध भी इसी प्रकार का उत्तम आश्च्योतन होता है तथा नेत्रपीड़ा को दूर करता है।

नेत्रशूलहर अञ्जन

आयसे ताम्रपत्रे वा सैन्धवं दधिमर्दितम्।
कांसघृष्टे निशाकृष्णे त्वञ्जनं चाक्षिशूलनुत्।।११।।

लोहे अथवा ताँबे के पात्र में दही के साथ पिसा हुआ सैन्धव लवण उत्तम प्रकार का अञ्जन है। इससे नेत्रपीड़ा दूर हो जाती है। इसी प्रकार कांस्य (कांसे) के पात्र में हल्दी और पिप्पली को घिसकर बनाया अञ्जन भी नेत्रपीड़ा को दूर करता है।

पित्तजनेत्ररोग-नाशक योग

प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्व-निशामलकपद्मकैः।
शृतैर्मधुसितायुक्तः सेकः पित्ताक्षिरोगनुत्।।१२।।

प्रपौण्डरीक (शालपर्णी सदृश पौधा/पुण्डेरी), मुलेठी, हल्दी, आमलकी एवं पद्मक (पद्माख)- इन्हें उबालकर छान लें। इनके शीतल क्वाथ में उचित मात्रा में शर्करा व मधु मिलाएं। इससे नेत्रों का सेचन करने से पित्तजन्य नेत्ररोग दूर हो जाते हैं।

चन्दनारिष्टपत्राणि यष्टीदार्व्योः ससैन्धवैः।
पिष्ट्वाम्भसा भवेत् सेकः पैत्ते क्षौद्रसितान्वितः।।१३।।

चन्दन व अरिष्ट (निम्ब) के पत्र लें तथा दोनों प्रकार की हल्दी (हल्दी एवं दारुहल्दी) लें। इनमें थोड़ा सैन्धव लवण मिलाकर पानी के साथ पीस लें। तदनन्तर इस द्रव में मधु व शर्करा मिलाकर आँखों का सेचन करें। इस योग से पित्तजन्य अभिष्यन्द नष्ट हो जाता है।

कफाभिष्यन्द-नाशक योग

द्वौ द्वौ भागौ रजन्योः स्वभागिकौ धूमसर्षपौ।
कफाभिष्यन्दजिद् दृष्टं पिष्ट्वाश्च्योतनमम्भसा।।१४।।

हल्दी एवं दारुहल्दी के दो-दो भाग लें, धूम (शिलारस) एवं सर्षप

(सरसों) का एक-एक भाग लें। इन्हें जल के साथ पीसकर आश्च्योतन (नेत्रों में टपकाने योग्य द्रव) तैयार करें। यह आश्च्योतन कफजन्य अभिष्यन्द को नष्ट कर देता है।

निम्बाक्तपुटसम्पक्वं लोध्रभागचतुष्टयम्।
धूमसर्षपयोर्भागौ कफे सेकः सुखाम्बुना।।१५।।

लोध्र के चार भाग लें, धूम (शिलारस) व सर्षप (सरसों) के दो भाग लें, इन्हें निम्ब पत्रों के रस के साथ पुटसम्पक्व कर लें अर्थात् बन्द मुख वाले पात्र में पुटपाक विधि से पकाकर द्रव तैयार करें। इसमें कुछ सुखाम्बु (हल्का उष्ण जल) मिलाकर आँखों का सेचन करें। इससे कफजन्य अभिष्यन्द दूर हो जाता है।

रक्ताभिष्यन्द-नाशक योग

तिरीट-त्रिफला-यष्टी-शर्करा-भद्रमुस्तकैः।
पिष्टैः शीताम्बुना सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः।।१६।।

तिरीट (लोध्र), त्रिफला, मुलेठी, शर्करा, भद्रमुस्तक- इन सबको पीसकर शीतल जल मिला लें। इसे छानकर आँखों पर सेचन करें, इससे रक्तजन्य अभिष्यन्द दूर हो जाता है।

सर्वाभिष्यन्द-नाशक योग

लोध्र-यष्टी-निशा-दार्वी-तार्क्ष्य-शैलैरजापयः।
दार्व्या वा मधुना क्वाथः सर्वाभिष्यन्दपूरणम्।।१७।।

लोध्र, मुलेठी, हल्दी, दार्वी (दारुहल्दी), तार्क्ष्य (रसाञ्जन), शैल (सिह्लक/शिलारस)- इन्हें पीसकर बकरी के दूध के साथ मिला लें तथा छानकर पूरण (आश्च्योतन) तैयार करें, इसे नेत्रों में डालने से सभी प्रकार का अभिष्यन्द नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार दार्वी (दारुहल्दी) का मधुमिश्रित क्वाथ भी सभी अभिष्यन्दों में उत्तम पूरण (आश्च्योतन) होता है।

अक्षिकोपहरी गुटिका

लोध्रधात्र्यौ घृतोद्भृष्टौ पिष्ट्वा दत्वा मनःशिलाम्।
प्रमृज्याद् गुडिकां कृत्वा कुपितं लोचनं बहिः।।१८।।

लोध्र एवं धात्री (आंवले) को घी में भूनकर पीसें तथा उनमें मैनसिल मिलाकर गोली बना लें। कुपित लोचनों (आई हुई आँखों) को बाहर से-अर्थात् पलकों के ऊपर इस गोली द्वारा परिमार्जित करें, हल्का मसलें। इससे अक्षिकोप (आँखों का आना) शान्त हो जाता है।

अक्षिकोपहर चूर्णयोग

वस्त्रबद्धशकृद्वारि-स्विन्नारण्यकुलत्थजम्।
चूर्णं सद्योऽक्षिकोपघ्नं निशीथे योजितं सकृत्।।१९।।

वस्त्र में बांधे गोबर के अन्दर रखकर वन्य कुलत्थ (जंगली कुलथी) को स्विन्न कर कोमल कर लें; तदनन्तर इसे पीसकर रात को आँखों की पलकों पर लेप करें। इस प्रयोग के एक बार करने से शीघ्र ही अक्षिकोप (आँखों का आना) शान्त हो जाता है।

अक्षिकोपहर गुण्ठन (पट्टी)

भागः स्याच्छिग्रुबीजस्य लोध्रस्याष्टौ शिलात्रयम्।
विचूर्ण्य वस्त्रसम्बद्धं गुण्ठनं कुपिताक्षिणि।।२०।।

शिग्रुबीज एक भाग, लोध्र आठ भाग एवं शिलारस तीन भाग लें। इन्हें पीसकर कुपित आँखों की पलकों पर लेप करें और ऊपर से वस्त्र की पट्टी बांधे। इससे अक्षिकोप का कष्ट दूर हो जाता है।

सर्वनेत्रहर योग

रसाञ्जनाभयादार्वीगैरिकैः सैन्धवान्वितैः।
जलपिष्टैर्बहिर्लेपः सर्वनेत्रामयापहः।।२१।।

रसाञ्जन, अभया (हरीतकी), दार्वी (दारुहल्दी), गैरिक एवं सैन्धव लवण- इन्हें जल के साथ पीसकर नेत्रों के बाहरी भाग पर लेप करना चाहिए। इससे सभी नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं।

अधिमन्थ में सिरावेधन

अधिमन्थेषु सर्वेषु ललाटे व्यधयेत् सिराः।
यथोक्ता च प्रयोक्तव्या साभिष्यन्दोचिता क्रिया।।२२।।

सभी प्रकार के अधिमन्थ में ललाट की सिरा का वेधन करें और पूर्ववर्णित अभिष्यन्दोचित चिकित्सा करें।

शुक्रनामक नेत्ररोग का स्वरूप

कृष्णभागे सितबिन्दुं शुक्रं विद्यात्कफान्वयम्।
रक्तं च शुक्लभागस्थमर्जुनं शोणितोद्भवम्।।२३।।

नेत्रों के गोल कृष्ण भाग में जो श्वेत बिन्दु बन जाता है, उसे कफजन्य 'शुक्र' जानना चाहिए। इसी प्रकार नेत्र के श्वेत भाग में जो लाल बिन्दु बन जाता है, उसे रक्तजन्य 'अर्जुन' जानना चाहिए।

शुक्ररोगहर योग

ताप्यं मधूकसारो वा बीजं वाक्षस्य सैन्धवम्।
मधुनाञ्जनयोगाः स्युश्चत्वारः शुक्रशान्तये।।२४।।

ताप्य (सोनामाखी) को मधु के साथ घिसकर अञ्जन बनाएं। इसी प्रकार मधूकसार, अक्ष (बहेड़े) के बीज अथवा सैन्धव लवण को पीसकर मधु के साथ मिलाकर अञ्जन बनाएं। ये चार अञ्जन उक्त प्रकार के नेत्रगत 'शुक्र' को नष्ट कर देते हैं।

स्फटिकोषणयष्ट्याह्व-शङ्खगोदन्तसैन्धवैः।
सशिलाचन्दनैर्वर्तिः शुक्रघ्नी शिग्रुवारिणा।।२५।।

स्फटिक (फिटकरी), ऊषण (कालीमिर्च), मुलेठी, शङ्ख, गोदन्त (गाय का दाँत), सैन्धव, शिला (मैनसिल) एवं चन्दन- इन सबको पीसकर बनाई गई वर्त्ति का शिग्रुजल (सहिजनपत्र-स्वरस) के साथ प्रयोग करें- अर्थात् इसे शिग्रुजल में घिसकर आँख में लगाएं। यह आँख के शुक्र को नष्ट करती है।

शुक्रादि-नेत्ररोगहर अन्य योग

समुद्रफेनदक्षाण्डत्वक्सिन्धूत्थैः सशङ्खकैः।
शिग्रुबीजयुतैर्वर्तिः शुक्रादीन् शस्त्रवल्लिखेत्।।२६।।

समुद्रफेन, दक्ष (कुक्कुटी/मुर्गी) के अण्डे का खोल, सैन्धव लवण, शंख एवं शिग्रुबीज को पीसकर तैयार की गई वर्त्ति आँख के 'शुक्र' आदि विकारों को ऐसे उखाड़ देती है, जैसे शस्त्रक्रिया। भाव यह है कि उक्त वर्ति लेखन कर्म द्वारा शुक्रादि विकारों को समूल नष्ट कर देती है।

दक्षाण्डत्वक्शिलाशङ्खकाचचन्दनसैन्धवैः।
तुल्यैरञ्जनयोगोऽयं पुष्पार्मादिविशोधनः।।२७।।

दक्षाण्डत्वक् (कुक्कुटी/मुर्गी के अण्डे का खोल), शिला (मैनसिल), शंख, काचभस्म एवं चन्दन- इन्हें तुल्य मात्रा में मिलाकर अञ्जन बनाएं। यह आँख के पुष्पार्म (आँख में पड़ने वाले फूले) आदि को नष्ट कर देता है।

चन्दनं सैन्धवं पथ्या पलाशतरुशोणितम्।
क्रमवृद्धमिदं चूर्णं शुक्रार्मादिविलेखनम्।।२८।।

चन्दन, सैन्धव, हरड़, पलाशवृक्ष का शोणित (लाल निर्यास)- इनमें उत्तरोत्तर को अधिक मात्रा में लेकर पीस लें। यह योग शुक्रार्म आदि को नष्ट कर देता है।

क्षतशुक्रहरी वर्ति

मालतीकलिकालाक्षागिरिमृच्चन्दनैः समैः।
क्षतशुक्रहरी वर्तिः शोणितस्य प्रसादनी ।।२९।।

मालतीकलिका (मालती की कली), लाक्षा, गिरिमृत्तिका (गेरू) एवं चन्दन- इन्हें सम मात्रा में मिलाकर पीस लें। इनसे बनी वर्ति आँख के क्षत (घाव) एवं शुक्र को नष्ट कर देती है तथा रक्त का प्रसादन करती है।

शुक्रहर अञ्जन

शङ्खं क्षौद्रेण संयुक्तं कतकं सैन्धवेन वा।
सितयार्णवफेनो वा पृथगञ्जनमर्जुने।।३०।।

मधुयुक्त शंख का अञ्जन बनाएं अथवा सैन्धव लवण युक्त कतक (निर्मली) का अञ्जन बनाएं। ये अञ्जन नेत्र के शुक्र को नष्ट कर देते हैं। इसी प्रकार शर्करा के साथ बनाया समुद्रफेन का अञ्जन भी नेत्रगत शुक्र को नष्ट कर देता है।

नक्तान्ध्य (रतौंधी) नाशक योग

जातीपत्ररस-क्षौद्र-निशाद्वय-रसाञ्जनैः।
नक्तान्ध्यमञ्जनं हन्यात् कृष्णा वा गोशकृच्छ्रता।।३१।।

जातीपत्र (चमेली के पत्तों) का स्वरस, मधु, दोनों प्रकार की हल्दी एवं रसाञ्जन- इनसे तैयार किया गया अञ्जन रतौंधी रोग को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार गाय के गोबर के साथ पकाई गई पिप्पली को घिसकर लगाने से भी रतौंधी रोग नष्ट हो जाता है।

पिल्लरोगहर योग

शिलारसाञ्जनव्योषगोपित्तैर्वर्तिरञ्जनम्।
पिल्लघ्नं छागमूत्रेण भावितं देवदारु वा।।३२।।

शिला (मैनसिल), रसाञ्जन, त्रिकटु एवं गोपित्त (गोरोचना) से बनाई वर्ति का अञ्जन नेत्रगत पिल्ल (चिपचिपाहट वाले नेत्ररोग) को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार छागमूत्र (बकरी के मूत्र) से भावित देवदारु को घिसकर अञ्जन करने से भी यह रोग नष्ट हो जाता है।

क्लिन्नवर्त्महरी वर्ति

अलदारुवचाः पिष्ट्वा सुरसापत्रवारिणा।
छायाशुष्क कृता वर्तिः क्लिन्नवर्त्मनिवारणी।।३३।।

अल (हरताल), दारु (दारुहल्दी) एवं वचा को सुरसा (तुलसी) के पत्तों के रस के साथ पीसें तथा छाया में सुखाकर वर्ति बना लें। यह वर्ति नेत्र के क्लिन्नवर्त्म (क्लिष्ट वर्त्मरोग) को दूर कर देती है।

पिल्लरोगहर योग

अलसौवीरयोस्ताम्रं द्विगुणं श्लक्ष्णचूर्णितम्।
अञ्जनं पिल्लरोगघ्नं सव्योषं वा रसाञ्जनम्।।३४।।

अल (हरताल) एवं सौवीर (सुरमा) से द्विगुण ताम्र (ताँबे) को श्लक्ष्ण पीसकर (घिसकर) अञ्जन करें। यह पिल्ल रोग को हर लेता है। इसी प्रकार त्रिकटु सहित रसाञ्जन भी पिल्ल रोग को नष्ट कर देता है।

तिमिररोग का सामान्य लक्षण

सर्वेषां तिमिराणां च दृष्टेराकुलता भृशम्।
सामान्यलक्षणं ज्ञेयं वैशेषिकमतः परम्।।३५।।

सभी तिमिर रोगों में दृष्टि की आकुलता विशेष रूप से हो जाती है। यह तिमिर रोगों का सामान्य लक्षण है। आगे उनका विशेष लक्षण बताते हैं।

वातज व पित्तज तिमिररोग के लक्षण

चलाविलारुणाभासं रूपं पश्येन्नभस्वता।
नीलं पीतं च पित्तेन शिखिखद्योतविद्युतः।।३६।।

वातज विकार के कारण नेत्ररोगी चञ्चल, आविल (अस्पष्ट या मलिन) एवं अरुणाभास (लालिमायुक्त) रूप को देखता है। पित्तज विकार के कारण नील एवं पीत रूप तथा अग्नि, खद्योत (जुगनू) व बिजलियों को देखता है।

कफज व रक्तज तिमिररोग के लक्षण

स्निग्धश्वेतानि रूपाणि स्तिमितानि बलासतः।
अतिरक्तानि रक्तेन सर्वैः सर्वाणि चेक्षते।।३७।।

कफ विकार के कारण नेत्ररोगी स्निग्ध, श्वेत एवं निश्चल रूपों को देखता है। रक्तजन्य विकार के कारण अत्यन्त लाल वर्ण के रूप देखता है तथा इन सभी विकारों वाला नेत्ररोगी उक्त सभी प्रकार के रूप देखता है।

तिमिर से सम्बद्ध काच रोग

तिमिराणां स्वरूपैश्च काचा ज्ञेयास्तदन्वयाः।
कफजस्तेषु साध्यः स्याद् व्यधनं तस्य शस्यते।।३८।।

तिमिर रोगों के स्वरूपानुसार उन्हीं से सम्बद्ध काच रोग भी जानने चाहिए। उनमें कफज रोग साध्य होता है। उसमें व्यधन (सिरावेधन) करना प्रशस्त माना जाता है।

तिमिररोग-चिकित्सा- तिमिरहरी वर्त्ति

अक्षास्थि-मधुयष्ट्याह्व-धात्री-मरिच-तुत्थकैः।
जलपिष्टैः कृता वर्तिस्तिमिराणि व्यपोहति।।३९।।

बहेड़े की गुठली, मुलेठी, आंवला, कालीमिर्च एवं तुत्थक (तूतिया)- इन सबको जल के साथ पीसकर बनाई गई वर्त्ति तिमिर रोगों को नष्ट कर देती है।

तिमिरहरी 'कोकिला' गुडिका

व्योषायश्चूर्णसिन्धूत्थत्रिफलाञ्जनसंस्कृता।
गुडिका जलपिष्टेयं कोकिला तिमिरापहा।।४०।।

त्रिकटु, लोहभस्म, सैन्धव लवण, त्रिफला एवं स्रोतोञ्जन से संस्कृत एवं जल के साथ पीसकर बनाई गई 'कोकिला' नामक गुटिका (गोली)

तिमिर रोग को नष्ट कर देती है।

सर्वनेत्ररोगहरी वर्त्ति- १.

हरिद्रामलकी-कृष्णा-कतक-श्वेतसर्षपैः।
व्योमवारियुतैर्वर्तिः सर्वनेत्रामयापहा।।४१।।

हरिद्रा, आमलकी, पिप्पली, कतक (निर्मली), श्वेत सर्षप (सफेद सरसों)- इन्हें आकाशजल (वर्षा के पानी) के साथ पीसकर वर्त्ति बनाएं। यह वर्ति सभी नेत्ररोगों को नष्ट कर देती है।

सर्वनेत्ररोगहरी वर्त्ति- २.

व्याघ्रीयुक्ताम्रयष्ट्याह्वपिप्पलीसैन्धवैर्युतैः।
अजाक्षीरोषितैस्ताम्रे वर्तिः सर्वाक्षिरोगजित्।।४२।।

व्याघ्री (कण्टकारी), युक्ता (रास्ना), आम्र, मुलेठी, पिप्पली, सैन्धव लवण- इन्हें बकरी के दूध में डालकर ताम्र के पात्र में कुछ समय तक रखें तदनन्तर इन्हें पीसकर वर्त्ति बनाएं। यह वर्त्ति सभी नेत्ररोगों को नष्ट कर देती है।

तिमिरादिहरी दन्तवर्त्ति

चतुष्पदद्विजा लाक्षा करञ्जबृहतीफलैः।
प्लवोष्ट्रमत्स्यकास्थीनि विडङ्गं व्योषमामयम्।।४३।।
जलपिष्टैरिमैस्तुल्यैर्दन्तवर्तिरिति श्रुता।
तिमिरार्बुदकाचार्मव्रणशुक्रादिनाशनी।।४४।।

चौपाये प्राणियों के दाँत, लाक्षा, करञ्ज, बृहतीफल तथा प्लव (पक्षिविशेष), उष्ट्र (ऊँट) एवं मत्स्य (मछली) की अस्थियाँ, विडङ्ग, त्रिकटु एवं आमय (कूठ)- इन सभी को जल के साथ पीसकर वर्त्ति बनाएं। यह 'दन्तवर्त्ति' नाम से प्रसिद्ध है। दन्तवर्त्ति तिमिर, अर्बुद, काच, अर्म, व्रण एवं शुक्रार्म आदि नेत्ररोगों को नष्ट करती है।

काचादिहरी रसक्रिया

शिलासैन्धवकासीसशङ्खव्योषरसाञ्जनैः।
सक्षौद्रैः काचशुक्रार्मतिमिरघ्नी रसक्रिया।।४५।।

शिला (मैनसिल), सैन्धव लवण, कासीस, शंख, त्रिकटु एवं रसांजन- इन्हें पीसकर मधु मिलाएं; तदनन्तर इन्हें भली भाँति पकाकर रसक्रिया करें- अर्थात् गाढ़ा रस बनाएं। इस प्रकार तैयार यह गाढ़ द्रव काच, शुक्रार्म एवं तिमिर रोगों को नष्ट कर देता है। '**क्वाथादीनां पुनः पाके घनभावे रसक्रिया**' अर्थात् क्वाथ आदि को पुनः पकाकर गाढ़ा बनाने को 'रसक्रिया' कहते हैं।

तिमिरहर अञ्जन- १.

कपित्थरससंघृष्टं गन्धकं द्विगुणं रसात्।
अञ्जनं तिमिरध्वंसि सौवीरं वाब्दपादिकम्।।४६।।

कपित्थ (कैंथ) के रस में गन्धक को घिसें। गन्धक की मात्रा रस से द्विगुण होनी चाहिए। इससे बना अञ्जन तिमिर रोग को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार सौवीर नाम अञ्जन में चतुर्थांश मुस्तक मिलाकर तैयार किया गया अञ्जन भी तिमिर रोग को नष्ट कर देता है।

तिमिरहर अञ्जन-२.

नागशुल्वालवंगाढ्यगन्धकाञ्जनजैर्भवेत्।
त्रिंशद् द्विधैकपञ्चत्रिभागैः पक्वैः सदाञ्जनम्।।४७।।

नाग (सीसा) ३० भाग, शुल्व (ताँबा) एवं अल (हरताल) २-२ भाग, वंग १ भाग, गन्धक ५ भाग तथा अञ्जन (काला सुरमा) ३ भाग लें। इन सबको पीसकर सम्पुट में रख जलते हुए कोयले में रख धौंकनी से पकाएं, भस्म बनाएं; तदनन्तर महीन पीसकर रख लें। इस अञ्जन का सदा प्रयोग करना चाहिए। यह तिमिर रोग को नष्ट कर देता है।

यह योग 'सिद्धसार-संहिता' से पूर्ववर्ती 'अष्टांगहृदय' (उत्तरस्थान-१३.३१-३२) में भी वर्णित है। वहाँ इसकी शब्दावली कुछ भिन्न है। इस योग में प्रयुक्त द्रव्यों का शोधन के उपरान्त ही प्रयोग करना चाहिए। शोधनविधि 'रसेन्द्रसार-संग्रह' आदि रसशास्त्रीय ग्रन्थों में वर्णित है।

तिमिरहर अञ्जन- ३.

सौवीरमाज्यमध्वक्तं धात्रीदिग्धाभयोदरे।
बादरानलसम्पक्वं परं तिमिरनाशनम्।।४८।।

घृत व मधु से युक्त सौवीराञ्जन को आंवले से युक्त अभया (हरड़) के साथ शराव-सम्पुट में रखकर बेर की लकड़ियों की अग्नि से पकाएं। इससे बना अञ्जन तिमिर रोग को नष्ट कर देता है।

सौगत अञ्जन

निशाद्वयाभयामांसीकुष्ठकृष्णा विचूर्णिता:।
सर्वनेत्रामयान् हन्यादेतत्सौगतमञ्जनम् ।।४९।।

दोनों प्रकार की हल्दी, हरड़, मांसी (जटामांसी), कुष्ठ (कूठ), पिप्पली-इन सभी को पीसकर बनाया गया अञ्जन सभी नेत्ररोगों को नष्ट कर देता है। यह 'सौगत' अञ्जन के रूप में प्रसिद्ध है। 'सुगत' शब्द भगवान् बुद्ध का पयार्यवाची है, अत: 'सुगत' के नाम पर बनाया हुआ अञ्जन 'सौगत' कहलाता है।

मषी अञ्जन

वदने कृष्णसर्पस्य सघृतं दग्धमञ्जनम्।
मांसी-पत्रकसंयुक्तं चूर्णितं तिमिरापहम्।।५०।।

(मरे हुए) काले सर्प के मुख में घृत सहित अञ्जन को शराव-सम्पुट में रखकर जलाएं; तदनन्तर इसकी भस्म में जटामांसी व पत्रक (तेजपात)

मिलाकर पीसें। इस प्रकार तैयार किया गया अञ्जन तिमिर रोग को नष्ट कर देता है।

नेत्रतर्पण रस

वटपत्रपुटे क्लृप्तं कुलिङ्गं सघृतं पचेत् ।
तद्रसस्तर्पणं चाक्ष्णोरेवं स्युर्जाङ्गलाण्डजाः ।।५१।।

वटपत्र के पुट (दोने) में क्लृप्त (काटे हुए) कुलिङ्ग (चटक) को घृत सहित पकाना चाहिए। इसका रस आँखों के लिए तर्पण होता है। इसी प्रकार अन्य जाङ्गल पक्षी भी आँखों के लिए तर्पण होते हैं।

सर्वनेत्ररोगहर त्रिफला योग

त्रिफलायोरजो-यष्टी सर्पिःक्षौद्रसमन्विता।
दिनान्ते शीलिता वृष्या सर्वनेत्रगदान् जयेत्।।५२।।

त्रिफला, लोहभस्म एवं मुलेठी- इन्हें घृत व मधु के साथ सायंकाल सेवन करने से सभी नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं और शरीर की पुष्टि होती है।

तिमिरनाशक त्रिफलाघृत

त्रिफलाक्वाथकल्केन सपयस्कं घृतं शृतम्।
तिमिराण्यचिराद्धन्यात् पीतमेतन्निशामुखे।।५३।।

त्रिफला के क्वाथ एवं कल्क के साथ दूध सहित घृत को पकाएं। यह घृत सायंकाल पीना चाहिए। इससे सभी तिमिर रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

तिमिरनाशक रास्नादिघृत

रास्नाफलत्रयक्वाथे दशमूलस्य च शृतम्।
कल्केन जीवनीयानां घृतं तिमिरनाशनम्।।५४।।

रास्ना, त्रिफला एवं दशमूल के क्वाथ में काकोली आदि जीवनीय गण के द्रव्यों के साथ सिद्ध किया गया घृत तिमिर रोग को नष्ट कर देता है।

कर्णरोग-निदान

कर्णयोः शूलबाधिर्यनादस्रावाः समीरणात्।
पित्तोष्म-कफ-संशोषाज्जायते कर्णगूथकः।।५५।।

वात के कारण कानों में शूल (दर्द), बाधिर्य (बहरापन), नाद (गुञ्जन) तथा स्राव हो जाता है। पित्त की ऊष्मा से कफ का शोषण होने से कर्णगूथ (गाँठ रूप वाला कान का मल) पैदा होता है।

कर्णशूलहर रस- १.

मुरुङ्गी-कदली-शिग्रु-मूलकार्द्रकजः पृथक्।
रसः ससैन्धवः कोष्णः पूरणं कर्णशूलनुत्।।५६।।

मुरुङ्गी (कृष्णशिग्रु/लाल पुष्प वाला सहिजन), कदली, शिग्रु (सहिजन), मूलक (मूली) एवं अदरक के रस में थोड़ा सैन्धव लवण मिलाकर कोष्ण (हल्का गर्म) करें। इससे कान का पूरण करने से कर्णशूल नष्ट हो जाता है।

कर्णशूलहर रस- २.

लवणाबद्धपीतार्कपत्रं तत्सप्तकावृतम्।
पक्त्वा लवणमुद्धूय तद्रसः कर्णशूलहा।।५७।।

आक के पके पीले पत्ते पर सैन्धव लवण का लेप कर सात परतें बनाकर आग पर सेकें, तदनन्तर लवण हटाकर पत्तों का रस निकालकर कान में डालें। यह रस कर्णशूल को नष्ट कर देता है।

कर्णशूलहर रस- ३.

बिल्वादेर्देवकाष्ठाद् वा काण्डं वा सरलं पृथक्।
प्रदीप्य चैलतैलाढ्यं तत्स्रावः कर्णशूलहृत्।।५८।।

बिल्व, देवदारु अथवा चीड़ के काण्ड (तने) पर तेल में भीगा कपड़ा लपेट दें, तदनन्तर इसे जला दें और इससे झरने वाले स्राव को एकत्र करें। शीतल होने पर इसे कान में डालने से कर्णशूल दूर हो जाता है।

कर्णशूलहर तैल

कुष्ठशुण्ठीवचादारुशताह्वाहिङ्गुसैन्धवैः।
बस्तमूत्रे श्रृतं तैलं पूरणं श्रवणार्तिजित्।।५९।।

कुष्ठ (कूठ), शुण्ठी, वचा, दारु (दारुहल्दी), शताह्वा (सोआ), हिङ्गु एवं सैन्धव लवण- इनके साथ बकरे के मूत्र में पकाए तैल से कान का पूरण करें। यह कर्णशूल को दूर कर देता है।

गदक्वाथेन यष्ट्याह्वकाकोलीमाषधान्यकैः।
सूकरस्य वसा पक्वा कर्णनादार्तिनाशनी।।६०।।

गद (कूठ) के क्वाथ के साथ एवं मुलेठी, काकोली, माष (उड़द) तथा धनिया के साथ पकाई गई सूअर की चर्बी कर्णनाद (कान में होने वाली गूंज) एवं कर्णशूल (कानदर्द) को दूर कर देती है।

कर्णस्रावहर योग- १.

तीव्रशूलातुरे कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि।
बस्तमूत्रं क्षिपेत् कोष्णं सैन्धवेन समन्वितम्।।६१।।

कान की तीव्र पीड़ा में अथवा शब्द सहित कर्णस्राव- अर्थात् कान बहने पर सैन्धव लवण मिलाकर कोष्ण (थोड़ा गर्म) बकरे का मूत्र कान में डालें। इससे उक्त विकार दूर हो जाते हैं।

कर्णस्रावहर योग- २.

वरुणाह्वकपित्थाम्रजम्बूपल्लवसाधितम्।
पूतिकर्णापहं तैलं जातीपत्ररसोऽथवा।।६२।।

वरुण (वरना वृक्ष), कपित्थ (कैंथ), आम्र, जम्बू (जामुन) के पत्तों से सिद्ध तेल को कान में डालने से कान की सड़न या बहना बन्द हो जाता है। इसी प्रकार जातीपत्र (चमेली के पत्तों) का रस डालने से भी उक्त विकार नष्ट हो जाता है।

कर्णमल-निस्सारण विधि

स्वेदस्नेहोपपन्नं च निर्हरेत्कर्णगूथकम्।
अनुलोमं शनैर्लेख्यः कुञ्चितास्यशलाकया।।६३।।

स्वेदन एवं स्नेह से युक्त करके कर्णमल को बाहर निकालना चाहिए। मुड़े हुए मुख वाली शलाका द्वारा मल को निकालने के लिए अनुलोम रूप से लेखन करना चाहिए।

नासारोग- प्रतिश्याय (जुकाम)

तनु-पीत-घनस्रावा वातपित्तकफात्मकाः।
प्रतिश्यायाः समाख्यातास्त्रिदोषः सर्वलक्षणः।।६४।।

पतले, पीले एवं गाढ़े स्राव वाले प्रतिश्याय (जुकाम) क्रमशः वात, पित्त एवं कफ के कारण होते हैं। त्रिदोषजन्य प्रतिश्याय में उक्त तीनों लक्षण मिले-जुले रूप में दिखाई देते हैं।

प्रतिश्याय की सामान्य चिकित्सा

शिरसोऽभ्यञ्जनस्वेदनस्यकट्वम्लभोजनैः।
वमनैर्घृतपानैश्च तान् भिषक् समुपक्रमेत्।।६५।।

सिर के अभ्यञ्जन (मालिश), स्वेदन, नस्य एवं कटु तथा अम्ल भोजन, वमन व घृतपान से उक्त प्रतिश्यायों की चिकित्सा करनी चाहिए।

प्रतिश्यायी पिबेद् धूमं सर्वगन्धसमुत्थितम्।
चातुर्जातकचूर्णं वा घ्रेयं वा कृष्णजीरकम्।।६६।।

प्रतिश्याय रोग से ग्रस्त व्यक्ति को सर्वगन्ध (त्वक्/दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेसर, कंकोल, लवंग, अगरु/अगर, शिह्लक/शिलारस) का धूमपान करना चाहिए अथवा चातुर्जातक (त्वक्/दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेसर) के चूर्ण या कृष्णजीरक (कालाजीरा) को सूंघना चाहिए।

शटीतामलकीव्योषचूर्णैः सर्पिर्गुडं शृतम्।
उरोघातप्रतिश्यायपार्श्वहृत्कुक्षिशूलनुत्।।६७।।

शटी (कपूरकचरी), तामलकी (भुंई आँवला), त्रिकटु चूर्ण के साथ घृत और गुड़ को पकाकर सेवन करें। यह योग उरःक्षत, प्रतिश्याय तथा पार्श्व, हृदय व कुक्षि के शूल को नष्ट कर देता है।

व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुसुरसव्योषसैन्धवैः।
पाचितं नावनं तैलं पूतिनासागदं हरेत्।।६८।।

व्याघ्री (कण्टकारी), दन्ती, वचा, सुरस (तुलसी), त्रिकटु एवं सैन्धव के साथ पकाए तेल का नस्य पूतिनासा (नजला) नामक रोग को नष्ट कर देता है।

जिह्वारोग

वातेन स्फुटिता सुप्ता जिह्वाशाकदलोपमा।
सदाहैः कण्टकैः पित्ताद् बहलैश्च चिता कफात्।।६९।।

वात के कारण जिह्वा फटी हुई, सुप्त (सोई हुई, सुन्न-सी) तथा शाकदल (सागौन के खुरदरे पत्ते) जैसी हो जाती है। पित्त के कारण दाहयुक्त काँटों से व्याप्त-सी हो जाती है तथा कफ के कारण निबिड (सघन) काँटों से युक्त हो जाती है।

निलिख्य कण्टकान् सम्यग् विगते दुष्टशोणिते।
यथादोषं गणा योज्या नस्यगण्डूषलेपनैः।।७०।।

जिह्वा के काँटों को भली भाँति साफ कर दूषित रक्त के निकल जाने पर नस्य, गण्डूष एवं लेपन के रूप में दोषानुसार औषधगणों का प्रयोग करना चाहिए।

दन्तरोग- दन्तपीड़ाहर योग

दन्तानां तोदहर्षौ च जायेते वाततस्तयोः।
उष्णतैलाज्यवातघ्ना निर्यूहाः कवलग्रहाः।।७१।।

वातविकार से दाँतों का तोद (चुभन वाली पीड़ा) एवं हर्ष (खट्टापन) होता है। इनमें उष्ण, तैल एवं घृत से युक्त वातनाशक निर्यूह (क्वाथ) को कवलग्रह (कुल्ले) के रूप में लेना चाहिए।

दन्तरोग-नाशक मञ्जन

तिक्ताब्दतेजनीपाठानिशायुग्लोध्रकुष्ठजम्।
ससमङ्गं रजो घर्षाद् दन्तकण्ड्वस्रतोदजित्।।७२।।

तिक्ता (कुटकी), अब्द (मुस्तक), तेजनी (मूर्वा), पाठा, दोनों प्रकार की हल्दी (हल्दी एवं दारुहल्दी), लोध्र, कूठ एवं समङ्गा (मञ्जिष्ठा) का चूर्ण बनाकर दाँतों पर मलने से दन्तकण्डू, दन्तास्र (दाँतों से खून निकलना) एवं दन्ततोद (दाँतदर्द) दूर हो जाता है।

मुखरोग- मुखपाकहर उपाय

मुखपाकोऽस्रपित्तोत्थस्तत्रासृङ्मुक्तिरेचने।
घृततैलमधुक्षीरमूत्रैश्च कवलग्रहः।।७३।।

मुखपाक रोग दूषित रक्त व पित्त से होता है। उसमें रक्तमोक्षण एवं विरेचन करवाना चाहिए। इसके अतिरिक्त घृत, तेल, मधु, क्षीर एवं गोमूत्र से कवलग्रह (कुल्ला) करना चाहिए।

मुखपाकहर क्वाथ का गण्डूष

जातीपत्रामृता-द्राक्षायासदार्वीफलत्रिकैः।
क्वाथः क्षौद्रयुतः शीतो गण्डूषो मुखपाकनुत्।।७४।।

जातीपत्र (चमेली के पत्ते), अमृता (गिलोय), द्राक्षा (मुनक्का), यास

(जवासा), दार्वी (दारुहल्दी), त्रिफला- इनसे बने क्वाथ को शीतल होने पर मधु मिलाकर पीने से मुखपाक दूर हो जाता है।

गलशुण्डिका-चिकित्सा

तालुमूले कफासृग्भ्यां जायते गलशुण्डिका।
छित्वा तां व्योषसिन्धूत्थवचाक्षौद्रैः प्रसाधयेत्।।७५।।

दूषित कफ एवं असृग् (रक्त) से तालु के मूल में गलशुण्डिका (युवुलाइटिस) हो जाती हैं। उसका विधिपूर्वक छेदन कर त्रिकटु, सैन्धव लवण, वचा एवं मधु से इन ओषधियों से घर्षण करें।

कण्ठशालूक-चिकित्सा

गले स्यात्कण्ठशालूकः कोलास्थिप्रतिमा कफात्।
कर्मास्याङ्गुलिशस्त्रेण पूर्ववत् प्रतिसारणम्।।७६।।

गले में कफ के कारण 'कण्ठशालूक' नामक रोग हो जाता है, इसमें बेर की गुठली के आकार वाली गोली बन जाती है। इसका भी अंगुली रूपी शस्त्र से पूर्ववत् निवारण कर प्रतिसारण (लवण आदि से घर्षण) करना चाहिए।

रोहिणी-लक्षण

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितेनाङ्कुरात्मिका।
स्वरूपे रोहिणी कण्ठे प्रवृद्धा हन्ति जीवितम्।।७७।।

वात, पित्त, कफ- इन दोषों से अलग-अलग तथा सम्मिलित रूप से कण्ठ में अंकुर जैसी 'रोहिणी' पैदा हो जाती है, अतः यह वातज, पित्तज, कफज एवं त्रिदोषज होती है। इसके अतिरिक्त दूषित रक्त के कारण भी रोहिणी होती है, इसे रक्तज कहते हैं। यह कण्ठ का अवरोध कर जीवन को नष्ट कर देती है।

रोहिणी-चिकित्सा

सर्वासां शोणितस्रावो यथास्वं कवलग्रहा:।
वातिकां लवणैर्मुख्यै: सक्षौद्रै: प्रतिसारयेत्।।७८।।

सभी प्रकार की रोहिणी में रक्तमोक्षण करवाना चाहिए तथा दोषानुसार उपयुक्त औषधों से कवलग्रह करवाने चाहिए। वातिक रोहिणी को मधु सहित मुख्य लवणों के द्वारा प्रतिसारित (घर्षित) करना चाहिए। प्रतिसारण का स्वरूप इस प्रकार है- **'लवणै: कटुचूर्णैश्च घृष्यते यद् व्रणं बुधै:। प्रतिसारस्तत: प्रोक्त:'** अर्थात् लवण और कटुचूर्णों से व्रण (घाव) के घर्षण को प्रतिसारण कहते हैं।

सारयेद् पित्तरक्तोत्थे सितापत्तङ्गमाक्षिकै:।
वेश्मधूम-मधु-व्योषैर्बलासप्रभवामपि।।७९।।

दूषित पित्त एवं रक्त से होने वाली रोहिणी को सिता (शर्करा), पत्तंग (पत्तूर) और माक्षिक (मधु) से घर्षित कर दूर करना चाहिए। कफजन्य रोहिणी को गृहधूम (घर में भित्ति पर निरन्तर धुंआ लगने से बने काजल), मधु एवं त्रिकटु के सेवन से दूर करना चाहिए।

सर्वकण्ठरोगहर योग

रास्नासौवर्चलव्योषधूममुस्तायवाग्रजै:।
सक्षौद्रैर्विधृतैर्यान्ति व्ययं सर्वे गलामया:।।८०।।

रास्ना, सौवर्चल लवण (सोंचर नमक), त्रिकटु, मुस्ता, यवाग्रज (यवक्षार)- इन सबको मधु मिलाकर मुख में रखकर चूसने से गले के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

मुखकण्ठरोगहर योग

सैन्धवालशिलाक्षार-दार्वीचूर्णं स माक्षिकम्।
धारयेत् कण्ठरोगेषु मुखरोगेषु चोत्तमम्।।८१।।

सैन्धव, अल (हरताल), शिला (मैनसिल), क्षार (यवक्षार) एवं दार्वी (दारुहल्दी) चूर्ण को मधु मिलाकर मुख में रखकर चूसें। यह मुखरोग एवं कण्ठरोगों को दूर करने के लिए उत्तम योग है।

कण्ठरोगहरी गुडिका

त्रिजातकोषणक्षारघण्टाकिंशुकभस्मभिः।
पञ्चकोलगुडैर्धार्या गुडिका कण्ठरोगजित्।।८२।।

त्रिजातक (दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र), ऊषण (कालीमिर्च), क्षार (यवक्षार) एवं घण्टाकिंशुक (शण) की भस्म तथा पञ्चकोल (चव्य, चित्रक, शुण्ठी, पिप्पली, पिप्पलीमूल) एवं गुड़ के साथ तैयार की गई गुटिका को कण्ठ में रखकर चूसना चाहिए। इससे सभी कण्ठरोग दूर हो जाते हैं।

कण्ठरोग-मुखपाकहरी गुडिका

दार्वीत्वक्तेजनी-कृष्णातार्क्ष्यशैलगुडैः कृताम्।
गुडिकां गलरोगेषु मुखपाके च धारयेत्।।८३।।

दार्वी (दारुहल्दी), त्वक् (दालचीनी), तेजनी (मूर्वा), पिप्पली, तार्क्ष्य (रसाञ्जन), शैल (सिह्लक/शिलारस) एवं गुड़ से बनाई गई गुटिका को मुख में धारण करें अर्थात चूसते रहें। इससे गलरोग व मुखपाक का निवारण होता है।

कण्ठरोगहर क्वाथ

वत्सकातिविषादारुपाठा-तिक्ताम्बुदाः समाः।
गोमूत्रक्वथिताः पेया गलरोगे समाक्षिकाः।।८४।।

वत्सक (कुटज), अतिविषा, दारुहल्दी, पाठा, तिक्ता (कुटकी) एवं अम्बुद (मुस्तक)- इन्हें समान मात्रा में लेकर गोमूत्र में क्वथित करें तथा शीतल होने पर मधु मिलाकर पान करें। यह योग गलरोगों को नष्ट कर देता है।

शिरोरोग- सिर की सुन्नता एवं पीड़ा आदि का निदान

वाताच्छून्यं सशूलं स्यात् पित्ताद् दाहि कफाद् गुरु।
शिर: सर्वैस्त्रिदोषं च कण्डूतोदार्त्तिमत्कृमे:।।८५।।

वात के कारण सिर सुन्न एवं पीड़ायुक्त रहता है, पित्त के कारण दाहयुक्त तथा कफ के कारण भारी रहता है। त्रिदोषजन्य शिरोरोग में पूर्वोक्त सभी लक्षण रहते हैं। कृमिजन्य शिरोरोग में खुजली, तोद (चुभन) एवं पीड़ा रहती है।

सूर्यावर्त, अर्धभेदक एवं शङ्खक का स्वरूप

वातपित्तभवौ ज्ञेयौ सूर्यावर्तार्धभेदकौ।
तीव्ररुक्शंखकस्त्याज्यो वातरक्तकफान्वय:।।८६।।

'सूर्यावर्त' एवं 'अर्धभेदक' नामक शिरोरोग क्रमश: वात एवं पित्त से होते हैं। सूर्यावर्त में सूरज चढ़ने के साथ सिरदर्द बढ़ता जाता है तथा रात को शान्त हो जाता है। अर्धभेदक में आधे सिर में दर्द होता है। इनके अतिरिक्त तीव्र पीड़ा वाला 'शङ्खक' नामक शिरोरोग होता है। यह वात, रक्त एवं कफ के कारण होता है। असाध्य होने से यह त्याज्य है- अर्थात् इसमें चिकित्सा निष्फल रहती है।

वातजन्य शिरोरोगों की प्राथमिक चिकित्सा

कार्यं वातशिरोरोगे वातव्याधिचिकित्सितम्।
स्वेदो वातघ्नसंसिद्धै: कृसरापायसादिभि:।।८७।।

वातजन्य शिरोरोग में वातव्याधि वाली चिकित्सा करनी चाहिए। इसमें वातघ्न ओषधियों के साथ सिद्ध गर्मागर्म कृसरा (खिचड़ी) एवं पायस आदि खिलाकर स्वेदन कराना चाहिए।

वातज शिरोरोग में नस्यविशेष

तैलं पक्वं कणाकुष्ठशताह्वोत्पलचन्दनैः।
रसे कर्कोटजे नस्यं लेपो वा सघृतैरिमैः।।८८।।

कणा (पिप्पली), कूठ, शताह्वा (सोआ), उत्पल (कमल) एवं चन्दन के साथ कर्कोट के रस में सिद्ध किए तेल का नस्य वातजन्य शिरोरोग को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार घृत के साथ पूर्वोक्त (पिप्पली, कूठ आदि) द्रव्यों का लेपन भी वातज शिरोरोग को दूर कर देता है।

ऊर्ध्वजत्रुरोगहर घृत

यष्टीमधुबलारास्ना-दशमूलाम्बुसाधितम्।
माधुरैश्च घृतं सर्वान् ऊर्ध्वजत्रुगदान् जयेत्।।८९।।

यष्टीमधु, बला, रास्ना एवं दशमूल के क्वाथ के साथ मधुर गण वाले काकोली आदि द्रव्यों को मिलाकर सिद्ध किया गया घृत नस्य, पान आदि के रूप में सेवन करने पर ऊर्ध्वजत्रु (जत्रु/छाती हँसली से ऊपर के) रोगों को नष्ट कर देता है।

वातपित्तज शिरोरोग में हितकर तैल

जीवकर्षभकद्राक्षा-सितायष्टीबलोत्पलैः।
तैलं नस्यं पयःपक्वं वातपित्तशिरोगदे ।।९०।।

जीवक, ऋषभक, द्राक्षा, शर्करा, मुलेठी, बला एवं उत्पल (कमल) के साथ दूध में सिद्ध किए गए तेल का नस्य वातपित्तजन्य शिरोरोग को दूर कर देता है।

पित्तज शिरोरोग में हितकर लेप

बला-व्याघ्रनखोशीर-मधुकोत्पल-चन्दनैः।
क्षीरपिष्टैः प्रलेपः स्यात्पैत्ते क्षीरादिसेचनम्।।९१।।

बला, व्याघ्रनख (शंख), उशीर (खस), मधुक (मुलेठी), उत्पल (कमल) एवं चन्दन को दूध के साथ पीसकर लेपन करने से पित्तजन्य शिरोरोग दूर हो जाता है। इसी प्रकार सिर पर दूध आदि स्निग्ध, शीतल पदार्थों का सेचन करने से भी पित्तज शिरोरोग दूर हो जाता है।

पित्तज शिरोरोग में हितकर नस्य

त्वक्पत्रशर्कराः पिष्ट्वा नावनं तण्डुलाम्बुना।
घृतं वा शर्कराद्राक्षा-यष्टीक्षीरप्रसाधितम्।।९२।।

त्वक् (दालचीनी), पत्र (तेजपात) एवं शर्करा को तण्डुल-जल के साथ पीसकर नस्य लेना चाहिए। इससे पित्तज शिरोरोग नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार शर्करा, द्राक्षा, मुलेठी के साथ दुग्ध में पकाए घृत का नस्य लेने से भी पित्तज शिरोरोग दूर हो जाता है।

कफज शिरोरोग में रेचन एवं लेपन

स्विन्नं मधूकसारेण कफार्ते रेचयेच्छिरः।
दारु-रोहिष-शारंग-सिन्धूत्थ-सरलैर्दिहेत्।।९३।।

कफजन्य शिरोरोग से पीड़ित रोगी को स्विन्न कर- अर्थात् पसीना देकर मधूकसार (महुए के बीजों का सार) से शिरोविरेचन देवें, तदनन्तर दारुहल्दी, रोहिष (कत्तृण), शारंग, सैन्धव लवण एवं सरल (चीड़ वृक्ष) के राल से सिर पर लेपन करे। इससे कफजन्य शिरोरोग शान्त हो जाता है।

वातकफजन्य शिरोरोग में हितकर नस्य विशेष

शताह्वैरण्डमूलोग्रा-वक्रव्याघ्रीफलैः शृतम्।
तैलं नस्यं मरुच्छ्लेष्मतिमिरोर्ध्वगदापहम्।।९४।।

शताह्वा, एरण्डमूल, उग्रा (वचा), वक्र (तगर) एवं व्याघ्रीफल (कण्टकारी फल) के साथ सिद्ध किए तेल का नस्य वातकफजन्य तिमिररोग एवं शिरोरोगों को नष्ट करता है।

त्रिदोषजन्य शिरोरोग में घृतपान व नस्यविशेष

पुराणसर्पिषः पानं त्रिदोषे तच्छमो विधिः।
कृमिजे व्योषनक्ताह्वशिग्रुबीजैश्च नावनम्।।९५।।

त्रिदोषजन्य शिरोरोग में पुराने घृत का पान करना चाहिए। इससे त्रिदोषजन्य शिरोरोग का शमन हो जाता है। कृमिजन्य शिरोरोग में त्रिकटु, हंरिद्रा, शिग्रुबीज के चूर्ण का नस्य देना चाहिए। इससे कृमिजन्य शिरोरोग नष्ट हो जाता है।

शिरःकृमिनाशक नस्यविशेष

अपामार्गफलव्योष-निशाक्षवकरामठैः।
सविडङ्गैः शृतं मूत्रे तैलं नस्यं कृमीन् हरेत्।।९६।।

अपामार्ग, फल (त्रिफला), त्रिकटु, हरिद्रा, क्षवक (नखछिकनी), हींग एवं विडङ्ग- इन सबके साथ गोमूत्र में सिद्ध किए गए तेल का नस्य शिरोगत कृमियों को नष्ट कर देता है।

सूर्यावर्त्त व अर्धभेदक में हितकर लेपविशेष व घेवर का सेवन

सारिवोत्पलयष्ट्याह्वकुष्ठैर्लेपोऽम्लसंयुतैः।
घृतपूरादिसेवा च सूर्यावर्तार्धभेदयोः।।९७।।

सारिवा, उत्पल (कमल), मधुयष्टी एवं कूठ को दाड़िम (अनार) आदि के अम्ल रस के साथ पीसकर लेपन करने तथा घृतपूर (घेवर) आदि शुद्ध घृत के पकवान खाने से 'सूर्यावर्त' एवं 'अर्धावभेदक' नामक शिरोरोग दूर हो जाते हैं।

सर्वशिरोरोगहर नस्यविशेष व मधुकघृत योग

जातीक्षारेण मुस्तत्वक्-कर्पासास्थिकृतं जले।
नस्यं सर्वशिरोऽर्त्तिघ्नं मधुकं वा घृतान्वितम्।।९८।।

जातीक्षार (चमेली से बनाया क्षार) के साथ मुस्तक (मोथा), त्वक् (दालचीनी) एवं कर्पासास्थि (बिनौले की गिरी) के साथ जल में पीसकर तैयार किया गया नस्य सभी प्रकार के शिरोरोगों को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार घृत के साथ मधुक (मुलेठी चूर्ण) का सेचन भी सभी प्रकार के शिरोरोगों को दूर कर देता है।

सर्वशिरोरोगों में हितकर घृतविशेष का नस्य

शुण्ठीविडङ्गयष्ट्याह्वैर्भृङ्गतोये शृतं घृतम्।
नस्यं षड्बिन्दुदानेन सर्वमूर्धागदापहम्।।९९।।

शुण्ठी, विडङ्ग एवं मुलेठी के साथ भृङ्गराज के रस में पकाकर सिद्ध किए गए घृत का नस्य सभी शिरोरोगों को नष्ट कर देता है। इसे छह-छह बूंद की मात्रा में निरन्तर लेते रहने से उक्त प्रकार का वांछित लाभ मिलता है।

पलितादिहर तैलविशेष का नस्य

प्रपौण्डरीकायष्ट्याह्वपिप्पल्युत्पलचन्दनैः।
धात्र्युम्बुसाधितं तैलं नावनं पलितादिजित्।।१००।।

प्रपौण्डरीक, मुलेठी, पिप्पली, उत्पल एवं चन्दन के साथ आमलकी-रस में सिद्ध किए गए तेल का नस्य पलित (केशों के श्वेतपन) आदि शिरोरोगों को नष्ट कर देता है।

नस्य द्वारा पालित्यहर तैल के योग

रामाशैलुतिलाक्षाणां तैलं नावनतो जराम्।
भृङ्गनीलीकुरुण्टाह्वशिरीषाम्बुजुषां हरेत्।।१०१।।

रामा (प्रियंगु), शैलु (लिसोड़ा), तिल, अक्ष (बहेड़ा)- इन सबको मिलाकर निकाले गए तेल का नस्य लेने से वृद्धावस्थाजन्य पलित आदि विकार नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार भृङ्ग (भृङ्गराज), नीली (नील), कुरुण्ट (पीत सैरेयक), शिरीष एवं अम्बुजुद् (मुस्तक) के तेल को नस्य के रूप में

प्रयुक्त करने से जरावस्थाजन्य पालित्य आदि विकार दूर हो जाते हैं।

शिखिपित्तबिसाम्रास्थिमदयन्त्यञ्जनोत्पलैः।
सनीलीभृङ्गकासीसैरक्षतैलं समैः पचेत् ।।१०२।।
लोहभाण्डे स्थितं मासमकालपलितं हरेत्।
एतदभ्यङ्गमात्रेण नावनेन च कालजम्।।१०३।।

शिखिपित्त (मोर का पित्ता), बिस (कमलनाल), आम्रास्थि (आम की गुठली), मदयन्ती, अञ्जन, उत्पल (कमल), नीली (नील), भृङ्ग (भृंगराज) एवं कासीस- इन्हें सममात्रा में लेकर तेल सिद्ध करें। इसे महीने भर तक लोहपात्र में रख दें, तदनन्तर अभ्यङ्ग करने से यह अकालपलित (असमय में हुए बालों के श्वेतपन) को दूर कर देता है। नस्य के रूप में लेने से तो यह तेल वृद्धावस्था में होने वाले पालित्य (केशों के श्वेतपन) को भी दूर कर देता है।

रातभर में बाल काले करने वाला योग

लोहचूर्णाम्ल-सिन्धूत्थ-तण्डुलैः साधितैर्दिहेत्।
शिरो रात्रिस्थितं प्रातः कृष्णं स्यात्त्रिफलोक्षितम्।।१०४।।

लोहभस्म, अम्ल (आंवले या निम्बू आदि के अम्लरस), सैन्धव लवण एवं तण्डुल (चावल) के कणों को पीसकर बनाए लेप को रातभर सिर पर लगाए रखें तथा ऊपर से त्रिफला का चूर्ण छिड़क लें। इस लेप के रात भर लगे रहने से प्रातःकाल सिर के बाल काले हो जाते हैं।

इन्द्रलुप्त (गंजापन) नासक योग- १.

इन्द्रलुप्तापहो लेपो मधुना बृहतीरसः।
गुञ्जामूलफलं वापि भल्लातकरसोऽथवा।।१०५।।

मधु के साथ बृहतीरस को सिर पर लीपने से इन्द्रलुप्त (गञ्जापन) दूर हो जाता है। गुञ्जा के मूल व फल का अथवा वैद्यकीय प्रक्रिया से शोधित

किए भल्लातक (भिलावे) के रस का सिर पर लेपन करने से भी गञ्जापन दूर हो जाता है।

इन्द्रलुप्त (गंजापन) नासक योग- २.

वटावरोहकेशिन्योश्चूर्णेनादित्यपाचितम्।
गुडूचीस्वरसे तैलमभ्यङ्गात् केशरोहणम्।।१०६।।

बड़ के अवरोह (जटातन्तु) एवं केशिनी (जटामांसी) के चूर्ण के साथ गिलोय के स्वरस में सिद्ध किए गए तेल का अभ्यङ्ग (मालिश) करने से गंजे व्यक्ति के सिर में भी केश उग जाते हैं।

नेत्रों के लिए सदा पथ्य

सर्पिस्त्रिफलयोः सेवा रक्तस्रावो विरेचनम्।
शालयो जाङ्गलं मुद्गा यवा दृष्टेर्हिता सदा।।१०७।।

घृत एवं त्रिफला का सेवन, रक्तमोक्षण, विरेचन लेना, शालिधान्य (चावल), मूंग एवं जौ का सेवन सदा नेत्रज्योति के लिए हितकर होता है।

।। इति शालाक्याध्यायः षड्विंशतितमः समाप्तः।।

सप्तविंश अध्याय

अगद तन्त्र (विष-चिकित्सा)

विष के दो भेद

स्थावरं जङ्गमं चैव द्विविधं विषमुच्यते।
मूलाद्यात्मकमाद्यं स्यात् परं सर्पादिसम्भवम्।।१।।

'स्थावर' एवं 'जंगम' भेद से विष दो प्रकार का होता है। पहला पेड़-पौधों के मूल, फल, पत्ते आदि और खनिज आदि में मिलता है तथा दूसरा सर्प आदि में। पहले को 'स्थावर' कहते हैं; क्योंकि यह स्थिर पदार्थों में विद्यमान रहता है। दूसरे को 'जंगम' कहते हैं; क्योंकि यह गमन करने वाले, चलने-फिरने वाले प्राणियों में होता है।

विष के दस गुण

लघ्वव्यक्तरसं सूक्ष्मं रूक्षोष्णाशु व्यवायि च।
विकासि विशदं तीक्ष्णं विषं दशगुणं स्मृतम्।।२।।

विष लघु, अव्यक्तरस, सूक्ष्म, रूक्ष, उष्ण, आशु, व्यवायी, विकासी, विशद एवं तीक्ष्ण होता है। इस प्रकार यह दस गुणों वाला कहा गया है।

सर्पों के भेद

वातपित्तकफात्मानो भोगि-मण्डलि-राजिलाः।
यथाक्रमं समाख्याता द्व्यन्तरा द्वन्द्वरूपिणः।।३।।

'भोगी', 'मण्डली' एवं 'राजिल' नामक प्रजाति के सर्प क्रमशः वात, पित्त एवं कफ की प्रधानता वाले होते हैं। इन्हीं के संकर से (विजातीय माता-पिता) से 'द्व्यन्तर' सर्प उत्पन्न होते हैं। ये द्वन्द्वज- अर्थात् दो-दो प्रकृतियों के मिश्रण वाले होते हैं। 'भोग' का अर्थ है- फण, अतः फण फैलाने वाले

सर्प 'भोगी' कहलाते हैं। इन्हें 'दर्वीकर' भी कहते हैं, क्योंकि इनका फण दर्वी (करछी) जैसा होता है। जिनके शरीर पर विविध प्रकार के मण्डलाकार चिह्न होते हैं, वे सर्प 'मण्डली' कहलाते हैं। 'राजि' का अर्थ है- धारी, अतः धारीदार सर्प 'राजिल' कहलाते हैं।

सर्पदंश के विविध प्रभाव

दंशो भोगिकृतः कृष्णः सर्ववातविकारकृत्।
पीतो मण्डलिजः शोफी पृथुः पित्तविकारकृत्।।४।।

भोगी (फण वाले) सर्प का दंश-स्थान काला पड़ जाता है। यह सभी वातविकारों को पैदा करता है। मण्डली सर्प का दंश-स्थल पीला, सूजन वाला एवं विस्तृत होता है। यह पित्तविकारों को पैदा करता है।

राजिलोत्थो भवेद् दंशः स्थिरः शोफश्च पिच्छिलः।
पाण्डुः स्निग्धोऽतिसान्द्रासृक् सर्वश्लेष्मविकारकृत्।।५।।

राजिल सर्प का दंश-स्थल स्थिर शोफ वाला एवं पिच्छिल होता है। यह पीले रंग का स्निग्ध एवं गाढ़े खून वाला दिखता है तथा सभी कफविकारों को पैदा करता है।

नक्षत्रविशेष में सर्पदंश की भयंकरता

मघार्द्रा-कृत्तिकाश्लेषा-भरणीषु प्रयत्नतः।
पूर्वासु च प्रदष्टस्य कस्यचिज्जीवितं भवेत्।।६।।

मघा, आर्द्रा, कृत्तिका, आश्लेषा, भरणी एवं पूर्वा (पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वा भाद्रपदा)- इन नक्षत्रों में सर्प द्वारा डसे व्यक्ति का जीवन बहुत प्रयत्न करने पर कदाचित् ही बच पाता है। सामान्यतः बचने की सम्भावना बहुत कम रहती है।

तिथिविशेष में सर्पदंश की भयंकरता

नवमी पञ्चमी षष्ठी तथा कृष्णचतुर्दशी।
चतुर्थी सवने द्वे च दष्टानां विषमा मता:।।७।।

चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, नवमी एवं कृष्णचतुर्दशी तथा दोनों सवन (प्रात: एवं सायं की सन्ध्या)- ये काल सर्पदष्ट व्यक्तियों के लिए विषम माने गए हैं- अर्थात् इन कालों में सर्पदंश का प्रभाव अधिक भयंकर एवं घातक होता है।

सर्पदंश से मृत की पहचान

यस्य केशा: प्रशीर्यन्ते दण्डराजिर्न दृश्यते।
रोमहर्षो न शीतेन तं दष्टं परिवर्जयेत्।।८।।

सर्प द्वारा डसे जिस व्यक्ति के केश खींचने पर सरलता से उखड़ जाते हैं, डण्डा मारने पर जिसके शरीर पर निशान नहीं उभरता है, बर्फ आदि का शीतल स्पर्श करवाने पर भी जिसे रोमहर्ष (रोमांच/रोंगटे खड़े होना) नहीं होता है; उस व्यक्ति की चिकित्सा करना व्यर्थ है। भाव यह है कि वह सर्पविष के प्रभाव से मर चुका होता है।

सर्पदंश में प्राथमिक उपचार

बन्धनाचूषणाच्छेददाहस्रावा: प्रकीर्तिता:।
पूर्वं दष्टस्य पानं च हृदयावरणं घृतम्।।९।।

सर्प द्वारा डसे व्यक्ति के प्राथमिक उपचार के रूप में बन्धन (डसे अंग को सूत्र आदि से बांधना, जिससे विष अन्दर की ओर न फैल सके), आचूषण (विष को चूसना), छेद (डसे हुए अंग पर चीरा लगाना), दाह (जलाना) एवं स्राव (डसे हुए स्थान से विषमिश्रित रक्त का बहिर्निस्सारण) करवाना चाहिए। हृदय पर सर्पविष का प्रभाव रोकने के लिए तुरन्त घृत पिलाना चाहिए।

सर्पविषहर योग

निर्गुण्डीसहिता श्वेता पानं फणिविषापहम्।
भावितं स्वरसेनैव मूलं वा सिन्धुवारजम्।।१०।।

निर्गुण्डी सहित श्वेता (श्वेत वचा) का पान सर्पविष को दूर कर देता है। इसी प्रकार अपने ही रस से भावित सिन्धुवार (निर्गुण्डी) का मूल भी सर्पविष को दूर कर देता है। यहाँ 'श्वेता' का अर्थ 'श्वेत वचा' किया है, क्योंकि वाग्भट के टीकाकार 'इन्दु' ने विषचिकित्सा-प्रकरण में 'श्वेता' का यही अर्थ दिया है। आयुर्वेदीय ग्रन्थों के कुछ व्याख्याकार 'श्वेता' का अर्थ अपराजिता (गिरिकर्णी/सफेद कोयल) करते हैं। यह भी विष-निवारक है तथा 'श्वेता' पद से व्यवहृत होती है।

मण्डली-विषहर योग

वटशुङ्गा समञ्जिष्ठा जीवकर्षभकौ सिता।
काश्मर्यं मधुकं चैव पानं मण्डलिदष्टके।।११।।

मण्डली प्रजाति के सर्प द्वारा डस लेने पर वटशुङ्गा (बड़ के अंकुर), मञ्जिष्ठा, जीवक, ऋषभक, सिता (श्वेत बच), काश्मर्य एवं मधुक (मुलेठी)- इन सबको पीसकर पिलाना चाहिए। इस योग से मण्डली सर्प का विष शान्त हो जाता है।

राजिल-विषहर योग

कौन्ती कुष्ठं नतं व्योषं कटुकातिविषा मधु।
गृहधूमश्च पानेन घ्नन्ति राजिलजं विषम्।।१२।।

कौन्ती (निर्गुण्डी-बीज), कूठ, नत (तगर), त्रिकटु, कटुका (कुटकी), अतिविषा, मधु एवं गृहधूम (घर का धुआँसा/निरन्तर धुआँ लगने से दीवार पर जमा काजल)- इन सबको पीसकर पीने से राजिल सर्प का विष नष्ट हो जाता है।

विषमूर्च्छाहर अञ्जन- १

मांसीचन्दनसिन्धूत्थकृष्णायष्ट्यूषणोत्पलैः।
अञ्जनं स्यात् सगोपित्तैर्विषसुप्तप्रबोधनम्।।१३।।

मांसी, चन्दन, सैन्धव लवण, पिप्पली, मुलेठी, कालीमिर्च एवं उत्पल (कमल) को गोपित्त (गोरोचन) के साथ पीसकर अञ्जन के रूप में लगाने से सर्पविष के कारण बेहोश हुआ व्यक्ति जाग उठता है।

विषमूर्च्छाहर अञ्जन- २

नक्तमालफलव्योषबिल्वमूलनिशाद्वयम्।
सौरसं पुष्पमाजं च मूत्रं बोधनमञ्जनम्।।१४।।

नक्तमाल (करञ्ज) का फल, त्रिकटु, बिल्वमूल, दोनों प्रकार की हल्दी, सुरसा (तुलसी) का पुष्प तथा बकरी का मूत्र- इन्हें पीसकर तैयार किए गए अञ्जन का प्रयोग करने से भी बेहोश हुआ सर्पदष्ट व्यक्ति उठ खड़ा होता है।

विषमूर्च्छाहर नस्य- १

बीजकल्कः ससिन्धूत्थो मयूरकशिरीषयोः।
नस्यं यवफलाद् बीजं सपाठं वा प्रबोधनम्।।१५।।

मयूरक (अपामार्ग) एवं शिरीष के बीजों का सैन्धव लवण के साथ तैयार किया गया कल्क नस्य के रूप में दें। यह सर्पदष्ट व्यक्ति को चेतना में ला देता है। इसी प्रकार इन्द्रयव (कुटजबीज) एवं पाठा (अम्बष्ठा) के कल्क का नस्य भी सर्पदष्ट व्यक्ति की चेतना लौटा देता है।

विषमूर्च्छाहर नस्य- २

वन्ध्याकर्कोटजं मूलं छागमूत्रातिभावितम्।
नस्यं काञ्जिकसम्पिष्टं विषोपहतचेतसः।।१६।।

वन्ध्याकर्कोट (बाँझककोड़ा नाम से प्रसिद्ध ओषधि) के मूल को बकरी के मूत्र से अच्छी प्रकार भावित करें और कांजी के साथ पीसकर नस्य के रूप में दें। इसके प्रभाव से विष द्वारा अचेत (मूर्छित) व्यक्ति चेतना में आ जाता है।

सर्वविषहर अगदोत्तम

शिरीषारिष्टनक्ताह्ववेगकोशातकीफलैः।
हन्ति गोमूत्रसम्पिष्टैर्विषाण्याश्वगदोत्तमः।।१७।।

शिरीष, अरिष्ट (रीठा), नक्तमाल (करञ्ज), वेग (माकाल) एवं कोशातकी (कड़वी तोरी) के फलों को गोमूत्र के साथ पीसकर सेवन कराएं। यह उत्तम योग सभी प्रकार के विषों को शीघ्र ही नष्ट कर देता है। आयुर्वेद में विष-नाशक योग को 'अगद' कहते हैं, अत एव विषचिकित्सा-विधि को अगदतन्त्र कहा जाता है।

सर्वविषहर महागद

अङ्कोठारिष्टधत्तूरस्नुक्करञ्जाश्वमारकैः।
वृश्चीवाग्निफलीजाती-कुटजार्कैर्महागदः।।१८।।

अंकोठ, नीम, धतूरा, थूहर, करञ्ज, कनेर, वृश्चीव (पुनर्नवा), अग्निफली (कलिहारी), जाती, कुटज एवं अर्क (आक) से तैयार औषध महा अगद है- अर्थात् विष को दूर करने का श्रेष्ठ योग है।

विषसूदन अगद

नतोषणशिलादारुनक्ताह्वार्कनिशायुगैः।
शिरीषपिप्पलीयुक्तैरगदो विषसूदनः।।१९।।

नत (तगर), ऊषण (कालीमिर्च), शिला (मैनसिल), दारु (देवदारु), नक्तमाल (करञ्ज), अर्क (आक), दोनों प्रकार की हल्दी (हल्दी व दारुहल्दी) तथा शिरीष एवं पिप्पली से तैयार अगद (विषहर औषध) विष

को नष्ट कर देती है। यह अगद 'विषसूदन' नाम से प्रसिद्ध है।

ब्राह्म अगद

तिक्ततुम्बीज-बीजानि गोपित्तेन प्रपेषयेत्।
एष सर्वविषध्वंसी ब्राह्मः पानादिनागदः।।२०।।

कड़वी तुम्बी के बीजों को गोरोचना के साथ पीसकर पिलाएं। यह 'ब्राह्म अगद' सभी विषों का विध्वंस कर देता है। इस योग को चूर्ण आदि के रूप में भी दिया जा सकता है।

शिरीष-गोमूत्र योग

मूलत्वक्पत्रपुष्पाणि बीजं चेति शिरीषतः।
गवां मूत्रेण पिष्ट्वैतद् भेषजं विषवारणम्।।२१।।

शिरीष की जड़, छाल, पत्र, पुष्प एवं बीजों को गोमूत्र के साथ पीसकर पीना चाहिए। यह विष-निवारण करने वाली उत्तम औषध है। शिरीष (सिरस का वृक्ष) विष-चिकित्सा में अति उपयोगी है। चरकसंहिता का वचन है- **'शिरीषो विषघ्नानाम्'** (सूत्रस्थान-२५.४०) अर्थात् विषनाशक पदार्थों में शिरीष सर्वोत्कृष्ट है। अत एव यहाँ शिरीष के पञ्चांग का अगद निर्दिष्ट है।

सार्वकर्मिक अगद- १.

मञ्जिष्ठैला निशा लाक्षा मांसी यष्टी हरेणुका।
क्षौद्रं चेति विषघ्नोऽयमगदः सार्वकर्मिकः।।२२।।

मञ्जिष्ठा, एला (छोटी इलायची), हल्दी, लाक्षा (लाख), मांसी, मुलेठी, हरेणुका एवं मधु से बनाया गया योग भी सभी प्रकार के विषों को दूर करने में समर्थ अगद है।

सार्वकर्मिक अगद- २.

लवणानि त्रिवृद् यष्टी विशल्या त्र्यूषणं निशे।
मञ्जिष्ठा मधु शृङ्गस्थो ह्यगदः सर्वकर्मकृत्।।२३।।

तीनों लवण (सैन्धव, सौवर्चल एवं विड लवण), त्रिवृत् (निशोथ), मुलेठी, विशल्या, त्रिकटु, दोनों प्रकार की हल्दी (हल्दी एवं दारुहल्दी), मञ्जिष्ठा एवं मधु- इनका योग बनाकर गोशृङ्ग (गाय के पोले सींग) में रखकर प्रयोग करें। यह योग सभी विषों का निवारण करने में समर्थ अगद है। गोशृङ्ग में रखने से इसका विष-नाशक प्रभाव बढ़ जाता है।

सर्वविषहर 'चन्द्रोदय' अगद

चन्दनालशिलाकुष्ठत्वक्पत्रैलाब्दसर्षपाः।
मांसीपद्मकवक्रासृक्सुरसैताह्वरोचनाः।।२४।।
स्पृक्काहिंग्वम्बुलामज्जशतपुष्पाप्रियङ्गवः।
पिष्टाः सर्वविषोन्माथी नाम्ना चन्द्रोदयोऽगदः।।२५।।

चन्दन, अल (हरताल), शिला (मैनसिल), कुष्ठ (कूठ), त्वक् (दालचीनी), पत्र (तेजपात), अब्द (मुस्तक), सर्षप, मांसी, पद्मक, वक्र (तगर), असृक् (कुंकुम), सुरस (काली तुलसी एवं श्वेत तुलसी), रोचना, स्पृक्का (असरबग), हिंगु, अम्बु (उदीच्य), लामज्ज, शतपुष्पा (सोआ) एवं प्रियङ्गु- इन सबको पीसकर सेवन करना चाहिए। यह 'चन्द्रोदय' नामक उत्तम अगद सभी प्रकार के विषों को नष्ट कर देता है।

सर्वविषहर 'सूर्योदय' अगद

श्यामेभपाटलीकृष्णामञ्जिष्ठाकिणिही-शिलाः।
कोविदारोषणे वक्रं निशे दध्यपराजितम्।।२६।।
बृहतीं मधुकं चैव गोमूत्रेण प्रपेषयेत्।
एष सूर्योदयो नामा विषरक्षोजयोऽगदः।।२७।।

श्यामा (निशोथ), इभ (नागकेसर), पाटली, कृष्णा (पिप्पली), मंजिष्ठा, किणिही (कटभी), शिला (मैनसिल), कोविदार (कचनार), ऊषण (कालीमिर्च), वक्र (तगर), दोनों हल्दियाँ (हल्दी एवं दारुहल्दी),

दधि (दधित्थ/कैंथ), अपराजिता, बृहती एवं मधुक (मुलेठी)- इन सभी को गोमूत्र के साथ पीसकर सेवन करावें। यह 'सूर्योदय' नामक अगद है, जो विष एवं राक्षसों (रोगोत्पादक जीवाणु-विषाणुओं) को जीत लेता है।

विषनाशक सात श्रेष्ठ ओषधियाँ

ईश्वरी कदली नागी चन्द्रा श्वेता घनस्वनः।
निर्गुण्डी चेति वर्गोऽयं पृथग् वा विषजित् परम्।।२८।।

ईश्वरी (गन्धनाकुली), कदली, नागी (नागिनी/उरगस्फटा), चन्द्रा (एला), श्वेता (श्वेत वचा), घनस्वन (तण्डुलीय) और निर्गुण्डी- इन ओषधियों का वर्ग (समूह) परम विषनाशक है। ये ओषधियाँ समूह के अतिरिक्त केवल/अकेली प्रयुक्त होने पर भी ऐसा ही तीव्र विषघ्न प्रभाव रखती हैं।

छत्तीसगढ़ की एक जनजाति द्वारा ईश्वरी (गन्धनाकुली) बूटी के प्रयोग से सर्पविष-निवारण का चिकित्सा कार्य बहुचर्चित एवं प्रसिद्ध है। इसे वे अपनी जीविका के रूप में करते हैं। उनका दावा है कि जो सर्पदष्ट व्यक्ति होश में उन तक पहुँच जाए तो ईश्वरी (गन्धनाकुली) के प्रयोग से वे उसे मरने नहीं देते हैं।

विषनाशक विशिष्ट योग

स्रुते पलाशजे क्षारे पच्यमाने क्षिपेदिमान्।
कौन्तीकुष्ठनतव्योषसुरसाशारिवाघनाः ।।२९।।
मांसीहिङ्गुनिशायष्टीविडङ्गसैन्धवं तथा।
दर्वीप्रलेपनं ज्ञात्वा गोशृङ्गे स्थापयेदतः।।३०।।
कोलमात्रं पिबन् हन्ति विषाण्यतिबलान्यपि।
यक्ष्मगुल्मोदरार्शांसि मेहमन्दानलज्वरान्।।३१।।

पलाश वृक्ष के काष्ठ को जलाकर उसकी राख को पानी में उबालकर उसमें से पलाशक्षार अलग किया जाता है। इस प्रक्रिया में पानी के अन्दर

डाली गई राख में से जब क्षार अलग हो जाए तो उसी समय उसमें ये ओषधियाँ डाल दें- कौन्ती (निर्गुण्डीबीज), कूठ, नत (तगर), त्रिकटु, सुरसा (तुलसी), सारिवा, मुस्ता, मांसी, हींग, हल्दी, मुलेठी, विडङ्ग एवं सैन्धव। पकते हुए जब ये करछी पर चिपकने वाली गाढ़ी हो जाएं, तब इन्हें गोशृङ्ग (गाय के पोले सींग) में भरकर रख लें। इसे कोल (बेर) के परिमाण में सेवन करने से प्रबल विष भी नष्ट हो जाते हैं तथा यक्ष्मा, गुल्म, उदररोग, अर्श, प्रमेह, मन्दाग्नि एवं ज्वर भी नष्ट हो जाते हैं।

विषपान करने वाले की चिकित्सा

समधुर्विषपीतस्य वमनं गोमयाद् रसः।
हृदयावरणं सर्पिरगदांश्च प्रयोजयेत्।।३२।।

विष पी चुके व्यक्ति की चिकित्सा करते समय सबसे पहले उसे गोमय (गाय के गोबर) से निचोड़े रस में मधु मिलाकर वमन करवाना चाहिए। हृदय पर विष का प्रभाव रोकने के लिए घृत पिलाना चाहिए तथा अन्य विषनाशक ओषधियों का प्रयोग करवाना चाहिए।

मूलविषार्त्त एवं दिग्धविद्ध की चिकित्सा

रजनी-सैन्धव-क्षौद्रसंयुक्तं घृतमुत्तमम्।
पानं मूलविषार्त्तस्य दिग्धविद्धस्य चेष्यते।।३३।।

पेड़-पौधे आदि के मूल में होने वाले विष अथवा विषबुझे बाण आदि से पीड़ित व्यक्ति के लिए हल्दी, सैन्धव लवण एवं मधु से युक्त गोघृत का पान उत्तम औषध है। इससे विष का प्रभाव शान्त हो जाता है।

सर्वविषहर विशिष्ट योग

शर्कराक्षौद्रसंयुक्तं चूर्णं ताप्यसुवर्णयोः।
लेहः प्रशमयत्युग्रं सर्वयोगकृतं विषम्।।३४।।

शर्करा एवं मधु से युक्त ताप्य (सुवर्णमाक्षिक) भस्म तथा सुवर्ण भस्म के लेह (चाटने) से सभी प्रकार का उग्र विष भी शान्त हो जाता है। सुवर्ण (सोना) उत्तम विषनाशक होता है, अत: यहाँ स्वर्णभस्म को सर्वविध उग्र विष का नाशक बताया है। चरकसंहिता में विषचिकित्सा के प्रसंग में कहा है-

हेम सर्वविषाण्याशु गरांश्च विनियच्छति। न सज्जते हेमपाङ्गे विषं पद्मदलेऽम्बुवत्।।

(चरकसंहिता, चिकित्सास्थान-२३.२४०)

अर्थात् सुवर्ण सभी विष तथा गरविषों को नष्ट कर देता है। स्वर्ण (स्वर्णभस्म) का पान करने वाले व्यक्ति के अंगों में विष उसी प्रकार नहीं टिकता है, जैसे कमल-दल पर जल।

वृश्चिकविष-नाशक योग

तालनिम्बदलं केशा जीर्णचैलं यवा घृतम्।
धूपो वृश्चिकविद्धस्य शिखिपत्रघृतेन वा।।३५।।

वृश्चिक (बिच्छू) द्वारा डसे व्यक्ति के लिए तालपत्र, निम्बपत्र, केश (मनुष्य के बाल), जीर्ण वस्त्र (पुराने कपड़े), यव (जौ) एवं घृत- इनसे धूप देना हितकर होता है। इसी प्रकार शिखिपत्र (मोर के पंख) व घृत की धूप से भी वृश्चिक-विष का निवारण हो जाता है।

धूपन भी विष-निवारण का एक अच्छा उपाय है। वृश्चिक-विष के अतिरिक्त अन्य विषों की चिकित्सा हेतु भी धूप का विधान है। अष्टाङ्ग-संग्रह का वचन है-

नृकेशा: सर्षपा: पीता गुडो जीर्णश्च धूपनम्।
विषदंशस्य सर्वस्य काश्यप: परमब्रवीत्।।

(अष्टाङ्गसंग्रह, उत्तरस्थान- ४३.४१)

अर्थात् मनुष्य के केश, पीली सरसों एवं पुराने गुड़ का धूप (धुआँ देना) सभी प्रकार के विषदंश की उत्तम चिकित्सा है, ऐसा महर्षि काश्यप का वचन है।

वृश्चिकविष-नाशक अन्य योग

अर्कक्षीरेण सम्पिष्टं लेपो बीजं पलाशजम्।
वृश्चिकार्त्तस्य कृष्णा वा शिरीषफलसंयुता।।३६।।

बिच्छू के विष से पीड़ित व्यक्ति के लिए अर्क (आक) के दूध में पिसे पलाश के बीजों का लेपन हितकर होता है। इसी प्रकार आक के में दूध शिरीष के फल के साथ पिसी कृष्णा (पिप्पली/तुलसी) का लेप भी उस व्यक्ति के लिए हितकर होती है।

मनोह्वा सैन्धवं हिङ्गु जातीपत्रं सनागरम्।
गोशकृद्रससम्पिष्टं गुडिका वृश्चिकार्त्तिनुत्।।३७।।

शोधित मनोह्वा (मैनसिल), सैन्धव लवण, हींग, जातीपत्र व नागर (शुण्ठी)- इन्हें गाय के गोबर के रस में पीसकर गोली बनाएं। यह बिच्छू के विष को दूर कर देता है।

मूषिकविषहर योग

तिलकाङ्कोठयोर्मूलं गिरिकर्ण्यास्तिलस्य च।
शर्करा-मधु-सर्पींषि पानमाखुविषापहम्।।३८।।

तिलक व अङ्कोठ के मूल तथा गिरिकर्णी (अपराजिता/सफेद कोयल) व तिल के मूल को पीसकर शर्करा, मधु व घृत के साथ पीना चाहिए। इससे चूहे का विष दूर हो जाता है।

पानं साहचरं मूलं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना।
पयसा वाखुदष्टस्य पिष्टा तिलकमञ्जरी।।३९।।

सहचर (झिण्टी) की जड़ को पीसकर मधु मिलाएं। तत्पश्चात् तण्डुल-जल के साथ इसका पान करें। इससे चूहे का विष दूर हो जाता है। इसी प्रकार दूध के साथ पिसी हुई तिलकमञ्जरी (मरुए की मञ्जरी/फूल) का सेवन करने से भी मूषिक-विष का निवारण हो जाता है।

मार्जारकस्य बभ्रोर्वा पीतो मांसरसः शृतः।
सोपद्रवमपि क्षिप्रं जयेन्मूषिकजं विषम् ।।४०।।

मार्जारक (बिलाव) अथवा बभ्रु (नेवले) के पके मांसरस को पीने से चूहे का प्रबल विष शीघ्र ही शान्त हो जाता है।

अलर्कविषहर योग

अङ्कोठोत्तर-मूलोत्थ-कषायस्य पलत्रयम्।
सर्पिषश्च पलं पीतमालर्कविष-नाशनम्।।४१।।

अङ्कोठ एवं उत्तर की जड़ के कषाय को तीन पल परिमाण में लें। इसमें एक पल परिमाण में घृत मिलाकर पान करें। इससे अलर्क (पागल कुत्ते) का विष नष्ट हो जाता है।

अर्कक्षीरं तिलात् तैलं पललं च गुडं समम्।
पानाज्जयति दुर्वारं तूर्णं कुक्कुरजं विषम्।।४२।।

अर्क (आक) का दूध, तिल का तेल, पलल (तिलकल्क/तिलकुट) एवं गुड़- इन्हें सम मात्रा में मिलाकर पीने से कुत्ते का प्रबल विष शीघ्र ही शान्त हो जाता है।

सर्वकीटविष-नाशक योग

क्षारो व्योषं वचा हिङ्गु विडङ्गं सैन्धवं नतम्।
अम्बष्ठातिविषा कुष्ठं सर्वकीटविषागदः।।४३।।

क्षार, त्रिकटु, वचा, हींग, विडङ्ग, सैन्धव, नत (तगर), अम्बष्ठा (पाठा), अतिविषा एवं कुष्ठ (कूठ)- इनके मिश्रण से बनाया गया योग सभी प्रकार के विषैले कीटों के विष को दूर कर देता है।

पीत्वा मूलं त्रिवृत्तुल्यं तण्डुलीयस्य सर्पिषा।
सर्वकीटविषान्याशु जयत्यतिबलान्यपि।।४४।।

त्रिवृत् (निशोथ) के समान परिमाण में तण्डुलीय (चौलाई) की जड़ को पीसकर घृत के साथ पीना चाहिए। यह योग सभी प्रकार के प्रबल कीटविषों को भी शान्त कर देता है।

कर्णिकाहर योग

पारावतशकृद् दन्ती गोदन्तः सैन्धवं त्रिवृत्।
कुसुम्भं स्नुक्पयो वह्निः कर्णिकापातनं परम्।।४५।।

पारावत (परेवा) की बींट, दन्ती, गोदन्त (गोदन्ती भस्म), सैन्धव लवण, त्रिवृत् (निशोथ), कुसुम्भ (बर्रे), स्नुक्क्षीर (थूहर का दूध) एवं चित्रक से बना योग परम कर्णिका-पातन होता है- अर्थात् विष से उभरी कर्णिकाओं का शमन कर देता है। कमल के मध्यकोश को 'कर्णिका' कहते हैं। उसके समान गोल उभार वाली ग्रन्थि को यहाँ 'कर्णिका' कहा है। विषैले प्राणियों के दंश से शरीर पर इस प्रकार की कर्णिकाएं उभर जाती हैं- **'दंशावदरणं स्फोटाः कर्णिका मण्डलानि च'**- (चरकसंहिता, चिकित्सास्थान- २३.१७८)

लूताविषहर योग

चन्दनं पद्मकं कुष्ठं नताम्बूशीरपाटलाः।
निर्गुण्डी शारिवा शेलु लूताविषहरोऽगदः।।४६।।

चन्दन, पद्मक, कूठ, नत (तगर), अम्बु (उदीच्य), उशीर (खस), पाटला, निर्गुण्डी, शारिवा एवं शेलु (लिसोड़ा)- इनका योग लूता (मकड़ी) के विष को दूर करने वाला अगद है।

कपित्थं पाटली शेलु शिरीषं द्वे पुनर्नवे।
द्वे श्वेते चागदः सर्वलूताविष-निवारणः।।४७।।

कपित्थ (कैंथ), पाटली, शेलु (लिसोड़ा), शिरीष, दोनों प्रकार की पुनर्नवा (श्वेत एवं रक्त), दोनों प्रकार की श्वेता (वचा)- इनका योग सर्वविध लूताओं के विष को दूर करने वाला अगद है।

यह पद्य 'गदनिग्रह' (सोढल-प्रणीत) तथा 'योगरत्न-समुच्चय' (अनन्तकुमार-प्रणीत) में भी उद्धृत है, वहाँ इसके चतुर्थ चरण का पाठ इस प्रकार है- 'लूताविषहरो गण:' (गदनिग्रह, विषतन्त्र- ४.७; योगरत्न-समुच्चय, विषचिकित्साधिकार- ३०६)

विषार्त्त के लिए पथ्य-अपथ्य

शीतक्रमो विषार्त्ते स्यान्मुक्त्वा वृश्चिकजं विषम्।
क्रोधातप-दिवास्वप्न-व्यायामाश्च विगर्हिता:।।४८।।

विष-पीड़ित व्यक्ति के प्रति शीतल क्रम अपनाना चाहिए, परन्तु वृश्चिक विष में यह वर्जित है। विष-पीड़ित व्यक्ति के लिए क्रोध करना, आतप (धूप का सेवन), दिवा-शयन एवं व्यायाम- ये हानिकर होने से त्याज्य हैं।

उपद्रवा द्रुतं साध्या ज्वराद्या: स्वचिकित्सितै:।
अविदाहीनि चान्नानि विषार्त्तानां प्रयोजयेत्।।४९।।

विष-पीड़ित व्यक्तियों के ज्वर आदि उपद्रवों को उनकी अपनी चिकित्सा से शान्त करना चाहिए। विषार्त्त व्यक्तियों के लिए अविदाही (जलन न करने वाले) अन्नपान का ही प्रयोग करवाना चाहिए- अर्थात् इनके भोजन में मिर्च-मसाले, तली-भुनी एवं चटपटी वस्तुएं नहीं होनी चाहिए।

।। इति विषाध्याय: सप्तविंशतितम: समाप्त:।।

अष्टाविंश अध्याय

रसायन, वाजीकरण

रसायन का लक्षण एवं सेवनविधि

यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम् ।
पूर्वे वयसि मध्ये वा शुद्धकायः समाचरेत् ।।१।।

जो भेषज (औषध) जरा (वृद्धावस्था-जन्य क्षीणता) एवं व्याधि का विध्वंस कर शरीर में स्फूर्त्ति व शक्ति का संचार बनाए रखती है, उसे 'रसायन' कहते हैं। इसका प्रयोग जीवन की पूर्व अवस्था या मध्यम अवस्था में करना चाहिए। प्रयोग करने से पहले वमन-विरेचन आदि से शरीर को शुद्ध करना चाहिए; अन्यथा रसायन-सेवन का पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं होता।

धात्रीफल रसायन

सर्पिर्माक्षिकलोहाराविद्धधात्रीफलैर्भृतम्।
वर्षार्द्धमुषितं कुम्भे तन्निषेवी जरां जयेत्।।२।।

लोहे के अरे से आविद्ध (बिंधे हुए) आंवले के फलों को मधु व घृत में डालकर घड़े में बन्द कर छह मास तक रखें। इस प्रकार यह एक उत्तम रसायन बन जाता है। इसका सेवन करने वाला व्यक्ति वृद्धावस्था-जन्य विकारों को जीत लेता है।

यहाँ आंवलों को लोहे के अरे से बींधने का विधान किया है; क्योंकि ऐसा करने से उनमें लोह-तत्त्व की मात्रा बढ़ जाती है। जैसे ही हम लोहे के चाकू आदि से आंवले को काटते हैं, तो उसके टुकड़ों पर कालापन उभर आता है। यह आंवले के साथ लोहे के स्पर्श से उसमें बढ़े हुए लोह-तत्त्व का सूचक होता है। बींधने के उपरान्त आँवलों में घृत व मधु का प्रवेश भी अच्छे प्रकार से हो जाता है।

इस योग में घृत व मधु को समान मात्रा में लें; क्योंकि जब द्रव्यों की मात्रा का निर्देश नहीं किया जाता, तब उनकी समान मात्रा ही ली जाती है। यद्यपि घृत व मधु की समान मात्रा विषतुल्य बताई जाती है, अत: निषिद्ध है; परन्तु जब घृत एवं मधु के साथ अन्य द्रव्य रहते हैं, तब इनकी समान मात्रा दोषकारक नहीं होती है।

पथ्यादि रसायन

पथ्याकृष्णा-विडङ्गायो-धात्रीचूर्णं सशर्करम्।
सर्पिस्तैलयुतं खादञ्जरया नाभिभूयते।।३।।

पथ्या (हरीतकी), कृष्णा (पिप्पली), विडङ्ग, लोहभस्म, आंवलाचूर्ण एवं शर्करा को मिलाएं, तदनन्तर इनमें तिल का तेल व घृत सम मात्रा में मिला लें। इस प्रकार यह एक रसायन तैयार हो जाता है। इसका सेवन करने वाला व्यक्ति वृद्धावस्था के विकारों से पीड़ित नहीं होता है।

विडंगादि रसायन- १.

कृमिघ्नासनधात्र्ययश्चूर्णं क्षौद्राज्यतैलवत् ।
किं चित्रं यदि तारुण्यं लभते प्राश्य मानवः।।४।।

विडङ्ग, असन, आंवला एवं लोहचूर्ण (लोहभस्म) को मधु, घृत व तेल के साथ सेवन कर व्यक्ति तारुण्य (यौवन) प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

विडंगादि रसायन- २.

विडङ्ग-त्रिफला-कृष्णा-लोहचूर्णाज्य-शर्कराः।
सक्षौद्राः शीलिता घ्नन्ति वार्द्धकं पलितैः सितम्।।५।।

विडङ्ग, त्रिफला, पिप्पली, लोहभस्म, घृत एवं शर्करा को मधु मिलाकर निरन्तर सेवन करना चाहिए। इससे बालों का श्वेतपन एवं वार्द्धक्य का प्रभाव दूर हो जाता है।

त्रिफला रसायन

लोहचूर्णं सिताविश्व-कृष्णा-तैलाज्य-संयुतम्।
दर्वीलेपी कषायः स्यात् त्रिफलाया रसायनम्।।६।।

त्रिफला का कषाय बनाएं, साथ में लोहभस्म, शर्करा, शुण्ठी एवं पिप्पली को पीसकर मिला दें तथा उचित मात्रा में घृत एवं तेल डालें। इस प्रकार दर्वीलेपी (करछी के ऊपर चिपकने वाला अर्थात् गाढ़ा) बना हुआ यह त्रिफला कषाय का योग उत्तम रसायन बन जाता है।

त्रिफला-लोह रसायन

निर्वाप्य त्रिफला-क्वाथे लोहपत्राण्यनेकशः।
तद्रजो मधुसर्पिर्भ्यां लीढं जीवितवर्धनम्।।७।।

त्रिफला के क्वाथ में लोहे के पतले पतरों को अनेक बार बुझाएं; तदनन्तर उनकी भस्म बनाकर मधु एवं घृत के साथ चाटें। यह योग आयुर्वृद्धि करता है।

धात्रीरस-रसायन

धात्र्यम्ब्वाज्यमधूनां तु लोहकुम्भे शतं शतम्।
द्वे शते लोहचूर्णस्य युक्तमायुष्यमुत्तमम्।।८।।

आमलकी-रस, घृत एवं मधु को शत (सौ) शत (पल) परिमाण में लेकर लोहे के घड़े में रखें। इसमें दो शत (पल) लोहभस्म मिलाएं। इस प्रकार तैयार किया गया यह रसायन आयुर्वृद्धि के लिए उत्तम होता है।

ताप्य-त्रिफला रसायन

ताप्य-त्रिफलयोश्चूर्णं सर्पिःक्षौद्रविमिश्रितम्।
खादतः प्रशमं याति वैवस्वतवधूर्जरा।।९।।

ताप्य (स्वर्णमाक्षिक/सोनामाखी) की भस्म व त्रिफला के चूर्ण को घृत एवं मधु के साथ मिलाकर खाने वाले व्यक्ति से वैवस्वत (यमराज) की वधू रूप में विद्यमान वृद्धावस्था दूर हो जाती है।

पालित्यहर रसायन

सविडङ्गाज्यमध्वक्तमयश्चूर्णं स्थितं समाम्।
समुद्गे बैजके प्राश्य नीलकेशो भवेद् बली।।१०।।

विडङ्ग, घृत एवं मधु मिलाकर लोहभस्म को बैजक (बीजक- अर्थात् असन वृक्ष की लकड़ी से बने) पात्र में एक वर्ष तक रखें; तदनन्तर इसका सेवन करने से व्यक्ति काले केशों वाला, यौवन-सम्पन्न एवं बलवान् हो जाता है।

काश्मर्य रसायन

काश्मर्याणां तुलां मासं स्थितां सर्पिर्मधूक्षिताम्।
उपयुज्य पयोन्नाशी विजरो भाति चन्द्रवत्।।११।।

काश्मर्य (गम्भारी) फलों की एक तुला की मात्रा को एक मास पर्यन्त घृत व मधु में डालकर रखें; तदनन्तर उसका सेवन करें तथा पथ्य के रूप में पयोन्न (खीर) खाएं। ऐसा करने वाला व्यक्ति चन्द्रमा के समान कान्तिमान् एवं वृद्धावस्था-जन्य विकारों से मुक्त हो जाता है।

वाराहीमूल रसायन

वाराहीमूल-चूर्णस्य शतं मधुयुतं क्रमात्।
युवा स्यात् पयसा पीत्वा क्षीराज्यान्नभुगादृतः।।१२।।

वाराहीमूल के चूर्ण को एक शत (एक पल) परिमाण में लें। मधु मिलाकर दूध के साथ इसका सेवन करें। यह क्रम प्रतिदिन अपनाएं तथा पथ्याहार के रूप में घृत व दुग्ध मिश्रित अन्न खाएं। इस प्रकार से इस रसायन का श्रद्धापूर्वक सेवन करने वाला व्यक्ति पुनः युवा हो जाता है।

श्लक्ष्णचूर्णेन वाराह्याः शृतं क्षीरं विचूर्णितम्।
तदाज्यमधुना लीढं मासमेकं रसायनम्।।१३।।

वाराहीमूल के चूर्ण को दूध के साथ पकाकर एक मास तक पिएं। यह

उत्तम रसायन है। इसी प्रकार वाराहीमूल के चूर्ण को घृत व मधु के साथ एक मास तक सेवन करें। यह भी उत्तम रसायन होता है।

पुनर्नवा-रसायन

मूलं पौनर्नवं पिष्टं पलार्द्धं पयसा पिबन्।
मासार्द्धं मासयुग्मं वा समां वा विजरो भवेत्।।१४।।

पुनर्नवा-मूल को आधा पल परिमाण में लें। इसे पीसकर दुग्ध के साथ पिएं। यह क्रम पन्द्रह दिन, दो मास अथवा एक वर्ष तक करना चाहिए। ऐसा करने से व्यक्ति जरा-विकारों से मुक्त हो जाता है।

शतावर्यादि रसायन

शतावर्यसनोशीर-पाठा-नागबला-बला:।
विदारी शारिवा व्याघ्री योज्या: पौनर्नवक्रमात्।।१५।।

पूर्व श्लोक में पुनर्नवा-सेवन का जो क्रम बताया है, उसी क्रम से शतावरी, असन, उशीर, पाठा, नागबला, बला, विदारी, शारिवा अथवा व्याघ्री का सेवन करना चाहिए। इनके सेवन से भी पूर्वोक्त रसायन-गुण प्राप्त होता है।

अश्वगन्धा रसायन

तैलेन सर्पिषा वापि पयसोष्णोदकेन वा।
अश्वगन्धां पिबेत् पक्षं पुष्टिकामो हिताशन:।।१६।।

शरीर की पुष्टि का इच्छुक व्यक्ति एक पक्ष तक अश्वगन्धा चूर्ण का तेल, घी, दूध अथवा उष्ण जल के साथ सेवन करे तथा हिताशन (हितकर भोजन) लेता रहे। ऐसा करने से शरीर पुष्ट तथा स्नायुतन्त्र सबल होता है।

रसायन-सेवी की आहारविधि

क्षीरेण मुद्गयूषेण जाङ्गलानां रसेन वा।
रसायनार्थिना नित्यं भोक्तव्या: शालिषष्टिका:।।१७।।

रसायन-गुण चाहने वाले व्यक्ति को दूध, मुद्गयूष अथवा जाङ्गल-रस के साथ शालि (चावल) या षष्टिक (साठी चावल) का सेवन करना चाहिए।

वाजीकरण-प्रकरण

मधुक एवं माषसिद्ध योग

प्रलिह्य मधुसर्पिर्भ्यां यष्ट्याः कर्षं पयोनुपः।
वाजी भवति वृद्धोऽपि माषाणां वा पलं तथा।।१८।।

मधु एवं घृत के साथ मुलेठी का चूर्ण एक कर्ष मात्रा में लेकर सेवन करें तथा अनुपान के रूप में दुग्ध लें। इसका सेवन करने वाला वृद्ध व्यक्ति भी शुक्रसम्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार एक पल परिमाण में पाकविधि के साथ उड़द का सेवन करने से भी उक्त लाभ मिलता है।

कौंचबीज-गोखरू योग, उच्चटा चूर्ण योग

बीजचूर्णं सितायुक्तमात्मगुप्ताश्वदंष्ट्रयोः।
पीत्वा क्षीरेण वाजी स्यादुच्चटाचूर्णमेव वा।।१९।।

आत्मगुप्ता (कौंच) एवं श्वदंष्ट्रा (गोखरू) के बीजों के चूर्ण में शर्करा मिलाकर दूध के साथ सेवन करें। इससे व्यक्ति शुक्रसम्पन्न हो जाता है। उच्चटा के चूर्ण का भी इसी प्रकार सेवन करना चाहिए। इससे भी शुक्रवृद्धि होती है।

विदारीकन्द योग

विदार्या भावितं चूर्णं स्वरसेनैव भूरिशः।
मधुसर्पिर्युतं लीढमेतद् वृष्यतमं मतम् ।।२०।।

विदारी कन्द के चूर्ण को अनेक बार उसी के रस से भावित कर मधु एवं घृत मिलाकर चाटना चाहिए। यह योग अत्यन्त वृष्य माना जाता है।

छागाण्ड योग

छागाण्डसंश्रृतक्षीरभावितान् बहुशस्तिलान्।
अद्यात् क्षीरानुपानं यो न तस्य पतति ध्वजः।।२१।।

छाग (बकरे) के वृषण (अण्डकोष) के साथ पकाए दूध में तिलों को अनेक बार भावित करके खाने से तथा दूध को अनुपान रूप में लेने से ध्वजभङ्ग (लिङ्गशैथिल्य) नहीं होता।

विशेष- द्रव्यगुण की दृष्टि से इस प्रकार के योग आयुर्वेद के कुछ ग्रन्थों में मिलते हैं। इनके पीछे ग्रन्थकार का यह अभिप्राय नहीं है, कि लोग उन्हें अपनाएं, अपितु केवल- **'सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्'** (चरकसंहिता, सूत्रस्थान- १.४४) इस सिद्धान्त की दृष्टि से इस प्रकार के योगों का उल्लेख होता है। हिंसात्मक व आसुरी प्रवृत्ति से युक्त होने के कारण इस प्रकार के योग सर्वथा त्याज्य हैं। अन्य बहुत से उत्तम व निर्दोष वाजीकर योग हैं, उन्हें ही अपनाना चाहिए। ध्यान रहे वाजीकर योगों का उद्देश्य शुक्रपुष्टि द्वारा उत्तम सन्तान-प्राप्ति ही है; विलासिता को बढ़ावा देना नहीं, क्योंकि विलासिता व कामुकता का परिणाम सदा ही घातक, दुःखदायक व पतनकारक होता है।

आयुर्वेद के महान् आचार्य वाग्भट ने भी इस विषय में सावधान करते हुए कहा है-

उपदिष्टे विचित्रेऽस्मिन् वक्तव्यार्थानुरोधतः।
कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्यं प्राणाबाधेऽपि नेतरत्।।

(अष्टांगसंग्रह, वाजीकरणविधि-४९.८८, अत्रिदेव-संस्करण, खण्ड- २, पृ.- ४३०)

अर्थात् वक्तव्य के अनुरोध से सिद्धान्त भर दिखाने के लिए कुछ विचित्र (अजीब) योगों का उल्लेख भी आयुर्वेद में होता है, परन्तु उन्हें कदापि नहीं अपनाना चाहिए। प्रत्युत कर्त्तव्य एवं धर्म के अनुसार ही योगों को ग्रहण करना चाहिए। मृत्यु भले ही हो जाए, परन्तु हिंसात्मक, निर्दयतापूर्ण एवं बीभत्स योगों को स्वीकार नहीं करना चाहिए।

क्षीरघृत योग

क्षीरसर्पि:शृतं मासं पिण्डं बिल्वफलोपमम्।
शीतं मधुयुतं प्राश्य ध्वजोच्छ्रयमवाप्नुयात्।।२२।।

दूध में घृत मिलाकर पकाते रहें तथा बिल्वफल जितना बड़ा गाढ़ा पिण्ड बनने पर उसे कुछ शीतल कर मधु के साथ सेवन करें। यह क्रम निरन्तर एक मास तक करें। ऐसा करने वाला व्यक्ति शुक्रवृद्धि के कारण ध्वजोच्छ्रय (लिङ्गदार्ढ्य) को प्राप्त करता है।

वृष्यतम शष्कुली

तिलात्मगुप्ता-माषाणां चूर्णं शालिरज: पय:।
शष्कुल्यो घृतसम्पक्वा भक्ष्या वृष्यतमा मता:।।२३।।

तिल, आत्मगुप्ता (कौंच बीज), पकवानों में प्रयुक्त उड़द का चूर्ण (आटा) व शालिचूर्ण (चावल का आटा) एवं दूध- ये सब अतिवृष्य होते हैं। इसी प्रकार घृत में पकाई गई शष्कुलियाँ (कचौरियाँ) तथा इसी प्रकार घृतपक्व अन्य भक्ष्य भी वृष्यतम (अत्यन्त वीर्यवर्द्धक) माने जाते हैं।

वाजीकर आहार-विहार

विविधान्यन्नपानानि शब्दाश्चेतोऽनुगामिन:।
गन्धा: सुरभयश्चित्रा: स्रजश्च पुंस्त्वहेतव:।।२४।।

विविध अन्नपान तथा मनोनुकूल शब्द, हृदय को प्रिय लगने वाली सुगन्ध तथा विचित्र माला आदि मनोहर वस्तुएं पुंस्त्ववर्द्धक होती हैं।

।। इति रसायन-वाजीकरणाध्यायोऽष्टाविंशतितम: समाप्त:।।

एकोनत्रिंश अध्याय

कुमारतन्त्र

सन्तति व रति के बाधक योनिरोग

रतेर्धाम परं योषिद् अपत्यानर्घरत्नसूः।
योनिव्यापत्तयस्तस्याः प्रजारतिविनाशनाः।।१।।

नारी रति (प्रेम) का परम धाम है तथा सन्तानरूपी अमूल्य रत्न की जननी है। उसकी योनिगत व्यापत्तियाँ (व्याधियाँ) सन्तानसुख एवं रतिसुख को नष्ट कर देती हैं। अत: यहाँ उनकी चिकित्सा का वर्णन किया जा रहा है।

वातपित्तकफ-जन्य योनिविकार

शूलकार्कश्यविभ्रंशस्तम्भतोदवतीरणात्।
पित्तसन्दूषिता दाहपाकरक्तस्रुतिज्वरैः।।२।।
कफदुष्टा भवेद् योनिः सकण्डूशैत्यगौरवा।
स्रवन्त्याचामसङ्काशं श्वेतं पिच्छिलमेव च।।३।।

वातविकारों के कारण योनि- शूल (पीड़ा), कर्कशता (कठोरता), विभ्रंश (स्थान से अलग होना, बाहर निकलना), स्तम्भ (जकड़न) एवं तोद (चुभन जैसी पीड़ा) से युक्त हो जाती है। पित्त से दूषित योनि- दाह, पाक, रक्तस्रुति एवं ताप से युक्त हो जाती है। कफ से दूषित योनि- कण्डू, शैत्य एवं गौरव से युक्त हो जाती है और उससे आचाम (माँड) के समान श्वेत, पिच्छिल (चिपचिपे) द्रव का स्राव होता है।

वातिक योनिविकारों की चिकित्सा

स्वेदः पायस-संयावैः सतैलपिचुधारणाम्।
स्नेहस्वेदोत्तरा वस्तिर्वातयोन्याः प्रशस्यते।।४।।

पायस (खीर) तथा संयाव (हलुवा) द्वारा योनि का स्वेदन करना चाहिए तथा तैल सहित पिचु (रूई का फोया) योनि में रखना चाहिए। वातदोष से पीड़ित योनि के लिए स्नेहन एवं स्वेदन के पश्चात् वस्ति उत्तम मानी जाती है।

योनिशूलहर योग

पिप्पल्यर्जकमूलाभ्यां योनिशूले पिबेत्सुराम्।
कृष्णोपकुञ्चिकाभ्यां वा युक्तां सौवर्चलेन वा।।५।।

वातजन्य योनिशूल में पिप्पली एवं अर्जकमूल (श्वेत तुलसी की जड़) के साथ सुरा (मद्य) का पान करना चाहिए अथवा कृष्णा (पिप्पली) तथा उपकुञ्चिका (छोटी इलायची) के साथ सुरापान करना चाहिए। इसी प्रकार सौवर्चल लवण (सोंचर नमक) के साथ सुरापान करने से योनिशूल दूर हो जाता है।

योनिविशोधन एवं गर्भसंस्थापन योग

सैरीयस्त्रिफला भार्गी रास्नामृता शतावरी।
निशे पुनर्नवे मेदे कार्षिकैः प्रस्थमाज्यतः।।६।।
पक्वं क्षीरेण तत्पीतं वातयोनि-विशोधनम्।
गर्भसंस्थापनं मुख्यं पित्तयोन्याश्च शस्यते।।७।।

सैरीय, त्रिफला, भार्गी, रास्ना, अमृता (गिलोय), शतावरी, दोनों प्रकार की हल्दी (हल्दी एवं दारुहल्दी), दोनों प्रकार की पुनर्नवा (श्वेत व रक्त) एवं मेदा तथा महामेदा- इन्हें एक-एक कर्ष प्रमाण में लेकर इनके साथ एक प्रस्थ घृत सिद्ध करें। इस घृत का दूध के साथ मिलाकर पान करने से वातदोष से दूषित योनि का शोधन हो जाता है। यह योग बहुत श्रेष्ठ गर्भ-संस्थापन है। यह पित्त से दूषित योनि के विकार को दूर करने में भी बहुत उत्तम है।

पित्तज योनिविकारों की चिकित्सा

योन्याः पित्तप्रदुष्टाया रक्तपित्तहरो विधिः।
आरग्वधादिको योज्यः श्लेष्मलायाश्च सर्वतः।।८।।

पित्त से दूषित योनि की चिकित्सा में रक्तपित्तहर विधि अपनानी चाहिए। कफ से दूषित योनि की चिकित्सा में आरग्वधादि गण की ओषधियों का प्रयोग करना चाहिए।

पुत्र एवं पुत्री जन्म का कारण

चतुर्थे दिवसे गच्छेद् ऋतौ पुष्टो नरोऽङ्गनाम्।
सूनुस्स्याच्छुक्रबाहुल्याद् दुहिता चार्तवेऽधिके।।९।।

ऋतुस्राव (मासिक धर्म) के चौथे दिन पुष्ट पुरुष सन्तान के लिए नारी-संसर्ग करे। शुक्र की अधिकता से पुत्र सन्तान पैदा होती है तथा आर्त्तव (स्त्रीबीज) की अधिकता (प्रबलता) से कन्या सन्तान पैदा होती है।

पुत्रप्राप्ति का उपाय

लक्ष्मणां वटशुङ्गां वा पिष्ट्वा क्षीरेण बिन्दुकान्।
चतुरः पुत्रकामायाः सव्ये नासापुटे क्षिपेत्।।१०।।

जो नारी पुत्र चाहती है, उसके बाएँ नासापुट (नथुने) में लक्ष्मणा अथवा वटशुङ्गा (बड़ की कोंपल) को दूध के साथ पीसकर चार बूंद मात्रा में डालें।

गर्भधारण योग

बीजपूरकबीजानि चूर्णं वा नागकेसरात्।
पीत्वाज्येनाप्नुयाद् गर्भमृतौ योषिन्नराश्रयात्।।११।।

बीजपूरक (बिजौरा निम्बू) के बीजों के चूर्ण को घृत के साथ पीकर जो नारी ऋतुकाल में पुरुष-संसर्ग करती है, वह गर्भधारण कर लेती है। इसी प्रकार नागकेसर को पीसकर घृत के साथ पान करने से भी गर्भ-स्थापन होता है।

गर्भवती का लक्षण एवं पथ्यापथ्य

श्यामस्तनमुखीं नारीमन्तर्गर्भां विनिर्दिशेत्।
व्यवायखेदवर्जिन्यास्तस्याः स्याद् दौर्हृदं हितम्।।१२।।

स्तन के अग्रभाग का वर्ण श्याम दिखने पर नारी को गर्भवती समझना चाहिए। उसे व्यवायखेद (मैथुन) से अलग रहना चाहिए तथा दौर्हृद (गर्भकाल में होने वाली खाने-पीने आदि की विशेष इच्छा) की पूर्त्ति करनी चाहिए।

गर्भपात के कारण

भयाभिघातात्तीक्ष्णोष्णपानाशननिषेवणात्।
गर्भे पतति रक्तस्य सशूलं दर्शनं भवेत्।।१३।।

गर्भवती के अत्यधिक भयभीत होने, गर्भ के ऊपर चोट लगने और तीक्ष्ण (तीखे- मिर्च आदि) व उष्ण (गर्म- लशुन आदि) पदार्थों का सेवन करने से गर्भपात की स्थिति बन जाती है, इसमें पहले पीड़ा सहित रक्तस्राव दिखाई देता है।

गर्भस्राव-निवारक उपाय

सेकावगाहनालेपाः शस्यन्ते तत्र शीलिताः।
जीवनीयैः शृतं क्षीरं पानं चैव सशर्करम् ।।१४।।

ऐसी स्थिति में शीतल जल आदि द्वारा सेचन, अवगाहन (स्नान) एवं कमल आदि शीतल ओषधियों के लेपन का शीलन (पुनः पुनः प्रयोग) उत्तम होता है। इसके अतिरिक्त जीवनीय गण की ओषधियों के साथ पकाए गए शर्करा-मिश्रित दुग्ध का पान भी हितकर होता है।

गर्भस्राव-निवारक योग

श्वेतचन्दन-काकोली-द्राक्षा-लामज्ज-शर्कराः।
मधुकोत्पल-मञ्जिष्ठा-धातकीपुष्प-शर्कराः।।१५।।

शर्करोत्पलयष्ट्याह्व-लोध्र-चन्दन-शारिवा:।
गर्भस्त्रावे त्रयो योगा: पातव्यास्तण्डुलाम्भसा।।१६।।

पूर्वोक्त कारणों से गर्भस्राव की आशंका होने पर निम्न तीन योगों में से किसी एक का तण्डुल-जल के साथ सेवन करना चाहिए-

१. श्वेतचन्दन, काकोली, द्राक्षा, लामज्ज (खस) एवं शर्करा।
२. मधुक, उत्पल (कमल), मञ्जिष्ठा, धातकीपुष्प एवं शर्करा।
३. शर्करा, उत्पल (कमल), मधुयष्टि, लोध्र, चन्दन एवं शारिवा।

उत्पलादिगणं पिष्टं पयसा शर्करावता।
न्यग्रोधादे: प्रवालान्वा त्वग्वा गर्भस्रुतौ पिबेत्।।१७।।

गर्भस्राव में उत्पलादि गण की ओषधियों को पीसकर शर्करा-मिश्रित दूध के साथ पीना चाहिए अथवा न्यग्रोधादि गण की कोंपलों या छाल को पीसकर शर्करा-मिश्रित दूध के साथ पीना चाहिए

क्वाथेनोत्पलकाण्डानां शालिपिष्टं सशर्करम्।
पिबेद् गर्भपरिस्त्रावे तैर्वा क्षीरं प्रसाधितम्।।१८।।

गर्भस्राव में उत्पलकाण्डों (कमल के नालों) के क्वाथ के साथ शर्करा-मिश्रित शालिपिष्ट (भुने चावल के आटे) का पान करना चाहिए अथवा उत्पलकाण्डों के साथ सिद्ध दूध का पान करना चाहिए।

गर्भिणी की आहारविधि

गर्भिणी प्रथमे मासे द्वितीये तृतीयेऽशनम्।
स्वादु शीतं निषेवेत चतुर्थे नवनीतवत्।।१९।।

गर्भिणी नारी को चाहिए कि प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय मास में मधुर एवं शीतल भोज्य पदार्थों का सेवन करे तथा चतुर्थ मास में नवनीत (मक्खन) युक्त भोजन का सेवन करे।

पञ्चमे सघृतं क्षीरं षष्ठसप्तमयोः पिबेत्।
यवागूं पेशलां युक्तां श्वदंष्ट्रा-सिद्धसर्पिषा।।२०।।
अष्टमे स्यात्पयो यष्टीपक्वं तैलानुवासनम्।
शस्यतेऽतः परं पेया स्निग्धो जाङ्गलजो रसः।।२१।।

गर्भ के पञ्चम मास में घृत सहित दूध का सेवन करना चाहिए। षष्ठ एवं सप्तम मास में श्वदंष्ट्रा (गोखरू) के साथ सिद्ध उत्तम यवागू में घृत मिलाकर सेवन करना चाहिए। अष्टम मास में मुलेठी के साथ क्वथित (उबाले हुए) दूध का सेवन करना चाहिए तथा तैल का अनुवासन लेना चाहिए। उसके उपरान्त प्रसव तक पेया एवं स्निग्ध भोजन का सेवन करना चाहिए।

शिशु का नाडीछेदन एवं घृतमधुलेहन

शिशोरष्टाङ्गुलं मुक्त्वा नाडीं जातस्य वर्धयेत्।
सुखाम्बुक्षालितास्यस्य लेहः स्यान्मधुसर्पिषी।।२२।।

प्रसव होने पर शिशु की नाभिनाड़ी को आठ अंगुल छोड़कर काटना चाहिए तथा सुखोष्ण जल से शिशु का मुख स्वच्छ कर घृत एवं मधु का लेहन करवाना चाहिए।

मेधाकान्तिवर्द्धक लेहन

हेमचूर्णं वचा ब्राह्मी पथ्या कुष्ठं घृतं मधु।
मेधाकान्तिकरो लेहो हेम ब्राह्मीरसेन वा।।२३।।

हेमचूर्ण (स्वर्णभस्म), वचा, ब्राह्मी, हरीतकी, कूठ, घृत एवं मधु- इन सबका लेहन शिशु की मेधा एवं कान्ति को बढ़ाता है। इसी प्रकार ब्राह्मी-रस के साथ स्वर्णभस्म का लेहन भी शिशु की मेधा एवं कान्ति को बढ़ाता है।

प्रसूता की आहारविधि

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा तैलमात्रां घृतस्य वा।
पाययेत् सूतिकां पूर्वं स्निग्धेनान्नेन योजयेत्।।२४।।

तीन दिन अथवा पाँच दिन तक प्रसूता को घृत या तेल की मात्रा पिलानी चाहिए तथा स्निग्ध भोजन करवाना चाहिए।

अपरापातन-योग

अपरापातनं मद्यैः पिप्पल्यादिरजः पिबेत्।
शालिमूलाक्षमात्रं वा मूत्रेणाम्लेन वा युतम्।।२५।।

प्रसूता स्त्री को मद्यों के साथ पिप्पल्यादि गण की ओषधियों का चूर्ण पिलाएं। इससे शीघ्र अपरा (जरायु) का पातन हो जाता है। इसी प्रकार गोमूत्र या अम्ल (काञ्जी आदि अम्ल द्रव्यों) से युक्त अक्षमात्र (अक्ष परिमाण में) शालिमूल (जड़हन धान की जड़) को पीसकर पिलाएं। इससे भी अपरा-पातन हो जाता है।

मूढगर्भा की चिकित्सा

परूषकस्य मूलेन लाङ्गल्या वा वृषस्य वा।
पिष्टेन मूढगर्भाया योनिं नाभिं च लेपयेत्।।२६।।

मूढगर्भा (जिसकी कुक्षि में गर्भ उल्टी स्थिति में है, ऐसी) नारी की योनि अथवा नाभि पर परूषक (फालसा), लाङ्गली (कलिहारी) अथवा वृष (वासक/अडूसा) के मूल को पीसकर लेपन करना चाहिए। इससे मूढगर्भ उचित स्थिति में आ जाता है तथा सुख से प्रसव हो जाता है।

प्रसूता हेतु शूलहर योग

सूताया हृच्छिरोवस्तिशूलं मक्कल्लसञ्ज्ञकम्।
यवक्षारं पिबेत् तत्र सर्पिषोष्णोदकेन वा।।२७।।

प्रसूता नारी के हृदय, सिर एवं वस्ति में प्रायः शूल होता है। इसे 'मक्कल्ल' शूल कहते हैं। इसमें घृत अथवा उष्ण जल के साथ यवक्षार का पान करना चाहिए। इससे यह शूल दूर हो जाता है।

पिप्पल्यादिगणक्वाथं पिबेद्वा लवणान्वितम्।
धान्याकाम्बु गुड-व्योष-त्रिजातक-युतं तथा।।२८।।

'मक्कल' नामक उक्त शूल को दूर करने के लिए लवणयुक्त पिप्पल्यादि गण का क्वाथ पीना चाहिए अथवा गुड़, त्रिकटु तथा त्रिजातक (दालचीनी, इलायची व तेजपात) मिलाकर धान्यकाम्बु (धनिए का क्वाथ) पीना चाहिए।

सूतिकारोगहर योग

पञ्चमूलस्य निष्क्वाथं तप्तलोहेन सङ्गतम्।
सूतिकारोगनाशाय पिबेद् वा तद्विधां सुराम्।।२९।।

सूतिका नारी के रोगों का निवारण करने के लिए लोह बुझे पञ्चमूल के क्वाथ का पान कराएं अथवा लोह बुझी सुरा का पान कराएं।

बालरोगों का कारण प्रदूषित स्तन्य

गुरुभिर्विषमैरन्नैर्दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितम्।
क्षीरं धात्र्याः कुमारस्य नानारोगाय कल्पते।।३०।।

गुरु एवं विषम अन्नों से दूषित हुए दोषों के कारण धात्री (दूध पिलाने वाली माता) का दूध भी दूषित हो जाता है। इससे शिशु को नानारोग हो जाते हैं। अतः उत्तम आहार-विहार एवं औषध-सेवन से दूध को शुद्ध करना चाहिए।

वात व पित्त से दूषित स्तन्य की पहचान

कषायं सलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम्।
कट्वम्लं सलिले पीतराजिमत्पित्तसङ्गतम्।।३१।।

वातविकार से दूषित स्तन्य (माँ का दूध) कषाय रस वाला होता है तथा पानी में डालने पर ऊपर तैरता है। पित्त से दूषित स्तन्य कटु एवं अम्ल रस वाला होता है, पानी में डालने पर उसमें पीली रेखाएं बनी हुई दिखाई देती हैं।

कफ-दूषित स्तन्य की पहचान

कफदुष्टं घनं तोये निमज्जति सुपिच्छिलम्।
अदुष्टं चाम्बुनिक्षिप्तमेकीभवति पाण्डुरम्।।३२।।

कफदोष से दूषित स्तन्य बहुत पिच्छित (चिपचिपा) होता है तथा पानी में डूब जाता है। अदुष्ट (शुद्ध) स्तन्य की पहचान यह है कि उसे पानी में डालने पर शीघ्र घुल जाता है और पानी श्वेत वर्ण का हो जाता है।

स्तन्य-शोधन योग

पीताज्यं सकणाक्षौद्रं निम्बतोयेन वामयेत्।
धात्रीक्षीरविशुद्ध्यर्थं मुद्गयूषरसायनम्।।३३।।

धात्री के स्तन्य की शुद्धि के लिए पिप्पली एवं मधु के साथ घृत पिलाकर निम्बरस से वमन कराना चाहिए। मुद्गयूष एवं रसायनों का सेवन भी स्तन्य को शुद्ध कर देता है।

भार्गीदारुवचापाठाः पिबेत्सातिविषा शृताः।
शम्याकादिं घनादिं वा धात्रीस्तन्यविशुद्धये।।३४।।

धात्री के स्तन्य की शुद्धि के लिए भार्गी, देवदारु, वचा, पाठा एवं अतिविषा- इनके क्वाथ का पान कराना चाहिए। इसी प्रकार शम्याकादि (आरग्वधादि) अथवा घनादि (मुस्तादि) गण की ओषधियों का क्वाथ पिलाना चाहिए। इन ओषधियों के प्रयोग से स्तन्यशुद्धि होती है।

शम्याकादि गण- शम्याक (आरग्वध), चित्रक, काकजंघा, कण्टकारी, निम्ब, पाटला, मूर्वा, घोण्टा, अमृता, राठ, पाठा, भूनिम्ब, कूलक, करञ्ज, वत्स, सैरीय, सुषवी (करेला) एवं सप्तपर्ण- यह शम्याकादि (आरग्वधादि) गण है। यह प्रमेह, कुष्ठ, ज्वर, छर्दि, विष व श्लेष्मा (कफ) को दूर करता है।

(सिद्धसारसंहिता-२.११-१२)

घनादि गण- मुस्ता (घन), पाठा, दोनों प्रकार की हरिद्रा (हरिद्रा एवं दारुहरिद्रा), दोनों प्रकार की तिक्ता, हेमवती (वचा का भेद), वचा, द्रामिडी (छोटी इलायची), अतिविषा (अतीस), कुष्ठ (कूठ), भल्लातक (भिलावा), त्रिफला एवं शार्ङ्गेष्टा- यह मुस्तादि (घनादि) वर्ग कफरोग-नाशक, शोधन, पाचन, स्तन्य एवं योनिदोषहर माना जाता है।

(सिद्धसारसंहिता-२.४१-४२)

शिशु-ज्वरचिकित्सा

लाजाञ्जनसितावांशीमधुकैश्चूर्णितैः समैः।
क्षौद्रयुक्तैः शिशोर्लेहः सर्वज्वरनिवारणः।।३५।।

लाजा, अञ्जन, शर्करा, वांशी एवं मधुक (मुलेठी)- इन्हें सममात्रा में लेकर चूर्ण बनाएं। इस चूर्ण का मधु के साथ लेहन कराने से शिशुओं के सर्वविध ज्वर दूर हो जाते हैं।

ज्वर-कास-वमि-नाशक योग

पिप्पल्यतिविषा-शृङ्गीचूर्णं लेहो मधूक्षितम्।
क्षौद्रेणातिविषा चैका ज्वरकासवमीञ्जयेत्।।३६।।

पिप्पली, अतिविषा एवं शृङ्गी के चूर्ण का मधु के साथ लेहन कराएं। इससे शिशुओं के ज्वर, कास एवं वमि (छर्दिरोग) नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार अकेली अतिविषा के चूर्ण का मधु के साथ लेहन कराने से भी उक्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

वमि-कास-श्वासहर योग

लाजासैन्धवचूतास्थिक्षौद्रैर्लेहो वमीरणः।
तुका च क्षौद्रसंयुक्ता कासश्वासहरी शिशोः।।३७।।

मधु के साथ लाजा (खील), सैन्धव लवण एवं आम की गुठली का लेहन शिशुओं के वमिरोग को नष्ट कर देता है। मधुयुक्त तुका (वंशलोचन) का लेहन बच्चों के कास एवं श्वास रोग को नष्ट कर देता है।

छर्दि-हिक्काहर योग

छर्दिहिक्कापहा लाजा बीजपूराम्बुसैन्धवैः।
लाजाक्षौद्रसितासर्पिः-सैन्धवैर्वावलेहिका ।।३८।।

बीजपूर (बिजौरा निम्बू) के रस एवं सैन्धव लवण के साथ लाजा (खील) का सेवन कराने से शिशुओं के छर्दि व हिक्का रोग नष्ट हो जाते हैं।

इसी प्रकार लाजा, मधु, शर्करा, घृत एवं सैन्धव लवण से बनी अवलेहिका चटाने से भी शिशु की छर्दि व हिक्का नष्ट हो जाती है।

उदररोगहर योग

गजाह्वधातकीलोध्रबिल्वोदीच्यैः समाक्षिकैः।
लेहः क्वाथोऽथवा हन्ति कुमारस्योदरामयम्।।३९।।

गजाह्व (गजपिप्पली), धातकी, लोध्र, बिल्व एवं उदीच्य (ह्रीबेर/सुगन्धबाला)- इन सबके चूर्ण का मधु के साथ लेहन कराने से शिशु का उदररोग नष्ट हो जाता है। उक्त ओषधियों का क्वाथ भी शिशु के उदररोग को नष्ट कर देता है।

समङ्गाधातकीपुष्पशारिवालोध्रसम्भवः।
निष्क्वाथो मधुसंयुक्तः शीलितः कुक्षिरोगजित्।।४०।।

समङ्गा (मञ्जिष्ठा), धातकीपुष्प, शारिवा एवं लोध्र का क्वाथ मधु मिलाकर देने से बालकों का उदररोग (अतिसार) नष्ट हो जाता है।

शिशु-नेत्रचिकित्सा

क्रिमिघ्नालशिलादार्वीलाक्षाकाञ्चनगैरिकैः।
चूर्णाञ्जनं कुकूणे स्याच्छिशूनां पोथकीषु च।।४१।।

क्रिमिघ्न (विडङ्ग), अल (हरताल), शिला (मैनसिल), दार्वी (दारुहल्दी), लाक्षा (लाख) एवं काञ्चन-गैरिक (सोनागेरू) से बनाया चूर्णाञ्जन शिशुओं के नेत्रवर्त्मगत (पलकों में होने वाले) 'कुकूणक' तथा 'पोथकी' नामक रोग में देना चाहिए। इससे ये दोनों रोग नष्ट हो जाते हैं।

कुकूणक रोग का स्वरूप-

कुकूणकः क्षीरदोषाच्छिशूनामक्षिवर्त्मनि। जायते, सरुजं नेत्रं कण्डूरं प्रस्रवेन्मुहुः।।
शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकूटनासावघर्षणम्। शक्तो नार्कप्रभां द्रष्टुं न वर्त्मोन्मीलनक्षमः।।

(माधवनिदानम्, बालरोगाधिकारः-८-९)

माता के दूषित दूध के कारण शिशुओं के नेत्रवर्त्म में 'कुकूणक' नामक रोग हो जाता है, इसमें पीड़ा एवं खुजलीयुक्त नेत्र बारम्बार स्रवित होते रहते हैं। शिशु ललाट, नेत्रकूट (आँखों के भ्रूस्थान) एवं नासिका को घिसता है। वह सूर्य की प्रभा को देखने में समर्थ नहीं होता तथा पलकें भी नहीं खोल पाता है।

पोथकी रोग का स्वरूप-

कण्डूस्रावान्विता गुर्व्यो रक्तसर्षपसन्निभाः।
पिडकाश्च रुजावत्यः पोथक्य इति सञ्ज्ञिताः।।

(सुश्रुतसंहिता, उत्तरस्थान-३.११)

शिशुओं के नेत्रवर्त्म में खुजली एवं स्राव सहित गुरुता लिए लाल सरसों के दाने जैसी पीड़ायुक्त पिडकाएं हो जाती हैं, वे 'पोथकी' (रोहा) कहलाती हैं।

अजाक्षीरेण सम्पिष्टैर्दार्वीगैरिकमुस्तकैः।
बहिरालेपनं कार्यमक्षिरोगविनाशनम्।।४२।।

दार्वी, गैरिक एवं मुस्तक को बकरी के दूध के साथ पीसकर आँखों के बाहर पलकों पर लेपन करने से शिशुओं के नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं।

अश्वत्थत्वग्गदक्षौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनम्।
दार्वीयष्ट्यभयाजातीपत्रक्षौद्रैस्तथापरम्।।४३।।

अश्वत्थ-त्वक् (पीपल की छाल), गद (कूठ) एवं मधु को मिलाकर शिशुओं के मुखपाक (छाला) में लेपन करने से यह रोग दूर हो जाता है। इसी प्रकार दार्वी (दारुहल्दी), यष्टि (मुलेठी), हरीतकी एवं जातीपत्रक को पीसकर मधु के साथ मुख में लेपन करने से भी यह रोग दूर हो जाता है।

शिशुरोग-नाशक गौर्यादि घृत

गौरी यष्टी वरी लोध्रं पर्ण्यो राजादनं सिता।
पद्मकं चन्दनं द्राक्षा पद्मं कुमुदमुत्पलम्।।४४।।
जीवकर्षभकौ मेदा काकोल्यौ शारिवाद्वयम्।
पञ्चत्वग्दशमूलाम्बुक्षीरैः प्रस्थं घृताच्छृतम्।।४५।।

ज्योतिके पित्तवैसर्पे मुखपाके ग्रहार्त्तिषु।
शस्तं गौर्यादिकं नाम बालानां सर्वरोगनुत्।।४६।।

गौरी (हल्दी), यष्टी (मुलेठी), वरी, लोध्र, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, राजादन (खिरनी), शर्करा, पद्मक, चन्दन, द्राक्षा, पद्म, कुमुद, उत्पल, जीवक, ऋषभक, मेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, दोनों शारिवा, पञ्चत्वक्, दशमूल क्वाथ एवं दूध के साथ एक प्रस्थ घृत पकाएं। यह गौर्यादि घृत ज्योतिक, पित्तजन्य विसर्प, मुखपाक एवं ग्रहपीड़ा आदि कष्टों में अति प्रशस्त माना गया है। यह शिशुओं के अन्य समस्त रोग भी दूर कर देता है।

ग्रहदोष-लक्षण

जागरूको भयोद्वेगी दुर्गन्धी बहुचेष्टितः।
नखदन्तविकारी स्यात्कुमारो ग्रहदोषतः।।४७।।

ग्रहदोष के कारण बालक सदा जागने वाला, दुर्गन्धियुक्त एवं बहुत चेष्टा वाला होता है। बालक के नाखून और दाँतों में भी विकार हो जाते हैं।

ग्रहदोष-नाशक धूप

रसोनं निम्बपत्राणि जतुवंशावलेखनम्।
सिद्धार्थारिष्टपत्राणि वंशत्वग्जतुना सह।।४८।।
सर्पनिर्मोचनं केशा निर्माल्यं गौरसर्षपाः।
धूपत्रयं ससर्पिष्कमेतत् सर्वग्रहापहम्।।४९।।

लशुन, नीम के पत्ते, जतु (लाख), वंशलोचन, सिद्धार्थ (पीत सर्षप/पीली सरसों), अरिष्ट (रीठे) के पत्र एवं बाँस की छाल, सर्पनिर्मोचन (साँप की केंचुली), केश, निर्माल्य, गौरसर्षप (श्वेत सर्षप/सफेद सरसों), तीनों धूप (गुग्गुल, राल व श्रीवेष्ट) एवं घृत- ये पदार्थ सभी ग्रहबाधाओं को नष्ट कर देते हैं।

ग्रहबाधा-नाशक उद्वर्त्तन

सप्तपर्णत्वचं पिष्ट्वा मूर्वातिक्तासमन्विताम्।
शिशोरुद्वर्तनं कुर्यात् सर्वग्रहविनाशनम्।।५०।।

मूर्वा एवं तिक्ता के साथ सप्तपर्ण की छाल को पीसकर शिशु के अंगों का उद्वर्तन (उबटन) करना चाहिए। इससे सभी ग्रहजन्य कष्टों का निवारण हो जाता है।

ग्रहबाधा-नाशक स्नान

मधूकाश्वत्थशेलूनां पत्रैः सप्तच्छदस्य च।
क्वाथः शीतः प्रयोक्तव्यः स्नाने ग्रहनिवारणः।।५१।।

मधूक (महुआ), अश्वत्थ (पीपल), शेलु (लिसोड़ा) एवं सप्तच्छद के पत्तों का शीतल किया हुआ क्वाथ शिशु के स्नान हेतु प्रयुक्त करना चाहिए। इससे उसके ग्रहजन्य कष्ट नष्ट हो जाते हैं।

शिशुरोगों की दैवव्यपाश्रय चिकित्सा

बलिशान्तीष्टिकर्माणि कार्याणि ग्रहशान्तये।
मन्त्रश्चायं प्रयोक्तव्यः सूत्रादौ सार्वकर्मिकः।।५२।।

ग्रहशान्ति के लिए बलि, शान्तिकर्म, इष्टि (यज्ञ, होम) आदि करने चाहिए तथा सूत्र के आदि में सभी मांगलिक कर्मों में निम्न मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए-

'ओं नमो भगवते गरुडाय नमस्त्र्यम्बकाय सत्य सत्य ततस्ततः स्वाहा'।

।। इति कुमारतन्त्राध्याय एकोनत्रिंशत्तमः समाप्तः।।

त्रिंश अध्याय

पञ्चकर्म

रोगों के हेतु हैं- कुपित एवं विकृत वात, पित्त व कफ। इनकी चिकित्सा के दो प्रकार हैं- शमन व संशोधन। शमन-चिकित्सा में औषध व पथ्याहार से दोषों का शमन किया जाता है। जैसे कि पित्त बढ़ने पर शीत-मधुर, स्निग्ध व तिक्त पदार्थों द्वारा उसका शमन किया जाता है, परन्तु संशोधन-चिकित्सा में वैकारिक पित्त को विरेचन द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है, जिससे पित्तजन्य उपद्रव शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं। इस प्रकार शमन की अपेक्षा संशोधन अधिक कारगर होता है। कहा भी है-

दोषाः कदाचित् कुप्यन्ति जिता लङ्घनपाचनैः।
जिताः संशोधनैर्ये तु न तेषां पुनरुद्भवः।।(च.सं., सूत्रस्थान-१६.२०)

अर्थात् लङ्घन व पाचन आदि से शान्त किए गए दोष कदाचित् पुनः कुपित हो सकते हैं, परन्तु जो दोष संशोधन द्वारा जीत लिए जाते हैं, वे फिर नहीं उभरते हैं। यह संशोधन-चिकित्सा- वमन, विरेचन, नस्य, निरूह वस्ति एवं अनुवासन वस्ति के रूप में प्रसिद्ध है। इन्हें ही 'पञ्चकर्म' कहते हैं। आयुर्वेद में पञ्चकर्म को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है; क्योंकि ये विकृत एवं कुपित दोषों का समूल उन्मूलन कर देते हैं। कहा भी है-

वमनं श्लेष्महराणाम्, विरेचनं पित्तहराणाम्, वस्तिर्वातहराणाम्।

(च.सं., सूत्रस्थान- २५.४०)

अर्थात् कफहर उपायों में वमन सर्वश्रेष्ठ है, पित्तहर उपायों में विरेचन सर्वश्रेष्ठ है तथा वातहर उपायों में वस्ति (निरूह वस्ति एवं अनुवासन वस्ति)

सर्वश्रेष्ठ है। इस प्रकार पञ्चकर्म का आयुर्वेदीय चिकित्सा में विशेष स्थान है। अत एव प्रस्तुत अध्याय में इसका निरूपण किया जा रहा है-

पञ्चकर्म

वमनं रेचनं नस्यं निरूहश्चानुवासनम्।
ज्ञेयं पञ्चविधं कर्म विधानं तस्य गद्यते।।१।।

वमन, विरेचन, नस्य, निरूह एवं अनुवासन- यह चिकित्सोपयोगी पञ्चविध कर्म होता है। यहाँ इसकी विधि का वर्णन किया जा रहा है।

स्निग्धस्विन्नं नरं सम्यग्जानुमात्रासनस्थितम्।
कण्ठमेरण्डनालेन स्पृशन्तं वामयेद् भिषक्।।२।।

अच्छी प्रकार से स्नेहपान एवं स्वेदन करवाने के उपरान्त जानुमात्र (घुटने तक की उंचाई वाले) आसन (कुर्सी आदि) पर स्थित पुरुष को एरण्ड की चिकनी नाल से कण्ठ के भीतरी भाग का स्पर्श करवाते हुए वमन करवाना चाहिए।

वमन के योग

कृष्णामदनसिन्धूत्थकल्कैः क्षौद्रसमन्वितम्।
पाययेन्मधुकक्वाथमेतद् वमनमुत्तमम्।।३।।

कृष्णा (पिप्पली), मदन (मैनफल), सैन्धव लवण- इन सबके कल्क के साथ मधु-मिश्रित मधुक (मुलेठी) का क्वाथ पिलाएं। यह वमन का उत्तम योग है।

कृशरां राठसंसिद्धां तद्बीजैर्वा श्रृतं पयः।
पीत्वा कृष्णादि वा पञ्च राठक्वाथं वमत्यलम्।।४।।

राठ (मदनफल) के साथ पकाई गई कृशरा (फाणित/राब) अथवा राठ के बीजों के साथ उबले दूध को पीकर वमन हो जाता है। इसी प्रकार कृष्णा आदि पाँच द्रव्यों (पूर्व श्लोक में निर्दिष्ट कृष्णा/पिप्पली, मदनफल, सैन्धव

लवण, मधु व मुलेठी) के क्वाथ को पीने से अथवा केवल राठ (मदनफल) के क्वाथ को पीने से ही अच्छी प्रकार से वमन हो जाता है।

जीमूतकस्तथैक्ष्वाकुः कुटजः कृतवेधनः।
धामार्गवश्च संयोज्यो वमने राठवत्पृथक्।।५।।

राठ के समान ही जीमूतक, इक्ष्वाकु (कड़वी तुम्बी), कुटज, कृतवेधन (कड़वी तोरी) एवं धामार्गव का भी वमन हेतु पृथक्-पृथक् प्रयोग करना चाहिए।

सम्यक् व असम्यक् वमन की पहचान

पित्तान्तं वमनं सम्यक् कुक्षिहृन्मूर्धलाघवैः।
एतैरेव विपर्यस्तैरसम्यक् परिकीर्तितम्।।६।।

वमन में कफ के उपरान्त जब पित्त निकलने लग जाए तो समझना चाहिए कि वमन सम्यक् हुआ है। इससे उदर, हृदय एवं सिर में हल्कापन आता है। यदि इसके विपरीत स्थिति हो अर्थात् वमन में पित्त न निकले तथा उदर, हृदय एवं सिर भारी हों तो समझना चाहिए कि वमन कर्म सम्यक् नहीं हुआ है।

अतिवमन का लक्षण

हृच्छूल-क्षतकण्ठत्वं सञ्ज्ञानाशः प्रवेपनम्।
रक्तनिष्ठीवनं ज्ञेयमतिवान्तस्य लक्षणम्।।७।।

हृदयशूल, कण्ठ का विक्षत होना, बेहोशी, कम्पन एवं रक्त-निष्ठीवन (थूक में खून आना)- यह वमन के अतियोग का लक्षण है।

वमन के योग्य रोगी

कफरोगे प्रतिश्याये मेहे कुष्ठे गलग्रहे।
विषपीते विषूच्यां च वमनं बलिनां स्मृतम्।।८।।

कफरोग, प्रतिश्याय, प्रमेह, कुष्ठ, गलग्रह, विषपान एवं विषूची (हैजे) में बलवान् रोगी को वमन करवाना चाहिए।

वमन के अयोग्य रोगी

तिमिरी जठरी गुल्मी तृष्णोदावर्त्तपीडितः।
गर्भिणी वातरोगी च न वाम्याः पाण्डुरोगिणः।।९।।

तिमिर नामक नेत्ररोग, उदररोग तथा गुल्म, तृष्णा व उदावर्त्त रोग से पीड़ित व्यक्ति को वमन नहीं करवाना चाहिए। इसी प्रकार गर्भिणी, वातरोगी एवं पाण्डुरोगी को भी वमन नहीं करवाना चाहिए।

विरेचन योग्य व्यक्ति

स्निग्धस्विन्नाय वान्ताय प्रदातव्यं विरेचनम्।
अन्यथा योजितं ह्येतद् ग्रहणीदोषकृन्मतम्।।१०।।

स्नेहपान, स्वेदन एवं वमन करवाने के उपरान्त विरेचन देना चाहिए। इसके विपरीत विरेचन देने से यह ग्रहणीदोष पैदा कर देता है।

विरेचन हेतु त्रिविध कोष्ठ परिज्ञान

पित्तेन स्यान्मृदुः कोष्ठः क्रूरो वातकफाश्रयात्।
मध्यमः समदोषत्वान्मात्रा योज्यानुरूपतः।।११।।

पित्त की बहुलता से युक्त कोष्ठ (उदर) मृदु होता है। वात एवं कफ की बहुलता से कोष्ठ क्रूर होता है। तीनों दोषों की समता से कोष्ठ मध्यम होता है। अत: विरेचन में कोष्ठ की स्थिति देखते हुए ही विरेचन द्रव्य की मात्रा का प्रयोग करना चाहिए। भाव यह है कि मृदुकोष्ठ व्यक्ति को अल्प मात्रा, क्रूरकोष्ठ को अधिक मात्रा तथा मध्यमकोष्ठ को मध्यम मात्रा देनी चाहिए।

वातरोगी हेतु विरेचन

त्रिवृत्सैन्धवशुण्ठीनां चूर्णमम्लैः पिबेन्नरः।
वातार्दितो विरेकाय जांगलानां रसेन वा।।१२।।

वातपीड़ित व्यक्ति को विरेचन के लिए त्रिवृत् (निशोथ), सैन्धव लवण एवं शुण्ठी का चूर्ण अम्लरस वाले पदार्थों के साथ पीना चाहिए। उक्त विरेचन द्रव्यों को जाङ्गल रस के साथ भी लिया जा सकता है।

पित्तकफरोगी हेतु विरेचन

पित्तरोगी त्रिवृच्चूर्णं स्वादुक्वाथादिभिः पिबेत् ।
त्रिफलाक्वाथमूत्रैश्च सव्योषं कफपीडितः ।।१३।।

पित्तरोगी को विरेचन हेतु त्रिवृत् का चूर्ण स्वादु क्वाथ आदि के साथ पीना चाहिए। कफपीड़ित व्यक्ति को विरेचन के लिए त्रिकटु-मिश्रित त्रिवृत् का चूर्ण, त्रिफला क्वाथ एवं गोमूत्र के साथ पीना चाहिए।

सर्वविधकफ-विकारों में उपयोगी विरेचन

कृष्णाशुण्ठी त्रिवृत्क्षार-चूर्णं क्षौद्रेण सँल्लिहेत्।
एतद् विरेचनं मुख्यं सर्वश्लेष्मविकारिणाम्।।१४।।

कृष्णा (पिप्पली), शुण्ठी (सोंठ), त्रिवृत् (निशोथ) एवं क्षार का चूर्ण मधु के साथ चाटना चाहिए। सर्वविध कफविकारों से ग्रस्त व्यक्तियों के लिए यह मुख्य विरेचन है।

सर्वरोगहर विरेचन

पथ्यासैन्धवकृष्णानां कल्कमुष्णाम्बुना पिबेत्।
विरेकः सर्वरोगघ्नः श्रेष्ठो नाराचसञ्ज्ञकः।।१५।।

पथ्या (हरीतकी), सैन्धव लवण एवं पिप्पली का कल्क उष्ण जल के साथ पीना चाहिए। यह 'नाराच' नामक श्रेष्ठ विरेचन है, जो सभी रोगों को नष्ट कर देता है।

पलं खण्डात् त्रिवृत्तुल्यं कृष्णाकर्षं च चूर्णितम्।
मधुनास्माल्लिहेन्मात्रां विरेकः सर्वरोगजित्।।१६।।

एक पल खाँड, एक पल त्रिवृत् तथा एक कर्ष पिप्पली लेकर इन

सबका चूर्ण बनाएं। इसमें से उचित मात्रा लेकर मधु के साथ चाटें। यह विरेचन सभी रोगों को जीत लेता है।

व्योषदन्तीत्रिवृत्पथ्यानीलिकागुडकल्किताः।
मोदकास्त्रिसुगन्धाढ्या रेचनं सर्वरोगनुत्॥१७॥

त्रिकटु, दन्ती, त्रिवृत्, पथ्या, नीलिका- इनके कल्क में त्रिसुगन्ध (त्रिजात द्रव्यों- दालचीनी, छोटी इलायची व तेजपात) को मात्रानुसार मिलाकर गुड़ के साथ लड्डू बनाएं। लड्डू के रूप में बना यह विरेचन सभी रोगों को नष्ट कर देता है।

उदर आदि रोगों में विरेचन

स्नुक्क्षीरभावितं चूर्णं त्रिवृन्नील्योर्गुडाज्यवत्।
त्रिसुगन्धयुतो लेहो विरेको ह्युदरादिषु॥१८॥

स्नुक्क्षीर (थूहर के दूध) से भावित किए तथा गुड़, घृत एवं त्रिसुगन्ध (त्रिजात) से मिश्रित त्रिवृत् एवं नीली के चूर्ण का लेहन उदर आदि रोगों में उत्तम विरेचन है।

सम्यक् एवं असम्यक् विरेचन का लक्षण

क्षुल्लाघवप्रसन्नत्वैः कफान्तं साधुरेचनम्।
तदसम्यक् च विज्ञेयं कण्डूमण्डलगौरवैः॥१९॥

जब पित्त के उपरान्त कफ आने तक विरेचन हो तथा भूख, लघुता एवं प्रसन्नता की अनुभूति हो तो सम्यक् विरेचन हुआ जानना चाहिए। यदि विरेचन से खुजली, मण्डल एवं शरीर में भारीपन का अनुभव हो तो इसे असम्यक् जानना चाहिए।

अति विरेचन के लक्षण

शूलमूर्छागुदभ्रंशो वातवृद्धिर्विसञ्ज्ञता।
मांसाम्बुसदृशः स्रावस्त्वतिरेचनलक्षणम्॥२०॥

शूल, मूर्छा, गुदभ्रंश, वातवृद्धि, विसञ्ज्ञता (बेहोशी), मांसरस-सा स्राव आना- ये अति विरेचन के लक्षण हैं।

विरेचन के योग्य एवं अयोग्य व्यक्ति

कुष्ठार्श:कृमिवैसर्प-वातासृक्पाण्डुरोगिण:।
विरेच्यास्त्वविरेच्या: स्युगर्भिणीक्षयदुर्बला:।।२१।।

कुष्ठ, अर्श, कृमि, विसर्प, वातरक्त एवं पाण्डुरोग वाले व्यक्तियों को विरेचन करवाना चाहिए। गर्भिणी, क्षयरोगी एवं दुर्बल व्यक्तियों को विरेचन नहीं करवाना चाहिए।

अति वमन-विरेचन का प्रतिकार एवं नस्यविधि

वमनेऽतिप्रवृत्ते तु हृद्यं कार्यं विरेचनम्।
विरेके चाति संवृत्ते वमनं योजयेद् भिषक्।।२२।।
पद्मकोशीर-नागाह्व-चन्दनानि प्रयोजयेत्।
अतियोगे विरेकस्य, प्रतिमर्शोऽवपीडनम्।।२३।।

वमन के अतिप्रवृत्त होने पर उसे रोकने के लिए हृद्य (हृदय के लिए प्रिय व हितकर द्रव्यों से युक्त) विरेचन देना चाहिए। इसी प्रकार विरेचन के अतिप्रवृत्त होने पर हृद्य द्रव्यों से वमन करवाना चाहिए। विरेचन का अतियोग होने पर पद्मक (पद्माख), उशीर (खस), नागाह्व (नागकेसर) एवं चन्दन का प्रयोग करवाना चाहिए।

विरेचन का ही एक भाग नस्य या शिरोविरेचन है। इसमें नासिका के अन्दर तेल आदि स्नेह डालकर सिर के कफ को निकाला जाता है, अत: इसे नस्य या शिरोविरेचन कहते हैं। इसके अन्तर्गत ही 'प्रतिमर्श' एवं 'अवपीडन' आते हैं। तेल में अंगुलि डुबोकर हल्के से नासिका में घुमाना 'प्रतिमर्श' कहलाता है। ओषधि-विशेष के कल्क अथवा रस को निचोड़कर नासिका में डालने को 'अवपीडन' कहते हैं।

प्रधमन

ज्ञेयं प्रधमनं चेति तत् स्नेहेनौषधेन वा।
तन्निषेवी शिरःस्नानं क्रोधादींश्च विवर्जयेत्।।२४।।

शिरोविरेचन/नस्य के अन्तर्गत ही प्रधमन क्रिया आती है। स्नेह या पिसी हुई औषध को नासिका में डालने को 'प्रधमन' कहते हैं। प्रधमन लेने वाले व्यक्ति को शिर:स्नान एवं क्रोध आदि आवेग छोड़ देने चाहिए।

नस्य में स्नेह की मात्रा

स्नेहस्य बिन्दवो ह्यष्टौ तर्जनीपर्वयुग्मजाः।
स्यान्मात्राद्यापरा शुक्तिः पाणिशुक्तिश्च नावने।।२५।।

नावन (नस्य) में तर्जनी अंगुलि को दूसरे पर्व (पोर) तक तेल में डुबाकर नासिका में डालने से जितना तेल पड़ता है, वह नस्य का एक बिन्दु माना जाता है। स्नेहिक नस्य में प्रत्येक नासा छिद्र में इस प्रकार के आठ बिन्दु डालने से एक मात्रा बनती है। इस प्रकार स्नेह के आठ-आठ बिन्दुओं से पहली मात्रा बनती है। दूसरी मात्रा 'शुक्ति' अर्थात् १६+१६=३२ बिन्दुओं की होती है। तीसरी मात्रा 'पाणिशुक्ति' मानी जाती है। दो शुक्तियों की एक पाणिशुक्ति होती है। इस प्रकार पाणिशुक्ति में ६४ बिन्दु होते हैं।

नस्य की सामान्य मात्रा-४,६,८ बिन्दु

चत्वारो बिन्दवः षड् वा तथाष्टौ च यथाबलम्।
शिरोविरेचने योज्या ह्यूर्ध्वजत्रुविकारिणाम्।।२६।।

ऊर्ध्वजत्रुगत (गले से ऊपर के) विकार वालों के लिए बल के अनुसार चार, छह अथवा आठ बिन्दु शिरोविरेचन के लिए प्रयुक्त किए जाने चाहिए।

वस्ति-उपकरण

आयसादि भवेन्नेत्रं प्रमाणं द्वादशांगुलम्।
त्र्यंगुला कर्णिका चास्य दृढवस्तिसमन्वितम्।।२७।।

वस्ति का नेत्र (अग्र भाग) लोह आदि धातुओं से बनाना चाहिए तथा इसका प्रमाण बारह अंगुल होना चाहिए। इसकी कर्णिका तीन अंगुल की होनी चाहिए। कर्णिका में वस्ति (थैली, जिसमें स्नेह या औषध-द्रव्य भरा रहता है) दृढ़ता से बंधी रहनी चाहिए।

गोपुच्छाभं तु कर्त्तव्यं मूलेऽङ्गुष्ठप्रमाणकम्।
छिद्रं कलायमात्रं च मुखे वृत्तसमं मृदु।।२८।।

वस्तिनेत्र का मूल भाग गोपुच्छ के आकार का बनाना चाहिए- अर्थात् जैसे गोपुच्छ में बाल ऊपर अधिक तथा नीचे कम होते जाते हैं, अतः ऊपर का भाग मोटा तथा नीचे का भाग पतला होता है, इसी प्रकार का बनाना चाहिए। इसका छिद्र कलाय (मटर) के दाने जितना बड़ा और मुख में गोल एवं मृदु (कोमल) बनाना चाहिए। भाव यह है कि मुख गोल व चिकना होना चाहिए, खुरदरा या नुकीला नहीं।

वस्ति-क्रिया

शताह्वासिन्धुचूर्णिन्या सुखोष्णस्नेहमात्रया।
प्रसुप्तं वामपार्श्वेन कृतान्नमनुवासयेत्।।२९।।

वाम पार्श्व (बायीं करवट) से लेटे हुए भोजन कर चुके व्यक्ति को शताह्वा (सोआ) एवं सिन्धु (सेन्धा नमक) के चूर्ण से युक्त सुखोष्ण स्नेहमात्रा से अनुवासित करना चाहिए।

अहोरात्रान्निवृत्तोऽपि नैव स्नेहो विरुध्यते।
अत ऊर्ध्वमनायान्तं क्षिप्रं संशोधनैर्हरेत्।।३०।।

वस्ति में दिया हुआ स्नेह यदि अहोरात्र (२४ घण्टे) के बाद निवृत्त होता है तो यह विरुद्ध नहीं माना जाता, परन्तु इसके उपरान्त भी बाहर न आने वाले स्नेह को शीघ्र ही संशोधन-द्रव्यों से निकाल देना चाहिए।

सविट्-स्नेहागतिः सम्यगनुवासितलक्षणम्।
हीने तद्विपरीतत्वं दाहश्चात्यनुवासिते।।३१।।

मल सहित स्नेह का निकलना सम्यक् अनुवासित का लक्षण जानना चाहिए। असम्यक् अनुवासित में इसके विपरीत स्थिति होती है। अत्यनुवासित में दाह होता है।

स्नेहवस्ति व निरूह के योग्य एवं अयोग्य व्यक्ति

स्नेहवस्तिनिरूहौ च योज्यौ वातविकारिषु।
नेष्यते क्षीण-कुष्ठार्शः-छर्दि-मेहोदरादिषु।।३२।।

वातविकार वाले रोगियों में स्नेहवस्ति तथा निरूह- इन दोनों का प्रयोग करना चाहिए। क्षीण व्यक्ति के लिए तथा कुष्ठ, अर्श, छर्दि, प्रमेह व उदररोग से ग्रस्त व्यक्ति के लिए इनका प्रयोग वाञ्छित नहीं होता है।

निरूहविधि

अनुवासितमभ्यक्तं स्विन्नदेहं निरूहयेत्।
अभुक्तं पीडयन् वस्तिमतूर्णमविलम्बितम्।।३३।।

अनुवासित, अभ्यक्त, स्विन्नदेह (स्वेदन कर चुके/पसीना ले चुके) एवं अभुक्त (भोजन न किए हुए व्यक्ति को वस्ति (औषध-द्रव्य से भरी थैली) के ऊपर दबाव देते हुए निरूह देना चाहिए। इस क्रिया को न तो बहुत शीघ्रतापूर्वक करें और न ही बहुत धीरे-धीरे, अपितु मध्यम गति से करें।

त्रिंशन्मात्रास्थितो वस्तिः स्राव्यस्तूत्कुटकस्थिते।
द्वितीयं वा तृतीयं वा दद्यादेवं विचक्षणः।।३४।।

तीस मात्रा की कालावधि तक स्थित वस्ति को उत्कुटकासन में- अर्थात् उकड़ू बैठाकर बाहर निकलवा देना चाहिए। इसी प्रकार दूसरी बार एवं तीसरी बार वस्ति देनी चाहिए।

स्नेहवस्ति (अनुवासन)

स्रुते मलकफे वस्तौ स्नातं भुक्तरसौदनम्।
वातोपद्रवरक्षायै यथावदनुवासयेत्।।३५।।

वस्ति द्वारा मल एवं कफ के स्रुत हो जाने पर (बह जाने पर), स्नान व भोजन कर लेने पर वात के उपद्रव से बचाने के लिए विधिवत् अनुवासन करवाना चाहिए।

वस्ति-व्यापद्

स्थिते वस्तौ हि विष्टम्भ-शूलाध्मानादयो गदाः।
तीक्ष्णवस्तिविरेकादिर्विधिरत्र प्रशस्यते।।३६।।

वस्ति के रूप में दिए औषध-द्रव्यों के अन्दर स्थित रहने पर विष्टम्भ, शूल, आध्मान आदि रोग हो जाते हैं। अतः तीक्ष्ण वस्ति के अन्दर रूक जाने पर उसे निकालने के लिए तीक्ष्ण वस्ति एवं विरेचन देना आवश्यक होता है। यही विधि प्रशस्त मानी जाती है।

वस्ति-कल्पना

कषायस्नेहकल्काः स्युश्चतुरेकाष्टमांशिकाः।
युक्त्या च लवणक्षौद्रे वस्तिष्वेषा प्रकल्पना।।३७।।

कषाय एवं स्नेह के कल्क चार, एक व आठ अंश वाले होने चाहिएं। लवण एवं क्षौद्र भी युक्तिपूर्वक मिलाने चाहिए। वस्तियों में यह प्रकल्पना मान्य होती है।

वातविकार-नाशक वस्ति

मारुतघ्नौषधक्वाथस्त्रिवृत्सैन्धव-संयुतः।
साम्लो वस्तिः सुखोष्णः स्यात्संक्रुद्धे मातरिश्वनि।।३८।।

वात के कुपित होने पर वातघ्न औषधों से सिद्ध तथा त्रिवृत् एवं सैन्धव

से मिश्रित अम्लरस सहित सुखोष्ण वस्ति देनी चाहिए।

कोलानि दशमूलं च कुलत्थः शुष्कमूलकम्।
द्विपलानि जलद्रोणे क्वाथोऽष्टांशावशेषितः।।३९।।

कोल फल (बदर/बेर), दशमूल (बिल्व, श्योनाक, गम्भारी, पाटला, अग्निमन्थ, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू), कुलत्थ, शुष्क मूलक (सूखी मूली)- इन्हें दो-दो पल मात्रा में लेकर एक द्रोण जल में पकाएं। अष्टमांश शेष रहने पर इनका क्वाथ सिद्ध होता है। इसकी सुखोष्ण वस्ति वातरोगों को नष्ट कर देती है।

वचोपकुञ्चिकाकृष्णा-शताह्वासैन्धवाम्बुदाः।
पेष्याः क्षीराम्लमूत्राणि वस्तिः स्याद्वातरोगजित्।।४०।।

वचा, उपकुञ्चिका (कारवी/मंगरैल), कृष्णा (पिप्पली), शताह्वा (सोआ), सैन्धव लवण एवं अम्बुद (मुस्तक)- ये क्षीर, अम्ल एवं गोमूत्र के साथ पीसने चाहिए। इनसे तैयार वस्ति वातरोगों को नष्ट कर देती है।

पित्तविकार-नाशक वस्ति

न्यग्रोधादिगणक्वाथः काकोल्यादिप्रकल्पितः।
घृतक्षौद्रसितायुक्तो निरूहः पित्तनाशनः।।४१।।

न्यग्रोधादिगण की ओषधियों का काकोली आदि जीवनीय गण वाली औषधियों के साथ तैयार किया गया घृत मधु एवं शर्करा से युक्त निरूह पित्त को नष्ट कर देता है।

विविधव्याधि-नाशक वस्तियाँ

आरग्वधादिनिर्यूहः पिप्पल्यादि-समन्वितः।
मूत्रमाक्षिकसंयुक्तो वस्तिः कफविनाशनः।।४२।।

गोमूत्र एवं मधु के साथ पिप्पल्यादि गण एवं आरग्वधादि गण की

ओषधियों से तैयार की गई वस्ति कफनाशक होती है।

तिक्ताब्दोशीरमञ्जिष्ठा बला-रास्ना-पुनर्नवाः।
बृहत्यावमृता पर्ण्यौ राजवृक्षकगोक्षुराः।।४३।।
पलांशान् मदनं चैव जलद्रोणे विपाचयेत्।
तेनाष्टभागशिष्टेन क्षीरस्यार्धाढकः शृतः।।४४।।
कार्षिकाः फलिनीयष्टीशताह्वा-वत्सतार्क्ष्यजाः।
सैन्धवं मधुसर्पिश्च युक्त्या जाङ्गलजो रसः।।४५।।
वातपित्तगदघ्नोऽयं वस्तिर्वृष्योऽतिदीपनः।
शूलगुल्मक्षतक्षीण-कृच्छ्रोदावर्त्तनाशनः।।४६।।

तिक्ता, मुस्तक, उशीर, मञ्जिष्ठा, बला, रास्ना, पुनर्नवा, दोनों बृहती, अमृता, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, राजवृक्ष (आरग्वध/अमलतास), गोखरू तथा मदनफल- इन्हें एक-एक पल की मात्रा में लेकर जलद्रोण में पकाएं। अष्टम भाग शेष रहने पर उसके साथ आधा आढक दूध पकाएं तथा एक-एक कर्ष के परिमाण में फलिनी (प्रियंगु), मुलेठी, शताह्वा, वत्स, तार्क्ष्यज, सैन्धव, मधु, घृत एवं जाङ्गल रस मिलाएं। इस प्रकार तैयार की गई वस्ति वातपित्त रोगों को नष्ट करती है तथा अतिवृष्य व दीपन होती है। यह शूल, गुल्म, क्षतक्षीण, मूत्रकृच्छ्र एवं उदावर्त्त रोग को भी नष्ट करती है।

समं मधु च तैलं च क्वाथश्चित्रस्य तत्समः।
शताह्वार्धपलं कर्षं सैन्धवस्य च कल्कयेत्।।४७।।
वस्तिर्निष्परिहारोऽयं वृष्यो दीपन-बृंहणः।
गाढविट्कृमिगुल्मानां प्रशस्तो निरुपद्रवः।।४८।।

मधु एवं तेल सममात्रा में लें। इन दोनों के समान मात्रा में चित्रक का क्वाथ लें। आधा पल शताह्वा और एक कर्ष सैन्धव लेकर कल्क बनाएं। इस प्रकार तैयार वस्ति निष्परिहार (निरापद) है। यह वृष्य, दीपन एवं बृंहण होती

है। यह वस्ति मलबद्धता, कृमि एवं गुल्मरोग में प्रशस्त मानी जाती है तथा निरापद होती है।

क्षौद्राज्यक्षीरतैलानां प्रसृतं प्रसृतं भवेत्।
हपुषासैन्धवाक्षांशो वस्तिः स्यात् पावनो वरः।।४९।।

मधु, घृत, दूध एवं तैल- इन्हें एक-एक प्रसृत मात्रा में लें। हपुषा (हाऊबेर) एवं सैन्धव को एक अक्ष मात्रा में लें। इनसे तैयार वस्ति उत्तम शोधन के रूप में मानी जाती है।

वस्ति का फल

मूलसेकाद् यथा वृक्षः स्निग्धशाड्वलपल्लवः।
तथा वस्तिप्रदानात् स्यान्नरः कान्तिबलादिमान्।।५०।।

जैसे वृक्ष की जड़ों को सींचने से वह स्निग्ध शाखा एवं पल्लवों से युक्त हो जाता है, उसी प्रकार वस्ति देने से व्यक्ति कान्ति एवं बल आदि से सम्पन्न हो जाता है।

।। इति पञ्चकर्माध्यायस्त्रिंशत्तमः समाप्तः।।

एकत्रिंश अध्याय

कल्प

यहाँ कल्प का अर्थ है- विधि अथवा विधान। प्रस्तुत प्रकरण में विशिष्ट विधि से लशुन आदि रसायन-द्रव्यों के सेवन का विधान किया है। इनमें से बहुत से द्रव्यों का सेवन सामान्य रूप में भोजन के साथ भी किया जाता है, परन्तु यहाँ विशिष्ट विधिपूर्वक विशिष्ट आहार-विहार व परहेज के साथ इनके सेवन का वर्णन है। इस प्रकार के सेवन को 'कल्प' कहते हैं। इससे रसायन-गुण विशिष्ट रूप में प्राप्त होते हैं। यहाँ लशुन, भल्लातक, हरीतकी, धात्रीरस आदि रसायन-द्रव्यों के कल्प का निरूपण किया है।

लशुन-कल्प

अम्लवर्ज्या रसाः पञ्च रसोने सम्प्रतिष्ठिताः।
वातश्लेष्महरं तत् स्याद् द्रव्ययोगात् त्रिदोषहृत्।।१।।

अम्ल को छोड़कर शेष पाँच रस रसोन (लशुन) में प्रतिष्ठित हैं, अतः वह वातश्लेष्महर होता है। अन्य द्रव्यों के संयोग से वह त्रिदोषहर भी बन जाता है।

चैत्रमासे प्रयोज्यं तत् स्वस्थेन बलमिच्छता।
रोगिणां च सदा सेव्यं जातसारं गुणान्वितम्।।२।।

बल चाहने वाले स्वस्थ व्यक्ति को चैत्रमास में लशुन का प्रयोग करना चाहिए। प्रयोग में लाया जाने वाला लशुन पूर्ण परिपक्व एवं जातसार (रसपूर्ण) होना चाहिए। अधपका, अविकसित या क्षीण स्वरूप वाला लशुन प्रयोग योग्य नहीं होता है। सामान्यतः चैत्र में इसका प्रयोग विहित है, परन्तु रोगग्रस्त व्यक्ति इसका प्रयोग सदैव कर सकते हैं।

संयतः स्वरसं तस्य पिबेत् कर्षाभिवृद्धितः।
द्विचतुःषट्पला मात्रा हीनामध्योत्तमा मता।।३।।

संयत (संयमी) रहते हुए व्यक्ति को उसका रस एक-एक कर्ष की वृद्धि करते हुए पीना चाहिए। इसकी तीन मात्राएं हैं- हीन, मध्यम व उत्तम। हीन मात्रा दो पल परिमाण की, मध्यम मात्रा चार पल परिमाण की तथा उत्तम मात्रा छह पल परिमाण की मानी जाती है।

कफमारुतयोरम्लैरनुपानं सुरादिभिः।
कल्पयेत् पयसा पित्ते मधुरैश्च रसैर्भिषक्।।४।।

कफ एवं वात के विकारों में लशुन सेवन करते समय सुरा आदि को अनुपान के रूप में लेना चाहिए। पित्तविकार में वैद्य दूध एवं अन्य मधुर रसों के साथ इसका अनुपान निश्चित करे।

गोधूमविकृतिर्योज्या रसा जाङ्गलजाश्च ये।
क्रोध-मैथुन-खेदादीनजीर्णं च विवर्जयेत्।।५।।

लशुन सेवनकाल में गोधूम (गेहूं) से बने भोज्यपदार्थों का तथा जाङ्गल-रसों का सेवन करना चाहिए। इस काल में क्रोध, मैथुन, खेद (तनाव/आयास) आदि मानस-विकारों तथा अजीर्ण से बचना चाहिए।

कनीयानेकसप्ताहं मध्यमो द्विगुणं तु तत्।
उत्तमश्च त्रिसप्ताहमेष ज्ञेयः क्रियाविधिः।।६।।

लशुन-कल्प का कनिष्ठ काल एक सप्ताह पर्यन्त होता है, मध्यम उससे द्विगुण- अर्थात् दो सप्ताह पर्यन्त तथा उत्तम काल तीन सप्ताह पर्यन्त होता है। इस प्रकार लशुन-कल्प की क्रियाविधि जाननी चाहिए।

पित्तघ्नं सर्पिषा युक्तं तैलेन कफवातनुत्।
वसामज्जान्वितं दृष्टं क्षतक्षीणप्रबृंहणम्।।७।।

घृत के साथ सेवित लशुन पित्तघ्न होता है, तेल के साथ कफवात-नाशक होता है तथा वसा व मज्जा के साथ सेवित लशुन क्षतक्षीण व्यक्तियों को पुष्ट करने वाला होता है।

क्षीरेण साधितं क्षुण्णं पिबेच्छर्करया युतम्।
रक्तपित्तातुरः क्षीणो जीर्णे क्षीररसाशनः।।८।।

रक्तपित्त से ग्रस्त क्षीण व्यक्ति लशुन का छिल्का उतारकर कूट लें और दूध के साथ सिद्ध करें। शर्करा मिलाकर इसका पान करें। इसके पच जाने पर क्षीर (दूध) एवं रस भोजन के रूप में लें। इससे रक्तपित्त व दुर्बलता दूर हो जाती है।

वातरोगगरोन्माद-श्वासापस्मार-कासिनाम्।
भग्नशूलकृमिक्लीब-वन्ध्यानां तत् प्रशस्यते।।९।।

वातरोग, विष, उन्माद, श्वास, कास, अपस्मार (मिर्गी), भग्न (अस्थिभंग/फ्रैक्चर), शूल एवं कृमि रोग से पीड़ित व्यक्तियों के लिए लशुन का सेवन उक्त प्रकार से प्रशस्त माना जाता है। इसी प्रकार क्लीब (नपुंसक) एवं वन्ध्या के लिए यह अति उत्तम होता है।

लशुन-कल्प के अयोग्य जन

अर्शःप्रवाहिकार्त्तेन न सेव्यं गण्डमालिना।
अतिदुर्बलदेहेन गर्भिण्या बालवत्सया।।१०।।

अर्श (बवासीर) एवं प्रवाहिका (पेचिश) से पीड़ित व गण्डमाला रोग से ग्रस्त व्यक्ति को लशुन का सेवन नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार अति क्षीणकाय, गर्भिणी एवं स्तन्यपायी शिशु वाली माता को भी लशुन का सेवन नहीं करना चाहिए।

पलाण्डु-कल्प

किञ्चिद् वीर्येण हीनश्च पलाण्डुः स्याद्रसोनतः।
अनेनैव विधानेन तस्य कार्यं निषेवणम् ।।११।।

पलाण्डु (प्याज) रसोन से वीर्य में कुछ हीन (कमतर) होता है, परन्तु वह भी इसी प्रकार का गुणकारी द्रव्य है, अतः लशुनकल्प वाले विधान से ही उसका भी सेवन करना चाहिए। जैसे लशुनकल्प से विविध रोगों का नाश व विशिष्ट गुण की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार पलाण्डुकल्प से भी होती है।

एरण्डतैल-कल्प

मद्याम्लपञ्चमूलाम्बु-जाङ्गलैश्च रसैः पृथक्।
यथाबलं पिबेत् तैलमेरण्डं मारुतामयी।।१२।।

वातरोगों से ग्रस्त व्यक्ति मद्य, अम्ल, पञ्चमूल-क्वाथ एवं जाङ्गल रस- इनमें से किसी एक के साथ यथाशक्ति एरण्ड का तेल पिएं। इससे समस्त वातरोग नष्ट हो जाते हैं।

त्रिफलाक्वाथसंयुक्तं श्लेष्मपित्तविनाशनम्।
वातश्लेष्मविकारघ्नं दशमूलाम्बुसङ्गतम्।।१३।।

त्रिफला के क्वाथ से युक्त एरण्डतेल का कल्पविधि से सेवन श्लेष्मपित्त-नाशक होता है। इसी प्रकार दशमूल के क्वाथ के साथ एरण्डतेल का सेवन वातकफ-विकारों का नाशक होता है।

अजाक्षीरेण संयुक्तं पीतं द्राक्षारसेन वा।
अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं क्षीरेणानिलगुल्मजित्।।१४।।

अजाक्षीर (बकरी के दूध) एवं द्राक्षारस के साथ कल्पविधि से सेवित एरण्डतेल अश्मरी (पथरी) एवं मूत्रकृच्छ्र रोग को नष्ट कर देता है। गोदुग्ध के साथ सेवन करने से यह वातगुल्म को जीत लेता है।

कामलापाण्ड्वतीसार-छर्दिकुष्ठज्वरातुरैः।
न सेव्यं केवलं श्लेष्मपित्तरक्तगदातुरैः।।१५।।

कामला, पाण्डुरोग (पीलिया), अतिसार, छर्दि, कुष्ठ एवं ज्वर से ग्रस्त व्यक्तियों को अकेले एरण्डतेल का सेवन नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार श्लेष्मपित्त एवं रक्तपित्त रोग से पीड़ित व्यक्तियों को भी केवल एरण्ड तेल का सेवन नहीं करना चाहिए।

भल्लातक-कल्प

पञ्च भल्लातकान् छित्वा साधयेद् विधिवज्जले।
कषायं तं पिबेच्छीतं घृतेनाक्तौष्ठतालुकः।।१६।।

पाँच भल्लातक (भिलावों) को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर विधिवत् जल में सिद्ध करें। इस प्रकार सिद्ध कषाय को शीतल कर पान करें। पीने से पहले मुख में, ओठ और तालु पर घी अवश्य चुपड़ लें; अन्यथा तीक्ष्ण रस वाले इस कषाय को पीने से मुख की कोमल त्वचा को क्षति हो सकती है।

सूचना- भल्लातक (भिलावा) यद्यपि आयुर्वेद में अत्यन्त गुणकारी व चमत्कारी रसायन के रूप में वर्णित है, परन्तु यह अति तीक्ष्ण, उष्ण एवं कुछ विषाक्त भी होता है; अतः इसका प्रयोग अनुभवी चिकित्सक के परामर्श के अनुसार उसकी देखरेख में ही करना चाहिए, अन्यथा प्रयोगकर्त्ता संकटापन्न हो सकता है।

जीर्णेऽद्यादोदनं शीतं घृतक्षीरोपसंहितम्।
एतद्रसायनं मेध्यं वलिपलित-नाशनम्।
कुष्ठार्शःकृमिदोषघ्नं दुष्टशुक्रविशोधनम्।।१७।।

पूर्व श्लोक में वर्णित भल्लातक-कषाय के जीर्ण हो जाने पर घृत एवं दूध से युक्त शीतल ओदन का सेवन करना चाहिए। इस प्रकार कल्पविधि से भल्लातक-कषाय एवं उसके साथ निर्दिष्ट पथ्याहार करना उत्तम रसायन

है। यह मेध्य एवं वलिपलित-नाशक होता है तथा कुष्ठ, अर्श व कृमिदोष को नष्ट करता है, दूषित शुक्र को शुद्ध करता है। यह वृद्धावस्था के प्रभाव को रोक देता है तथा पुरुष में शक्ति एवं स्फूर्त्ति बनाए रखता है।

तैलं भल्लातकानां वा पिबेन्मासं यथाबलम्।
सर्वोपतापनिर्मुक्तो जीवेद् वर्षशतं दृढः।।१८।।
अग्न्यातपदिवास्वप्न-तैलगुर्वम्लसेवनम्।
वर्जयेत् परिहारश्च द्विगुणः स्यात् क्रियापथात्।।१९।।

रसायन गुण चाहने वाले व्यक्ति को शक्ति के अनुसार एक मास तक भल्लातक तेल पीना चाहिए। इससे व्यक्ति सर्वरोगमुक्त एवं दृढशरीर होकर सौ वर्ष तक जीवित रहता है। इसके सेवनकाल में अग्नि तापना, धूप का सेवन एवं दिवाशयन नहीं करना चाहिए। तेल, गुरु भोज्य एवं अम्ल पदार्थों का सेवन छोड़ देना चाहिए तथा सामान्य स्थिति की अपेक्षा द्विगुण परहेज करना चाहिए।

पित्ताधिकस्य जायन्ते पाकशोफज्वरादयः।
तस्य शीता क्रिया कार्या पानालेपनसेचनैः।।२०।।

पूर्वोक्त भल्लातक तेल के सेवन से पित्त की अधिकता वाले व्यक्ति को पाक (मुख आदि का पकना), शोफ (सूजन) एवं ज्वर आदि विकार होते हैं। उनका पान, लेपन एवं सेचन से शीतल उपचार करना चाहिए।

पिप्पली-कल्प

क्षीरेण पिप्पलीः पञ्च पिबेत् क्षीरान्नभुग्यतः।
दशाहं पञ्चवृद्धिः स्याद् अपकर्षस्तथैव च।।२१।।
वातासृक्-पाण्डुगुल्मार्शः-श्वासशोफोदरापहम्।
विषमज्वरहृद् वृष्यं पिप्पलीवर्धमानकम्।।२२।।

संयत (संयमी बना हुआ) व्यक्ति गोदुग्ध के साथ पाँच पिप्पली पिए

तथा प्रतिदिन पाँच-पाँच की वृद्धि करते हुए दस दिन तक इनका सेवन करे। तदनन्तर पाँच-पाँच पिप्पली प्रतिदिन घटाता जाए। इस प्रकार 'पिप्पली-वर्धमानक' कल्प सम्पन्न होता है। यह विषमज्वर को नष्ट कर देता है तथा वृष्य होता है।

सूचना- यह कल्प चिकित्सक के परामर्श व उसकी देखरेख में ही करना चाहिए; क्योंकि चरकसंहिता में पिप्पली, क्षार एवं लवण के अतिसेवन के विषय में विशेष चेतावनी दी गई है-

अथ खलु त्रीणि द्रव्याणि नात्युपयुञ्जीताधिकमन्येभ्यो द्रव्येभ्यः, तद्यथा- पिप्पली, क्षारः, लवणमिति। पिप्पल्यो हि कटुकाः सत्यो मधुरविपाका गुर्व्यो नात्यर्थं स्निग्धोष्णाः प्रक्लेदिन्यो भेषजाभिमताश्च, ताः सद्यः शुभाशुभकारिण्यो भवन्तिः आपातभद्राः, प्रयोगसम-साद्‌गुण्यात्, दोषसञ्चयानुबन्धाः सततमुप-युज्यमाना हि गुरुप्रक्लेदित्वाच्छ्लेष्माणमुत्क्ल ेशयन्ति, औष्ण्यात् पित्तं, न च वातप्रशमनायोपकल्पन्तेऽल्पस्नेहोष्णभावात्, योगवाहिन्यस्तु खलु भवन्ति, तस्मात् पिप्पलीर्नात्युपयुञ्जीत।।

(चरकसंहिता, विमानस्थान-१.१५-१६)

अर्थात् तीन द्रव्यों का अति उपयोग अन्य द्रव्यों के अति उपयोग की अपेक्षा अधिक घातक होता है। वे हैं- पिप्पली, क्षार एवं लवण। पिप्पलियाँ निश्चय ही कटु (चरपरी) होते हुए मधुरविपाक, गुरु, कुछ स्निग्ध एवं उष्ण गुण वाली तथा प्रक्लेदन करने वाली होती हैं। ये तुरन्त प्रभावी औषध के रूप में चिकित्सकों को मान्य होती हैं; क्योंकि ये शीघ्र ही शुभाशुभ करने वाली, आपातभद्र (प्रयोग करते ही तुरन्त फल देने वाली) होती हैं, परन्तु इनका समयोग ही साद्‌गुण्य-कारक होता है, अतियोग नहीं। ये दोषसञ्चयानुबन्धा होती हैं, निरन्तर उपयोग से गुरु एवं प्रक्लेदी होने के कारण ये कफ को उत्क्लेशित करती हैं, उभारती हैं। उष्णता के कारण पित्त को भी उत्क्लेशित करती है, परन्तु वात का प्रशमन करने में समर्थ नहीं होती; क्योंकि इनमें स्नेह व उष्ण गुण कम होता है। ये योगवाही होती हैं, इसलिए इनका अति उपयोग नहीं करना चाहिए।

शिलाजतु-कल्प

हेमादिलोहसम्भूतं तद्वीर्याभं शिलाजतु।
गोमूत्रगन्धि सुस्निग्धं गुरु नि:शर्करं शुभम्।।२३।।
यथादोषं गणक्वाथैर्भावितं चूर्णितं मुहु:।
यथास्वं प्रपिबेत्क्वाथै: सर्वव्याधिविनाशनम्।।२४।।
एवं माक्षिकधातुश्च निषेव्य: सर्वरोगहा।
कपोतकं कुलत्थं च तन्निषेवी विवर्जयेत्।।२५।।

शिलाजतु (शिलाजीत) पर्वतों पर शिलाओं के अन्दर विद्यमान स्वर्ण व लोह के अंश से उत्पन्न होती है, अत: यह पर्वत के वीर्यतुल्य (सारतुल्य) होती है। गोमूत्र जैसी गन्ध वाली सुस्निग्ध, गुरु (भारी) एवं शर्कराहीन (कंकड़-पत्थर से रहित) शिलाजीत उत्तम होती है। वात-पित्त आदि दोषों की स्थिति के अनुसार उचित गण वाले क्वाथों से भावित व चूर्णित कर इसका सेवन करना चाहिए। जिस क्वाथ के साथ इसे भावित किया जाता है, उसी क्वाथ के साथ इसका सेवन करना चाहिए। इस प्रकार विधिवत् सेवन से शिलाजीत सभी रोगों को नष्ट कर देती है।

इसी प्रकार 'स्वर्णमाक्षिक' (सोनामाखी) नामक धातु का भी सेवन करना चाहिए। वह भी सर्वरोग-नाशक होती है। शिलाजतु एवं स्वर्णमाक्षिक का सेवन करने वालों को कपोतक (सौवीराञ्जन) एवं कुलत्थ के सेवन से दूर रहना चाहिए।

हरीतकी-कल्प

वातघ्ना लवणै: पथ्या पित्तघ्ना घृतसंयुता।
नागरेण कफं हन्ति सर्वरोगान् गुडान्विता।।२६।।

सैन्धव आदि लवणों के साथ सेवित हरीतकी वातघ्न होती है। घृत के साथ पित्तघ्न होती है तथा शुण्ठी के साथ कफ को नष्ट करती है। (पुराने) गुड़ के साथ सेवन करने से तो यह सभी रोगों को नष्ट कर देती है।

धात्रीरस-कल्प

धात्रीरसाढकं धूतं मध्वक्ते स्थापयेद् घटे।
हेमन्ते शिशिरे वास्मान्मात्रां प्रावृषि वा पिबेत्।।२७।।

ताजे आंवले का रस निचोड़कर एक आढक परिमाण में लें तथा मधु से लिप्त घड़े में रखें। हेमन्त, शिशिर अथवा वर्षा ऋतु में इसे मात्रानुसार पीना चाहिए। एक ऋतु अर्थात् दो मास तक निरन्तर सेवन करने से धात्री-रस का कल्प सम्पन्न हो जाता है। यह उत्तम रसायन है।

अञ्जनक्षीरसंयुक्तो ह्यूर्ध्वासृक्-पित्तनाशनः।
सितया पाण्डुरोगघ्नो गोप्यासृग्दरवारणः।।२८।।

धात्रीरस को अञ्जनक्षीर के साथ लेने से ऊर्ध्वासृक्-पित्त (ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त) नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार शर्करा के साथ धात्रीरस के प्रयोग से पाण्डुरोग नष्ट हो जाता है तथा गोपी (शारिवा) के साथ इसका सेवन करने से असृग्दर (रक्तप्रदर) नष्ट हो जाता है।

श्लेष्माणं मधुना हन्ति त्र्यूषणेनाग्निमन्दताम्।
सोमराजियुतं कुष्ठमर्शांसि च सवत्सकम्।।२९।।

मधु के साथ धात्रीरस का सेवन कफ को नष्ट करता है, त्रिकटु के साथ अग्निमन्दता को नष्ट करता है तथा सोमराजि (बाकुची) के साथ कुष्ठ को नष्ट करता है। इसी प्रकार यह वत्सक (टुण्टुक) के साथ अर्शरोग को नष्ट करता है।

सिद्धसार-संहिता के उपजीव्य ग्रन्थ एवं इसका परिमाण

इति धन्वन्तरेर्वीक्ष्य मतमत्रिसुतस्य च।
आयुर्वेदार्णवाकीर्णश्चिकित्साम्बुलवो मया।।३०।।
एकत्रिंशदिमेऽध्याया निबद्धास्तन्त्रपद्धतौ।
अनुष्टुप्छन्दसा श्लोकत्रयोदशशतान्विताः।।३१।।

इस प्रकार 'धन्वन्तरि' एवं 'अत्रिसुत' (आत्रेय पुनर्वसु) के मत- अर्थात् 'सुश्रुत-परम्परा' एवं 'चरक-परम्परा' का सम्यक् अवलोकन कर मैंने (रविगुप्त ने) आयुर्वेदसागर में व्याप्त अगाध चिकित्साजल में से कुछ बिन्दु संगृहीत किए हैं- अर्थात् अति विस्तृत चिकित्सा-विषय को सुगम व संक्षिप्त शैली से इस '**सिद्धसार-संहिता**' में निबद्ध किया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में शास्त्रसरणि के अनुसार ३१ अध्याय बनाए हैं और इनमें अनुष्टुप् छन्द वाले १३०० श्लोक हैं।

'**सिद्धसार-संहिता**' के प्रस्तुत संस्करण की श्लोकसंख्या- १३१५ है। ग्रन्थकार ने स्वयं इसकी श्लोकसंख्या १३०० बताई है। हस्तलिखित प्रतियों में श्लोकों की कुछ न्यूनाधिकता पाई जाती है। ग्रन्थ के अन्त में '**आचार्य रविगुप्त**' द्वारा प्रस्तुत '**सिद्धसार-निघण्टु**' की श्लोकसंख्या ९५ है। इस प्रकार निघण्टु सहित सम्पूर्ण ग्रन्थ के प्रस्तुत संस्करण की श्लोकसंख्या १४१० है।

सिद्धसार-संहिता की रचना के प्रेरक

नियोगाद् देवगुप्तस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य संहिताम्।
पाण्डुनागं समुद्दिश्य रविगुप्तोऽकरोदिमाम्।।३२।।

ज्येष्ठ भ्राता श्रीदेवगुप्त की आज्ञा से रविगुप्त ने 'पाण्डुनाग' के लिए इस संहिता को रचा है। यहां 'पाण्डुनाग' शब्द का अर्थ विचारणीय है।

।। इति कल्पाध्याय एकत्रिंशत्तमः समाप्तः।।

।। इति रविगुप्त-विरचिता 'सिद्धसार-संहिता' समाप्ता।।

सिद्धसार-निघण्टुः

द्रव्याणां गूढसञ्ज्ञानां सिद्धसार-निषेविणाम्।
वक्ष्यतेऽयं समासेन स्फुटार्थो नामसंग्रहः।।१।।

गूढसञ्ज्ञा (कठिन नाम) वाले 'सिद्धसार-संहिता' में प्रयुक्त द्रव्यों का यह स्फुटार्थक (स्पष्ट अर्थ सहित) नाम-संग्रह किया जा रहा है।

स्थिरा विदारिगन्धा च शालपर्ण्यंशुमत्यपि।
लाङ्गूली कलशी चैव पृष्टपर्णी गुहा स्मृता।।२।।

स्थिरा को विदारीगन्धा, शालपर्णी एवं अंशुमती कहते हैं। लाङ्गूली को कलशी, पृष्टपर्णी एवं गुहा नाम से जाना जाता है।

पुनर्नवाथ वर्षाभूर्वृश्चीवश्च कठिल्यकः।
एरण्डश्चित्रसञ्ज्ञः स्यादामण्डो वर्धमानकः।।३।।

पुनर्नवा ही वर्षाभू, वृश्चीव एवं कठिल्यक नाम से जानी जाती है। एरण्ड को चित्र, आमण्ड एवं वर्धमानक कहते हैं।

झषा नागबला ज्ञेया श्वदंष्ट्रा गोक्षुरो मतः।
शतावरी त्वभीरुः स्यात् पीवरीन्दीवरी वरी।।४।।

झषा नागबला नाम से जानी जाती है। श्वदंष्ट्रा गोक्षुर नाम से प्रसिद्ध है। शतावरी को अभीरु, पीवरी, इन्दीवरी एवं वरी कहते हैं।

व्याघ्रीति बृहती दृष्टा हंसपादी मधुस्रवा।
धावनी कण्टकारी स्यात् क्षुद्रा चैव निदिग्धिका।।५।।

व्याघ्री बृहती नाम से प्रचलित है। हंसपादी मधुस्रवा कहलाती है। धावनी

कण्टकारी कहलाती है, इसे क्षुद्रा और निदिग्धिका भी कहते हैं।

वृश्चिकाली स्मृता काली विषघ्नी सर्पदंष्ट्रिका।
मर्कटी चात्मगुप्ता स्याद् आर्षभी कपिकच्छुका।।६।।

वृश्चिकाली ही काली, विषघ्नी एवं सर्पदंष्ट्रिका नाम से जानी जाती है। मर्कटी (कौंच) आत्मगुप्ता, आर्षभी एवं कपिकच्छुका नाम से प्रसिद्ध है।

मुद्गपर्णी सहा क्षुद्रा माषपर्णी महासहा।
अपरा च सहा ज्ञेया दण्डोत्पलकसञ्ज्ञका।।७।।

मुद्गपर्णी 'क्षुद्रसहा' के रूप में प्रसिद्ध है तथा माषपर्णी 'महासहा' नाम से जानी जाती है। एक अन्य सहा 'दण्डोत्पलक' नाम से प्रसिद्ध है।

न्यग्रोधस्तु वटो ज्ञेयो अश्वत्थः पिप्पलो मतः।
प्लक्षोऽथ गर्दभाण्डः स्यात् स च दृष्टः कपीतनः।।८।।

वट (बड़) को न्यग्रोध कहते हैं तथा पिप्पल (पीपल) को अश्वत्थ कहते हैं। प्लक्ष (पिलखन का वृक्ष) गर्दभाण्ड नाम से जाना जाता है, यही कपीतन नाम से भी प्रसिद्ध है।

पार्थस्तु ककुभो दृष्टो विज्ञेयोऽर्जुननामभिः।
नन्दीवृक्षः प्ररोही स्याच्छश्वत्क्षीरीति चोच्यते।।९।।

ककुभ (अर्जुन) वृक्ष को पार्थ कहते हैं एवं पाण्डुपुत्र अर्जुन के जितने नाम हैं, वे सभी नाम ककुभ वृक्ष के लिए प्रचलित हैं। नन्दीवृक्ष (बेलिया पीपल) ही प्ररोही व शश्वत्क्षीरी कहलाता है।

वञ्जुलो वेतसो दृष्टो भल्लातश्चाप्यरुष्करः।
लोध्रः शाबरको ज्ञेयस्तिरीटश्चेति कीर्तितः।।१०।।

वञ्जुल को वेतस (बेंत) कहते हैं। भल्लातक को अरुष्कर कहते हैं। लोध्र को शाबरक नाम से जाना जाता है, इसे ही तिरीट भी कहते हैं।

बृहत्फला महाजम्बूर्ज्ञेया स्वल्पफलापरा।
तृतीया जलजम्बूः स्यान्नादेयी सा च कीर्तिता।।११।।

बड़े फल वाले जामुन को बृहत्फला एवं महाजम्बू नाम से जाना जाता है। छोटे फल वाले जामुन के वृक्ष को स्वल्पफला कहते हैं। इसका तीसरा भेद 'जलजम्बू' है, इस तीसरे भेद को नादेयी नाम से भी जाना जाता है।

कणा कृष्णोपकुल्या च शौण्डी मागधिकेति च।
कथिता पिप्पली ज्ञेया तन्मूलं ग्रन्थिकः स्मृतः।।१२।।

कणा, कृष्णा, उपकुल्या, शौण्डी, मागधिका- इन सभी नामों से पिप्पली का निर्देश किया जाता है। पिप्पलीमूल को ग्रन्थिक कहते हैं।

ऊषणं मरिचं ज्ञेयं शुण्ठी विश्वं महौषधम्।
व्योषं कटुत्रयं विद्यात् त्र्यूषणं तच्च कथ्यते।।१३।।

ऊषण नाम से मरिच (कालीमिर्च) जानी जाती है। शुण्ठी को विश्व एवं महौषध नाम से जाना जाता है। कालीमिर्च, सोंठ एवं पीपल की सम मात्रा से बने चूर्ण को व्योष, त्रिकटु, कटुत्रय एवं त्र्यूषण नाम से जाना जाता है।

नाकुली चापि काकोली श्रेयसी गजपिप्पली।
त्रायन्ती त्रायमाणा स्याद् रास्ना वसुवहा स्मृता।।१४।।

नाकुली को काकोली नाम से भी जाना जाता है। (जीवनीय गण वाली काकोली इससे भिन्न है, उसका वर्णन आगे किया जाएगा)। गजपिप्पली को श्रेयसी कहते हैं। त्रायन्ती को ही त्रायमाणा कहते हैं। रास्ना वसुवहा नाम से जानी जाती है।

चित्रको ज्वलनो वह्निरग्निसञ्ज्ञाभिरुच्यते।
षड्ग्रन्थोग्रा वचा ज्ञेया श्वेता हेमवतीति सा।।१५।।

चित्रक को ज्वलन, वह्नि एवं अग्नि इत्यादि सभी अग्निवाची शब्दों द्वारा

निर्दिष्ट किया जाता है। वचा को षड्ग्रन्था एवं उग्रा कहते हैं। वचा का दूसरा भेद 'श्वेता' एवं 'हेमवती' नाम से जाना जाता है।

कुटजो वृक्षको दृष्टो वत्सको गिरिमल्लिका।
कलिङ्गेन्द्रयवाह्वानि तस्य बीजानि लक्षयेत्।।१६।।

कुटज को वृक्षक, वत्सक एवं गिरिमल्लिका नाम से जाना जाता है। इसके बीज कलिङ्ग एवं इन्द्रयव नाम से जाने जाते हैं।

मुस्तको मेघनामा च कौन्ती ज्ञेया हरेणुका।
एला च स्थूला बहला पृथ्वीका द्राविडी त्रुटिः।।१७।।

मुस्तक (नागरमोथा) मेघ नाम से जाना जाता है। मेघ (बादल) के जितने पर्यायवाची हैं, वे सभी मुस्तक के लिए प्रयुक्त होते हैं। हरेणुका को कौन्ती कहते हैं। बड़ी इलायची को एला, स्थूला, बहला एवं पृथ्वीका कहते हैं। छोटी इलायची (सूक्ष्मैला) को द्राविडी एवं त्रुटि कहते हैं।

पद्मा भार्गी तथा फञ्जी ज्ञेया ब्राह्मणयष्टिका।
मूर्वा मधुरसा प्रोक्ता तेजनी तिक्तवल्कला।।१८।।

पद्मा, भार्गी तथा फञ्जी नाम से ब्राह्मणयष्टिका जानी जाती है। मूर्वा को ही मधुरसा, तेजनी एवं तिक्तवल्कला कहते हैं।

महानिम्बो बृहन्निम्बो दीप्यकः स्याद् यवानिका।
विडङ्गं क्रिमिशत्रुश्च रामठं हिङ्गु गद्यते।।१९।।

बकायन को महानिम्ब एवं बृहन्निम्ब कहते हैं। यवानिका (अजवायन) को दीप्यक कहते हैं। विडङ्ग को कृमिशत्रु कहते हैं तथा हिङ्गु को रामठ कहते हैं।

अजाजी जीरकं ज्ञेयं कारवी चोपकुञ्चिका।
विज्ञेया कटुका तिक्ता तथा कटुकरोहिणी।।२०।।

अजाजी नाम से जीरा प्रसिद्ध है और कारवी नाम से उपकुञ्चिका

(मंगरैल) प्रसिद्ध है। कटुका (कुटकी) तिक्ता तथा कटुकरोहिणी नाम से जानी जाती है।

तगर: स्यान्नतं वक्रं चोच्यं त्वक् तु वरङ्गकः।
उदीच्यं बालकं प्रोक्तं ह्रीवेरं चाम्बुनामभिः।।२१।।

तगर को नत एवं वक्र कहते हैं। त्वक् (दालचीनी) ही चोच्य एवं वरङ्गक कहते हैं। उदीच्य (सुगन्धबाला) को बालक तथा ह्रीवेर नाम से जाना जाता है। आयुर्वेदीय परम्परा में जलवाची शब्द उदीच्य के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

पत्रकं दलमिच्छन्ति तस्कराह्वं च चोरकम्।
हेमभिर्नाम-सञ्ज्ञाभिर्नागकेशर उच्यते।।२२।।

पत्रक (तेजपात) को दल नाम से जानते हैं। चोरक को तस्कर नाम से जानते हैं। हेम (स्वर्ण) के सभी नामों द्वारा नागकेशर को निर्दिष्ट किया जाता है।

अस्रं कुंकुममाख्यातं चण्डा शङ्खिनिका स्मृता।
अयोऽगुरु समुद्दिष्टं जौंगकं लोहनामभिः।।२३।।

कुंकुम को अस्र कहते हैं। शङ्खिनिका को चण्डा कहते हैं। अगरु को 'अय' (लोह) एवं 'जौंगक' कहा जाता है। लोहवाचक सभी शब्द अगुरु के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

चलं तुरुष्कमेवोक्तं दारु स्याद् देवदारु च।
गुच्छं स्थौणेयकं विद्याद् भूतिकं ध्याम-कत्तृणम्।।२४।।

चल को तुरुष्क कहते हैं। दारु को देवदारु कहते हैं। गुच्छ को स्थौणेयक कहते हैं। भूतिक को ध्याम एवं कत्तृण कहते हैं।

कुष्ठमामयमाख्यातं मांसी स्यान्नलदं जटा ।
शुक्तिः शुक्तिनखो शङ्खो व्याघ्रं व्याघ्रनखो मतः।।२५।।

कुष्ठ को आमय नाम से कहा जाता है। मांसी को नलद एवं जटा नाम से बोला जाता है। शुक्ति को शुक्तिनख कहते हैं। शङ्ख को व्याघ्र एवं व्याघ्रनख भी कहते हैं।

पुरं पलङ्कषं विद्यान्माहिषाक्षं च गुग्गुलुः।
रसो गन्धरसो बोलः सर्जः सर्जरसो मतः।।२६।।

गुग्गुलु को पुर, पलङ्कष, एवं माहिषाक्ष कहते हैं। 'रस' ही 'गन्धरस' एवं बोल नाम से जाना जाता है। सर्ज को ही सर्जरस कहते हैं।

कुन्दं कुन्दुरुकं दृष्टं दधि श्रीवासकं मतम्।
प्रियङ्गुः फलिनी श्यामा गौरी कान्तेति चोच्यते।।२७।।

कुन्द ही कुन्दुरुक, श्रीवासक एवं दधि नाम से जाना जाता है। प्रियङ्गु को फलिनी, श्यामा, गौरी एवं कान्ता नाम से कहा जाता है। कान्ता (स्त्री) के सभी पर्यायवाची शब्द प्रियङ्गु के लिए प्रयुक्त होते हैं।

स्यादार्त्तगलनामा च भीषणो बहुकण्टकः।
सैरीयकः सहचरो द्वितीयो बाणसञ्ज्ञकः।।२८।।

आर्त्तगल को भीषणा एवं बहुकण्टक नाम से जाना जाता है। सैरीयक को सहचर कहते हैं, इसी का दूसरा भेद 'बाण' नाम से जाना जाता है।

करञ्जो नक्तमालः स्यात् पूतीकश्चिरबिल्वकः।
शिग्रुः शोभाञ्जनो ज्ञेयस्तर्कारी च जया स्मृता।।२९।।

करञ्ज को नक्तमाल कहते हैं और पूतीक को चिरबिल्वक कहते हैं। शोभाञ्जन ही शिग्रु नाम से प्रसिद्ध है तथा तर्कारी (क्षुद्र अरणि) जया नाम से जानी जाती है।

मोरटः पीलुपर्णी च बिम्बी स्यात् तुण्डिकेरिका।
मदनो रामठो राठो घोण्टा घोण्टीति कथ्यते।।३०।।

पीलुपर्णी मोरट नाम से जानी जाती है। बिम्बी को तुण्डिकेरिका कहते हैं। मदन (मैनफल) रामठ, राठ, घोण्टा एवं घोण्टी नामों से जाना जाता है।

चतुरङ्गुलः शम्याको व्याधिघाताभिधानकः।
विद्यादारग्वधं राजवृक्षारेवतसञ्ज्ञकम् ।।३१।।

चतुरङ्गुल (अमलतास) शम्याक, व्याधिघात, आरग्वध, राजवृक्ष एवं आरेवत नामों से जाना जाता है।

शार्ङ्गेष्टा काकतिक्ता स्यात् कण्टकी च विकङ्कतः।
निम्बोऽरिष्टः समाख्यातः पटोलं कुलकं विदुः।।३२।।

काकतिक्ता को शार्ङ्गेष्टा कहते हैं। विकङ्कत को कण्टकी कहते हैं। निम्ब अरिष्ट नाम से प्रसिद्ध है। पटोल को कुलक कहते हैं। यह सामान्य कथन है, वस्तुतः पटोल तो परवल के रूप में प्रसिद्ध है तथा 'कुलक' कड़वा परवल होता है।

वयस्था च विशल्या च छिन्ना छिन्नरुहा मता।
वत्सादन्यामृता चेति गुडूच्या नामसङ्ग्रहः।।३३।।

गुडूची (गिलोय) के नामों का संग्रह इस प्रकार है- गुडूची, वयस्था, विशल्या, छिन्ना, छिन्नरुहा, वत्सादनी एवं अमृता।

किराततिक्तको ज्ञेयो भूनिम्बः कटुतिक्तकः।
पाठाम्बष्ठा स्मृता चैव प्राचीना चैलिकेति च।।३४।।

किराततिक्तक (चिरायता) भूनिम्ब एवं कटुतिक्तक नाम से जाना जाता है। पाठा को अम्बष्ठा, प्राचीना एवं चैलिका कहते हैं।

सुषवी तोयवल्ली स्याद् रम्भा च कदली मता।
प्लवं कुटुन्नटं विद्याद् वन्यं च परिपेलवम्।।३५।।

तोयवल्ली (कारवल्ली/करेला) को सुषवी कहते हैं। कदली को

रम्भा कहते हैं। प्लव को कुटुन्नट कहते हैं तथा इसी की वन्य प्रजाति को 'परिपेलव' कहते हैं।

काश्मरी कट्फला ज्ञेया श्रीपर्णी चेति कीर्त्तिता।
शल्लकी गजभक्ष्या च सैव ज्ञेया <u>वसुस्रवा</u>।।३६।।

काश्मरी (गम्भारी) कट्फला नाम से जानी जाती है। इसे ही श्रीपर्णी भी कहते हैं। शल्लकी को गजभक्ष्या कहते हैं तथा इसे ही <u>वसुस्रवा</u> नाम से भी जाना जाता है।

धात्री चामलकी ज्ञेया अक्षं चैव विभीतकम्।
पथ्याभया च विज्ञेया पूतना च हरीतकी।।३७।।

आमलकी को धात्री कहते हैं तथा विभीतक (बहेड़े) को अक्ष कहते हैं। हरीतकी (हरड़) को पथ्या, अभया एवं पूतना कहते हैं।

त्रिफला फलमेवोक्तं तच्च ज्ञेयं फलत्रयम्।
अरलुर्दीर्घवृन्तश्च कट्वङ्गश्चेति कीर्त्तितः।।३८।।

त्रिफला को फल एवं फलत्रय कहते हैं। अरलु को दीर्घवृन्त एवं कट्वङ्ग भी कहा गया है।

यष्टी यष्ट्याह्वमेवोक्तं मधुकं मधुयष्टिकम्।
धातकी ताम्रपुष्पी स्यात् समङ्गा गण्डकालिका।।३९।।

यष्टी (मुलेठी) यष्ट्याह्व, मधुक एवं मधुयष्टिक नाम से कही गई है। धातकी को ताम्रपुष्पी कहते हैं। समङ्गा (मञ्जिष्ठा) गण्डकालिका नाम से जानी जाती है।

सितं मलयजं शीतं गोशीर्षं श्वेतचन्दनम्।
विद्यात् कुचन्दनं वापि द्वितीयं रक्तचन्दनम्।।४०।।

श्वेतचन्दन 'सित मलयज', 'शीत' एवं 'गोशीर्ष' नाम से जाना जाता

है। दूसरे प्रकार का चन्दन 'कुचन्दन' नाम से जाना जाता है। चन्दन का ही एक अन्य भेद 'रक्तचन्दन' होता है।

काकोली च स्मृता धीरा पयस्या चार्कपुष्पिका।
शृङ्गी च कर्कटशृङ्गी महाघोषा च कीर्त्तिता।।४१।।

काकोली को धीरा, पयस्या एवं अर्कपुष्पिका कहते हैं। शृङ्गी को कर्कटशृङ्गी तथा महाघोषा कहते हैं।

वांशी तुगा तुकाक्षीरी विज्ञेया वंशरोचना।
मृद्वीका च स्मृता द्राक्षा तथा गोस्तनिकेति च।।४२।।

वंशरोचना (वंशलोचन) ही वांशी, तुगा/तुका एवं तुगाक्षीरी नाम से जाना जाता है। मृद्वीका (मुनक्का) द्राक्षा तथा गोस्तनिका नाम से जानी जाती है।

स्यादुशीरं मृणालं च सेव्यं लामज्जकं तथा।
सारिवा गोपवल्ली च भद्रगोपी च कथ्यते।।४३।।

उशीर को मृणाल कहते हैं। सेव्य को लामज्जक कहते हैं। सारिवा को गोपवल्ली एवं भद्रगोपी कहते हैं।

दार्वी कटङ्कटेरी च ज्ञेया दारुनिशेति च।
हरिद्रा रजनी प्रोक्ता पिण्डा वर्णवती निशा।।४४।।

दार्वी (दारुहल्दी) ही कटङ्कटेरी एवं दारुनिशा नाम से जानी जाती है। हरिद्रा (हल्दी) को रजनी, पिण्डा, वर्णवती एवं निशा कहते हैं। निशा (रात्रि) के जितने पर्यायवाची नाम हैं, वे सभी हरिद्रा (हल्दी) के लिए प्रयुक्त होते हैं।

वीरवृक्षो वीरतरुस्तथा वीरतरः स्मृतः।
वृक्षादनी तरुरुहा नीलवल्ली च सा मता।।४५।।

वीरवृक्ष (वेल्लन्तर) को वीरतरु तथा वीरतर कहते हैं। वृक्षादनी को तरुरुहा तथा नीलवल्ली भी कहते हैं।

कपोतवङ्का सञ्ज्ञा च सूर्यभक्ता विधीयते।
टुण्टुको भल्लकश्चैव श्योनाकः परिकीर्त्तितः।।४६।।

सूर्यभक्ता (हुरहुर) ही कपोतवंका व सञ्ज्ञा नाम से जानी जाती है। श्योनाक ही टुण्टुक एवं भल्लक नाम से कहा गया है।

वसुकस्तु बुको ज्ञेयो वसिरः कपिपिप्पली।
पाषाणभेदको दृष्टो ह्यश्मभिच्चाश्मभेदकः।।४७।।

वसुक बुक नाम से जाना जाता है और वसिर को कपिपिप्पली कहते हैं। पाषाणभेदक को अश्मभिद् एवं अश्मभेदक नाम से जाना जाता है।

मुष्कको घण्टको दृष्टो धवश्च श्वेतको मतः।
वज्रवृक्षो महावृक्षः स्नुक् स्नुहीति च पठ्यते।।४८।।

मुष्कक को घण्टक कहते हैं। धव को श्वेतक कहते हैं। वज्रवृक्ष (थूहर का पेड़) स्नुक् एवं स्नुही नाम से जाना जाता है।

शालस्तु शङ्कुवृक्षः स्यात् स्यन्दनस्तिनिशो मतः।
अशनो बीजकं चैव पीतसारो विधीयते ।।४९।।

शाल ही शंकुवृक्ष कहलाता है। तिनिश वृक्ष को स्यन्दन कहते हैं। अशन (असन) वृक्ष को बीजक एवं पीतसार कहते हैं।

कालीयं पीतकाष्ठं स्यात् कवुकः खपुरः स्मृतः।
गायत्री खदिरो ज्ञेयस्तद्भेदः कदरो मतः।।५०।।

कालीय को पीतकाष्ठ कहते हैं। खपुर को कवुक कहते हैं। खदिर गायत्री नाम से प्रसिद्ध है, इसी का एक भेद 'कदर' नाम से जाना जाता है।

इन्दीवरं कुवलयं नीलोत्पलमुदाहृतम्।
सौगन्धिकं च कह्लारमब्जं कमलमुच्यते।।५१।।

इन्दीवर (नीलकमल) ही कुवलय एवं नीलोत्पल नाम से कहा जाता

है। सौगन्धिक नामक कमल 'कह्लार' नाम से जाना जाता है। सामान्य कमल को 'अब्ज' कहते हैं।

अजकर्णो भवेत् सर्जो वाजिकर्णोऽश्वकर्णकः।
श्लेष्मान्तकस्तथा शेलुर्बहुवारश्च कथ्यते ।।५२।।

सर्ज को अजकर्ण, वाजिकर्ण तथा अश्वकर्ण कहते हैं। श्लेष्मान्तक/श्लेष्मातक (लिसोड़े) को शेलु तथा बहुवार कहते हैं।

सुरसा तुलसी कृष्णा कयस्थेति च कथ्यते।
एतैरेव च पर्यायैर्द्वितीया कथिता सिता।।५३।।

तुलसी को सुरसा, कृष्णा एवं कयस्था कहा जाता है। दूसरे प्रकार की तुलसी के भी यही नाम हैं, वह कालापन न होने से रंग में कुछ हल्की होती है। अतएव उसके साथ 'सिता' अथवा 'श्वेता' विशेषण लग जाता है।

कुठेरकोऽर्जकः ख्यातः पर्णासो गन्धपत्रकः।
नीलश्च सिन्धुवारश्च निर्गुण्डीति सगन्धिका।।५४।।

कुठेरक अर्जक नाम से प्रसिद्ध है तथा पर्णास गन्धपत्रक नाम से प्रसिद्ध है। सिन्धुवार ही नील, निर्गुण्डी एवं सगन्धिका नाम से जाना जाता है।

ज्ञेया कपित्थपत्री तु सुरसी कुलजेति च।
अलम्बुसश्च गोच्छालः कुलाहल इति स्मृतः।।५५।।

कपित्थपत्री को सुरसी एवं कुलजा नाम से जाना जाता है। अलम्बुस गोच्छाल एवं कुलाहल नाम से जाना जाता है।

सुगन्धकः कदम्बश्च च्छत्रातिच्छत्रसञ्ज्ञकः।
क्षवकः क्षुवको दृष्टः क्षुद्बिबोधनकस्तथा।।५६।।

कदम्ब वृक्ष ही सुगन्धक एवं छत्र व अतिच्छत्र नाम से जाना जाता है। क्षवक (छिकनी) को ही क्षुवक नाम से जाना जाता है तथा इसे ही

'क्षुद्विबोधनक' भी कहते हैं।

कृष्णार्जकः करालश्च कालमालः प्रकीर्त्तितः।
प्रचीबलो नदीकान्तो निचुलो हिज्जलो मतः।।५७।।

कृष्णार्जक ही कराल एवं कालमाल नाम से जाना जाता है। प्रचीबल, नदीकान्त, निचुल एवं हिज्जल नाम से जाना जाता है।

वायसी काकनासा च काकजङ्घा तथा मता।
ज्ञेया मूषिकपर्णी तु द्रवन्ती चाखुपर्णिका।।५८।।

वायसी ही काकनासा तथा काकजङ्घा नाम से जानी जाती है। मूषकपर्णी को ही द्रवन्ती तथा आखुपर्णिका कहते हैं। इससे अलग द्रवन्ती एक प्रसिद्ध विरेचक ओषधि भी है।

विषमुष्टिश्च तन्त्रज्ञैः केशमुष्टिरुदाहृतः।
किणिही कटभी दृष्टमम्लकं चाम्लवेतसम्।।५९।।

विषमुष्टि ही तन्त्रज्ञों (शास्त्रज्ञों) द्वारा केशमुष्टि कही गई है। किणिही कटभी नाम से जानी जाती है।

अझटा बहुपत्रा च विज्ञेया तामलक्यपि।
परुषं परूषकं दृष्टं क्षीरी राजादनं मतम्।।६०।।

अझटा को बहुपत्रा नाम से जाना जाता है, इसी का एक नाम तामलकी भी है। परुष ही परूषक (फालसा) कहलाता है। क्षीरी (खिरनी) ही राजादन नाम से भी प्रसिद्ध है।

महापत्रः स्मृतः शाकश्चक्षुष्यं कतकं वदेत्।
मसूरविदला श्यामा पालिन्दीति निरुच्यते।।६१।।

महापत्र को शाक (सागौन) कहते हैं। कतक (निर्मली) को चक्षुष्य भी कहते हैं। मसूरविदला ही श्यामा एवं पालिन्दी नाम से कही जाती है।

कण्टकाख्या महाश्यामा वृक्षभार्येति शब्दिता।
विद्याद्दन्तीं निकुम्भाख्यां त्रिभण्डी त्रिपुटी त्रिवृत्।।६२।।

कण्टका ही महाश्यामा एवं वृक्षभार्या नाम से कही जाती है। दन्ती को ही निकुम्भा जानें। त्रिवृत् (निशोथ) को त्रिभण्डी एवं त्रिपुटी नाम से जानें।

सप्तला यवतिक्ता च ज्ञेया चर्मकषेति च।
शङ्खिनी सुकुमाराख्या तिक्तवीर्याक्षिपीलुकः।।६३।।

सप्तला ही यवतिक्ता तथा चर्मकषा नाम से जानी जाती है। शङ्खिनी ही सुकुमारा, तिक्तवीर्या एवं अक्षिपीलुक कहलाती है।

गवाक्षी च स्मृता श्वेता गिरिकर्णी गवादिनी।
तिल्वकः खरलोध्रश्च विज्ञेयो भिल्लकस्तथा।।६४।।

गवाक्षी को ही श्वेता, गिरिकर्णी एवं गवादिनी कहते हैं। तिल्वक को ही खरलोध्र एवं भिल्लक नाम से जानना चाहिए।

कम्पिल्लकोऽथ विज्ञेयो गुण्डारोचनिकेति च।
हेमक्षीरी स्मृता पीतक्षीरी काञ्चनदुग्धिका।।६५।।

कम्पिल्लक (कबीला) को ही गुण्डारोचनिका नाम से जानना चाहिए। हेमक्षीरी (स्वर्णक्षीरी) को पीता, क्षीरी एवं काञ्चनदुग्धिका कहते हैं।

गजचिर्भिटको दृष्टो विशाला चेन्द्रवारुणी।
तार्क्ष्यजं तार्क्ष्यशैलं च रसाञ्जनमुदीरितम्।।६६।।

इन्द्रवारुणी ही विशाला एवं गजचिर्भिटक नाम से जानी जाती है। रसाञ्जन (रसौंत) ही तार्क्ष्यज एवं तार्क्ष्यशैल नाम से कहा गया है।

निर्यासो यस्तु शाल्मल्याः स मोचरससञ्ज्ञकः।
प्रत्यक्पुष्पी खराह्वा च अपामार्गो मयूरकः।।६७।।

शाल्मली वृक्ष का जो निर्यास होता है, वही मोचरस नाम से जाना जाता है। अपामार्ग ही प्रत्यक्पुष्पी, खराह्वा एवं मयूरक नाम से जाना जाता है।

सिंहास्यं वृषं वासाख्यामाटरूषकमादिशेत्।
जीवशाकं तु जीवन्तीं कर्चूरं च शटीं विदुः।।६८।।

वासा नामक ओषधि को ही सिंहास्य, वृष एवं आटरूषक नाम से जानें। जीवन्ती को जीवशाक नाम से जाना जाता है। कर्चूर को ही शटी के रूप में जानते हैं। इसका भाव यह है कि कर्चूर वस्तुतः शटी नहीं है, परन्तु कर्चूर के स्थान पर शटी का प्रयोग होने लगा है, अतः वैद्यजन कर्चूर को ही शटी रूप में जानने लगे हैं। धन्वन्तरि-निघण्टु में भी ऐसा ही कथन उपलब्ध है-

कर्चूरो गन्धमूलश्च द्राविडः कार्श एव च। वेधमुख्यो दुर्लभश्च कस्यचित्सम्मतः शटी।।
(धन्वन्तरिनिघण्टु, चन्दनादिवर्ग-९३)

कट्फलः सोमवल्कः स्यात् सप्तिगन्धाश्वगन्धिका।
शताह्वा शतपुष्पा च मिशी मधुरिका मता।।६९।।

कट्फल को सोमवल्क कहते हैं। अश्वगन्धिका (असगन्ध) ही सप्तिगन्धिका कहलाती है। शताह्वा (सोआ) ही शतपुष्पा कहलाती है। मिशी (सौंफ) ही मधुरिका नाम से जानी जाती है।

ज्ञेयं पुष्करमूलं च पुष्करं पुष्कराह्वयम्।
यासोऽथ धन्वयासश्च दुःस्पर्शा च दुरालभा।।७०।।

पुष्करमूल ही पुष्कर एवं पुष्कराह्वय नाम से जाना जाता है। यास को ही धन्वयास, दुरालभा (धमासा) एवं दुःस्पर्शा कहते हैं।

वाकुची सोमराजीति अवल्गुजमुदाहृतम्।
मार्कवः केशराजश्च भृङ्गराजो निगद्यते।।७१।।

वाकुची (बाकुची) ही सोमराजी एवं अवल्गुज कहलाती है। भृङ्गराज ही मार्कव एवं केशराज नाम से कहा जाता है।

प्रोक्तस्त्वेडगजस्तज्ज्ञैश्चक्रमर्दकसञ्ज्ञकः।
मुरुङ्गी तस्करस्नायुः काकनासाऽथ वायसी।।७२।।

एडगज (पवाड़) ही चक्रमर्द नाम से कहा गया है। मुरुङ्गी को तस्करस्नायु कहते हैं तथा काकनासा को वायसी कहते हैं।

महाकालः स्मृतो वेगस्तण्डुलीयं घनस्वनम्।
इक्ष्वाकुस्तिक्ततुम्बी स्यात् तिक्तालाबु निगद्यते।।७३।।

महाकाल ही 'वेग' नाम से जाना जाता है तथा तण्डुलीय ही घनस्वन कहलाता है। तिक्ततुम्बी (कड़वी तुम्बी) इक्ष्वाकु नाम से जानी जाती है। इसे तिक्तालाबु भी कहते हैं।

धामार्गवोऽथ विज्ञेयः कोषातक्यथ जालिनी।
विद्यात् कोशातकीभेदं कृतवेधनसञ्ज्ञकम्।।७४।।

धामार्गव ही कोषातकी एवं जालिनी नाम से प्रसिद्ध है। कोषातकी का ही एक भेद 'कृतवेधन' (कड़वी तोरी) नाम से जाना जाता है।

तथा जीमूतकाख्यश्च बोद्धव्यो देवताडकः।
गृध्रफला गृध्रनखी हिंस्रा काकादनी मता ।।७५।।

देवताडक ही जीमूत नाम से प्रसिद्ध है। काकादनी ही गृध्रफला, गृध्रनखी एवं हिंस्रा नाम से जानी जाती है।

अश्वारिश्चापि बोद्धव्यो करवीरोऽश्वमारकः।
सिन्धुसैन्धवसिन्धूत्थैर्माणिन्थमुदाहृतम्।।७६।।

करवीर (कनेर) ही अश्वारि एवं अश्वमारक नाम से जानना

चाहिए। माणिमन्थ (सेंधा नमक) ही सिन्धु, सैन्धव एवं सिन्धूत्थ नामों से कहा जाता है।

रुचकं कृष्णलवणं सौवर्चलमुदीरितम्।
क्षारो यवाग्रजश्चैव यवक्षारो विधीयते।।७७।।

कृष्णलवण (काला नमक) ही रुचक एवं सौवर्चल नाम से कहा गया है। यवक्षार ही क्षार एवं यवाग्रज नाम से कहा जाता है।

स्वर्जिका स्वर्जिकाक्षारो द्वितीयः परिकीर्तितः।
ऊषक्षारं तु निःसारमूषमूषकमादिशेत्।।७८।।

यवक्षार के पश्चात् दूसरे स्थान पर स्वर्जिकाक्षार (सज्जीखार) होता है। इसे ही स्वर्जिका भी कहते हैं। ऊषर भूमि का क्षार ऊषक्षार एवं निःसार नाम से जाना जाता है। इसे ही ऊष एवं ऊषक भी कहते हैं।

तुत्थकं शिखिकण्ठाभं वितुन्नकमिति स्मृतम्।
कासीसं धातुकासीसं खेचरं तच्च कीर्तितम्।।७९।।

तुत्थक (तूतिया) को शिखिकण्ठाभ एवं वितुन्नक कहा जाता है। कासीस को धातुकासीस एवं खेचर भी कहते हैं।

द्वितीयं पुष्पकासीसं शीतलं नेत्रभेषजम्।
सौराष्ट्री मृत्तिका काक्षी तुबरी चेति कीर्तिता ।।८०।।

दूसरे प्रकार का कासीस 'पुष्पकासीस' नाम से जाना जाता है। यहीं 'शीतल' एवं 'नेत्रभेषज' नामों से भी जाना जाता है। सौराष्ट्री मृत्तिका (सौराष्ट्र देश की मिट्टी) काक्षी एवं तुबरी नाम से जानी जाती है।

विद्यान्माक्षिकधातुं च ताप्यं तापीसमुत्थितम्।
शिला मनःशिला ज्ञेया नेपाली कुनटीति च।।८१।।

माक्षिक (सोनामाखी) धातु को ताप्य एवं तापीसमुत्थित नाम से जाना जाता है। मन:शिला (मैनसिल) को ही शिला बोलते हैं तथा नेपाली (नेपाल में मिलने वाली मैनसिल) को कुनटी नाम से जाना जाता है।

अलं तत्तालकं चापि हरितालं विनिर्दिशेत्।
गन्धको गन्धपाषाणो रसः पारद उच्यते।।८२।।

हरिताल को ही 'अल' एवं 'तालक' नाम से जानें। गन्धक को गन्धपाषाण कहा जाता है तथा पारद को 'रस' कहा जाता है।

सौवीरमञ्जनं ज्ञेयं गिरिमृद्गैरिकं स्मृतम्।
सुवर्णं हेम निर्दिष्टं रूप्यं रजतमुच्यते।।८३।।

सौवीर ही 'अञ्जन' नाम से जाना जाता है। पर्वत की मृत्तिका (मिट्टी) को गैरिक (गेरू) कहते हैं। सुवर्ण (सोने) को हेम तथा रजत (चाँदी) को रूप्य कहते हैं।

रङ्गं वङ्गं त्रपु ज्ञेयं नागं सीसकमादिशेत्।
ताम्रमौदुम्बरं शुल्बं विद्यान्म्लेच्छमुखं तथा।
अद्रिसारमयस्तीक्ष्णं लोहकं चापि कथ्यते।।८४।।

रङ्ग (रांगा) को वङ्ग एवं त्रपु नाम से जानना चाहिए। सीसक (सीसे) को 'नाग' नाम से जानना चाहिए। ताम्र (ताँबे) को औदुम्बर, शुल्ब एवं म्लेच्छमुख नाम से जानें। लोह को अद्रिसार, अयः, तीक्ष्ण एवं लोहक नाम से कहा जाता है।

सर्पिराज्यं घृतं प्रोक्तं पयः क्षीरं च कथ्यते।
माक्षिकं च मधु क्षौद्रं तच्च पुष्परसं वदेत्।।८५।।

घृत को सर्पि एवं आज्य कहते हैं। दुग्ध को पयः एवं क्षीर कहते हैं। मधु (शहद) को माक्षिक, क्षौद्र एवं पुष्परस नाम से जानें।

ज्येष्ठाम्बु तण्डुलाम्बु स्यात् काञ्जिकं च सुवीरकम्।
सिता सितोपला चैव मत्स्यण्डी शर्करा स्मृता।।८६।।

तण्डुलाम्बु को ज्येष्ठाम्बु कहते हैं तथा सुवीरक को काञ्जिक कहते हैं। सिता, सितोपला एवं मत्स्यण्डी- ये शर्करा के पर्यायवाची हैं।

त्वगेलापत्रकैस्तुल्यैस्त्रिसुगन्धं त्रिजातकम्।
नागकेशर-संयुक्तं चातुर्जातकमुच्यते ।।८७।।

त्वक् (दालचीनी), एला (इलायची) एवं पत्रक (तेजपात)- इन तीनों को समान मात्रा में मिलाने से त्रिसुगन्ध या त्रिजातक कहलाता है। त्रिजातक में नागकेशर को मिलाने पर 'चतुर्जातक' बनता है।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यं चित्रकनागरम्।
कथितास्तन्त्रकुशलैः पञ्चकोलकसञ्ज्ञकाः।।८८।।

पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक एवं शुण्ठी का समान मात्रा में मिश्रण शास्त्रज्ञों द्वारा 'पञ्चकोल' नाम से कहा जाता है।

भतृलागो महाशालिर्नीवारो वालिका स्मृता।
प्रियङ्गुः कङ्गुका ज्ञेया कोरदूषश्च कोद्रवः।।८९।।

महाशालि ही भतृलाग कहलाता है। नीवार धान्य 'वालिका' नाम से जाना जाता है। प्रियङ्गु ही कङ्गुका नाम से जानी जाती है। कोद्रव धान्य ही कोरदूष नाम से प्रसिद्ध है।

त्रिपुटः पुटसञ्ज्ञश्च कलायो लङ्गको मतः।
सतीनो वर्तुलश्चैव हरेणुश्चापि कीर्तितः।।९०।।

त्रिपुट (खेसारी) ही पुट, कलाय एवं लङ्गक (लङ्कक/लाँक) नाम से जाना जाता है। सतीन (मटर) को ही वर्तुल एवं हरेणु कहा जाता है।

मान (तोल) का विवरण

पिचुः पाणितलं चाक्षं बिडालपदकं तथा।
विद्यात्कर्षं तथा चापि सुवर्णं कवलग्रहम्।।९१।।

'पिचु' को 'पाणितल', 'अक्ष' अथवा 'बिडालपदक' कहते हैं। इसे ही 'कर्ष', 'सुवर्ण' या 'कवलग्रह' भी कहते हैं- अर्थात् ये सभी शब्द पर्यायवाची हैं। इस ग्रन्थ में 'अक्ष', 'बिडालपदक' एवं 'कर्ष'- इन शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। 'पल' को ही 'प्रकुञ्च' एवं 'बिल्व' नाम से भी जाना जाता है।

पलार्धं शुक्तिमिच्छन्ति तथा चाष्टमिकामिति।
अष्टमानं पलान्यष्टौ तच्च मानीति गद्यते।।९२।।

विद्वान् लोग पलार्ध (आधे पल) को 'शुक्ति' कहते हैं। 'पलार्ध/शुक्ति' में दो कर्ष होते हैं। आठ पल को 'अष्टमिका' या 'अष्टमान' कहते हैं। इसे ही 'मानी' भी कहा जाता है।

चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः प्रस्थाश्चत्वार आढकः।
कंसं पात्रं च सम्प्रोक्तं तुला च शतमुच्यते।।९३।।

चार 'कुडव 'से एक प्रस्थ बनता है। चार 'प्रस्थ' से एक 'आढक' बनता है। आढक को ही 'कंस' या 'पात्र' कहते हैं। 'तुला' नामक मान को 'शत' भी कहते हैं। तुला/शत में १०० पल होते हैं।

सूचना- इन मानों का आधुनिक मानों (माप-तौल) के साथ तुलनात्मक विवरण परिशिष्ट- ४. में देखें।

मानमेवंविधं दृष्टं शुष्कद्रव्येषु पण्डितैः।
द्रवद्रव्येषु चार्द्रेषु द्विगुणं तत् प्रकीर्त्तितम्।।९४।।

पण्डितों ने शुष्कद्रव्यों में इस प्रकार का मान बताया है। द्रव (तरल) और आर्द्र (गीले) औषध-द्रव्यों में इसका द्विगुण मान लेना चाहिए।

नानादेशाभिधानत्वाद् दुष्करो द्रव्यनिर्णयः।
तथापि धाष्टर्यमुद्धूय मयेयं दिक्प्रदर्शिता।।९५।।

नाना देशों में अनेक नाम होने के कारण द्रव्यों का निर्णय करना बहुत दुष्कर (कठिन) है, तथापि धृष्टता (साहसिकता) करते हुए मैंने (रविगुप्त ने) दिग्दर्शन रूप में इनका वर्णन किया है।

।। इति सिद्धसारसंहिताया निघण्टुः परिसमाप्तः ।।

परिशिष्ट- १.

हस्तलिखित ग्रन्थ परिचय

'सिद्धसार-संहिता' की सर्वाधिक चार हस्तलिखित प्रतिलिपियां नेपाल के काठमाण्डौ स्थित 'राष्ट्रिय अभिलेखागार' में उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ बहुत प्राचीन हैं। एक प्रतिलिपि पाटन (गुजरात) में संवत्- ११७१ वि. (१११४ ई.) में लिखी गई थी। नेपाल में सुरक्षित पाण्डुलिपियों के आधार पर ही 'सिद्धसार-संहिता' प्रकाश में आ पाई है। प्रस्तुत संस्करण के लिए आधारभूत मातृका (हस्तलेख) के रूप में स्वीकृत 'सिद्धसार-संहिता' ग्रन्थ की संख्या नेपाल के राष्ट्रिय अभिलेखागार के अनुसार ७२४६ है, इसमें ७६ पत्र हैं। इसके अन्त में 'सिद्धसार-निघण्टु' भी उपलब्ध है। यहां इसके कपितय पत्रों की प्रतिकृति प्रस्तुत की जा रही है।

सिद्धसार-संहिता व सिद्धसार-निघण्टु की श्लोकसंख्या

१.	६०	९.	४४	१७.	२०	२५.	२४
२.	५१	१०.	४०	१८.	३३	२६.	१०७
३.	८०	११.	२४	१९.	२३	२७.	४९
४.	३६	१२.	४६	२०.	१९	२८.	२४
५.	१४२	१३.	५२	२१.	३३	२९.	५२
६.	७९	१४.	२३	२२.	१६	३०.	५०
७.	३६	१५.	२४	२३.	१७	३१.	३२
८.	३६	१६.	१९	२४.	२४	योग-	१३१५

सिद्धसारनिघण्टु-गत श्लोक- ९५+१३१५= १४१०

श्रीराष्ट्रिय अभिलेखागार, काठमाण्डौ, नेपाल से प्राप्त हस्तलेख (संख्या 7246) के आरम्भिक पत्र

श्रीराष्ट्रिय अभिलेखागार, काठमाण्डौ, नेपाल से प्राप्त हस्तलेख (संख्या 7246) के अंतिम पत्र

परिशिष्ट- २.

सिद्धसार-संहिता के कतिपय स्मरणीय सुभाषित

चिकित्सापूर्व समीक्षा

देश-काल-वयो-वह्नि-सात्म्य-प्रकृति-भेषजम्।
देह-सत्त्व-बल-व्याधीन् दृष्ट्वा कर्म समारभेत्।।१।।

(सिद्धसारसंहिता- १.३१)

चिकित्सक को चाहिए कि रोगी के देश, काल, अवस्था, वह्नि (पाचन-क्षमता), सात्म्य, प्रकृति, भेषज, देह, सत्त्व, बल एवं व्याधि की स्थिति को देखकर चिकित्सा कर्म प्रारम्भ करे।

अजीर्ण- सब रोगों का मूल

प्रभवः सर्वरोगाणामजीर्णं वह्निसादनम्।
आमाम्लरसविष्टब्धलक्षणं तच्चतुर्विधम्।।२।।

(सिद्धसारसंहिता- १.४६)

अजीर्ण सब रोगों का उद्‌गम कारण होता है, क्योंकि यह जठराग्नि को नष्ट कर देता है। अजीर्ण के चार भेद होते हैं- आमाजीर्ण, अम्लाजीर्ण, रसाजीर्ण एवं विष्टब्धाजीर्ण। जिह्वा पर संयम रखने वाला मितभोजी व्यक्ति ही अजीर्ण से बचकर रोगों से मुक्त रह सकता है।

अहिताशन से सब रोगों का उद्भव

अहिताशन-सम्पर्कात् सर्वरोगोद्भवो यतः।
तस्मात्तदहितं त्याज्यं न्याय्यं पथ्यनिषेवणम्।।३।।

(सिद्धसारसंहिता- १.५१)

क्योंकि अहिताशन (अहितकर भोजन) करने से ही सब रोग पैदा होते हैं; अतः उसे छोड़ देना चाहिए तथा हितकर एवं मित भोजन करना चाहिए। ऐसा करने से व्यक्ति रोगों से बचा रहता है तथा चिकित्सा की नौबत ही नहीं आती है।

चिकित्सा में अन्नपान-विषयक ज्ञान का महत्त्व

अन्नपानानि यो युक्त्या योजयत्यागमाश्रयात् ।
भिषक् स्वस्थातुरेषूच्चैः स लोके लभते यशः ।।४।।

(सिद्धसारसंहिता- ३.८०)

जो वैद्य शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक स्वस्थ व आतुरजनों (रोगियों) को अन्नपान का प्रयोग कराता है, वह चिकित्सा में सफल होकर इस लोक में उन्नत यश प्राप्त करता है। भाव यह है कि उचित अन्नपान ही स्वस्थ की स्वास्थ्य-रक्षा एवं रोगी के रोग-निवारण का मुख्य कारण होता है। अतः आयुर्वेदप्रोक्त अन्नपानविधि की जानकारी परमावश्यक है।

अरिष्टज्ञान की आवश्यकता

एवं परीक्ष्य यत्नेन यः कुर्यात् कर्म निश्चितम्।
स बिभर्ति यशोमालामम्लानां साधुसंसदि।। ५।।

(सिद्धसारसंहिता- ४.३६

इस प्रकार के निमित्तों से रोगी की आयु-परीक्षा करने के उपरान्त जो वैद्य चिकित्सा का निर्णय लेता है, वहीं सज्जनों के समूह में अम्लान (उज्ज्वल) यशोमाला के धारण करता है, अर्थात् चिकित्सा में सफल होकर यशस्वी बनता है।

ज्वर में अपथ्य

गुर्वन्नं शीतलं वारि दिवास्वप्नं श्रमं त्यजेत्।
ज्वरितस्तद्विमुक्तश्च यत्नेनाबललाभतः।।६।।

(सिद्धसारसंहिता- ५.१३९)

ज्वरग्रस्त व्यक्ति को गुरु (पचने में भारी/गरिष्ठ) अन्न, शीतल जल, दिवा-शयन एवं श्रम से दूर रहना चाहिए। ज्वरमुक्त व्यक्ति भी तब तक इनसे दूर ही रहे, जब तक पूर्ववत् बल-सम्पन्न न हो जाए।

....

परिशिष्ट- ३.

आयुर्वेदीय शब्दावली- पारिभाषिक शब्द

आयुर्वेद- आयुरस्मिन् विद्यते, अनेन वाऽयुर्विन्दन्ति' इत्यायुर्वेदः।
(सु. सू.- 1.15)
जिसमें आयु (जीवन) को स्वस्थ रखने के विषय में विचार किया जाता है तथा जिसके द्वारा स्वस्थ जीवन को प्राप्त किया जा सकता है, उसे आयुर्वेद कहते हैं।

षड्रस- मधुर-अम्ल-लवण-कटु-तिक्त-कषायाः। (च. सू.- 26.9)
मधुर, अम्ल (खट्टा), लवण (नमकीन), तिक्त (कड़वा- नीम जैसा), कटु (चरपरा- मिर्च जैसा), कषाय (कसैला- बबूल के पत्ते जैसा) ये छः रस होते हैं।

गण्डूष- असंचारी मुखे पूर्णे गण्डूषः (शा. सं. उ. ख.- 10.4)
पानी व तेल आदि स्नेह को मुँह में पूर्ण रूप से इतना भर लेना कि गण्ड (गाल) फूल जाएं और उसे घुमाया ही न जा सके, इसे गण्डूष कहते हैं।

कवल- कवलश्चरः। (शा. सं. उ. ख.- 10.4)
पानी व तेल आदि स्नेह को मुख में इतना भरना कि उसे आराम से घुमाया जा सके, इसे कवल (कुल्ला) कहते हैं।

दोष- दूषयन्तीति दोषाः।
जो शरीरगत धातुओं को दूषित करें, उन्हें दोष कहते हैं।

त्रिदोष- वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः। (अ. हृ. सू.- 1.6)
वात, पित्त तथा कफ, ये तीन दोष होते हैं।

वात- वातीति वातः (सु. सू.- 21.5, डल्हणटीका)
शरीर में गति, ज्ञान (चेतनासंचार) करने वाले को 'वात' कहते हैं। यह शरीर में होने वाली समस्त क्रियाओं का संचालक तथा जीवनशक्ति (प्राण) है।

वातल- वातवर्द्धक पदार्थ वातल कहलाते हैं।

पित्त- तपतीति पित्तम् (सु. सू.- 21.5, डल्हणटीका)
पित्त संतापक होता है, यह अग्नि का रूप है। शरीर की उष्णता

बनाये रखना व भोजनपाक आदि इसके विविध कर्म हैं।

पित्तल- पित्तवर्द्धक पदार्थ पित्तल कहलाते हैं।

कफ- शिलष्यतीति श्लेष्मा (सु. सू.- 21.5, डल्हणटीका)
जो संश्लिष्ट होता है, उसे श्लेष्मा (कफ) कहते है। इसका कर्म संश्लेषण है, यह संधियों को जोड़े रखता है और शरीरसंघात (देह का गठन) बनाए रखता है।
केन जलेन फलति इति कफः (हलायुकोष-व्याख्या पृ. 200)
संस्कृत में जल को 'क' कहते हैं, जो 'क' अर्थात् जल से 'फ' अर्थात् फलता है, उसे कफ कहते हैं।

धातु- त एते शरीरधारणात् धातवः इत्युच्यन्ते। (सु. सू.- 14.20)
शरीर को धारण करने के कारण रस रक्त आदि 'धातु' कहलाते हैं।

रस- रस्यते आस्वाद्यते रसनेन इति रसः।
रसना द्वारा जिसका रसन (आस्वादन) होता है, उसे रस कहते हैं।

मल- मलिनीकरणादाहारमलत्वान्मलाः। (अ. सं. सू.- 20)
मला मूत्रशकृत्स्वेदादयोऽपि च। (अ. हृ. सू.- 1.13)
जो (समय से अधिक रुक जाने पर) शरीर को मलिन करे, वह मल कहलाता है। मूत्र, पुरीष, स्वेद आदि मल हैं।

पुरीष- अन्नाद्यः किट्टांशस्ततो मूत्रपुरीषे भवतो वायुश्च।
(च. सू.- 28.14)
आहार-पाचन के पश्चात् निर्मित सार रहित किट्ट (घन) अंश पुरीष होता है।

मूत्र- अन्नाद्यः किट्टांशस्ततो मूत्रपुरीषे भवतो वायुश्च।
(च. सू.- 28.14)
आहार-पाचन के पश्चात् निर्मित सार रहित द्रव अंश मूत्र कहलाता है।

स्वेद- मलः स्वेदस्तु मेदसः। (च. चि.- 15.18)
मेद धातु का मल स्वेद है। यह शरीर में क्लिन्नता (गीलापन) तथा त्वचा में आर्द्रता (नमी) करता है।

जठराग्नि- भोजन का पाचन करने वाली उदर-स्थित अग्नि जठराग्नि कहलाती है।

कोष्ठ- आयुर्वेद में उदर (पेट) को कोष्ठ कहते हैं।

आम- जठरानलदौर्बल्यादविपक्वस्तु यो रसः। (च. चि.- 15.44)
जठराग्नि की दुर्बलता से जो अपक्व (बिना पचा) अन्नरस होता है, उसे 'आम' कहते हैं।

स्रोत- स्रोतांसि खलु परिणाममापद्यमानानां धातूनामभिवाहीनि भवन्त्ययनार्थेन। (च. वि.- 5.3)
आकाशीयावकाशानां देहे नामानि देहिनाम्।
सिराः स्रोतांसि मार्गाः खं धमन्यो नाड्य आशयाः।
शरीर में फैले हुए आकाश महाभूत की प्रधानता वाले अन्दर से सछिद्र (पोले) शरीर के अवयव, जो उत्तरोत्तर परिवर्तनशील धातुओं, दोषों, अन्न, मलों तथा जल इत्यादि का स्रवण या अभिवहन करते हैं, वे स्रोत कहलाते हैं।

गुण- समवायि तु निश्चेष्टः कारणं गुणः। (च. सू- 1.57)
जो समवाय सम्बन्ध (नित्य सम्बन्ध) से द्रव्य में आश्रित हो तथा कर्मरहित हो, वह गुण होता है।

वीर्य- द्रव्याणि हि द्रव्यप्रभावाद् गुणप्रभावाद् द्रव्यगुणप्रभावाच्च तस्मिंस्तस्मिन् काले तत्तदधिकरणमासाद्य तां तां च युक्तिमर्थं च तं तमभिप्रेत्य यत्कुर्वन्ति तत्कर्म, येन कुर्वन्ति तद् वीर्यम्।
(च. सू.- 26.13)
द्रव्य अपने प्रभाव से, अपने गुण के प्रभाव से एवं द्रव्य तथा गुण, इन दोनों के प्रभाव से काल, आधार और युक्ति के आश्रय से जिसे करते हैं, वह कर्म तथा जिस शक्ति से करते हैं, वह वीर्य होता है।

विपाक- जठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम्।
रसानां परिणामन्ते स विपाक इति स्मृतः।। (अ. हृ. सू.- 9.20)
मधुर आदि रसों के सेवन के उपरान्त आहार पथ में जठराग्नि द्वारा पाचन होने पर जो रसविशेष उत्पन्न होता है, वह विपाक कहलाता है।

प्रभाव- प्रभवति सामर्थ्यविशिष्टं भवति द्रव्यमनेनेति प्रभावः।
जिसके द्वारा द्रव्य विशिष्ट सामर्थ्य को प्राप्त करता है, उसे द्रव्य का प्रभाव कहते हैं।
विशेषः कर्मणां चैव प्रभावस्तस्य स स्मृतः।। (च. सू.- 26.27)

जिस शक्ति से द्रव्य में विशिष्ट कर्मसामर्थ्य होता है, उसे प्रभाव कहते हैं।

कर्म- क्रियते इति कर्म।
जो किया जाए, उसे कर्म कहते है।
संयोगे च विभागे च कारणं द्रव्यमाश्रितम्। (च. सू.- 1.52)
जो संयोग तथा विभाग में कारण हो तथा द्रव्य में आश्रित हो उसे कर्म कहते हैं।

अनुपान- अन्नादनु पश्चात् पीयत इत्यनुपानम्। (सु. सू.- 46.419)
भोजन के पश्चात् जो छाछ, दूध या रस आदि पिया जाता है, उसे अनुपान कहते हैं।
औषधभक्षणोपरि यत्पीतं तदनुपानमित्यर्थः।
(शा. स. म. ख.- 6.4-5)
औषधसेवन के ऊपर जो पिया जाता है, उसे भी अनुपान कहते हैं।

पथ्य- शरीर के लिये हितकर आहार-विहार पथ्य कहलाता है।

अपथ्य- शरीर के लिये अहितकर आहार-विहार अपथ्य कहलाता है।

प्रकृति- तत्र प्रकृतिरुच्यते स्वभावो यः, स पुनराहारौषधद्रव्याणां स्वाभाविको गुर्वादिगुणयोगः तद्यथा- माषमुद्गयोः। (च. वि.- 1.21.1)
स्वभाव को प्रकृति कहते हैं। यह स्वभाव आहार व औषध द्रव्यों का गुरु आदि स्वाभाविक गुण होता है। जैसे उड़द और मूंग का क्रमशः गुरु और लघु गुण उसका स्वभाव (प्रकृति) है।

व्याधि- शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकारों व दुःखों को व्याधि कहते हैं।
विविधं दुःखमादधतीति व्याधयः (डल्हण)
विविध प्रकार के दुःखों का जो आधान (शरीर में प्रवेश) करा दें, वे व्याधियाँ कहलाती हैं।

सात्म्य- सात्म्यं नाम यद् यदात्मन्युपशेते। (च. वि.- 1.20)
जो शरीर के लिए अनुकूल होता है, उसे सात्म्य कहते हैं।

असात्म्य- जो शरीर के लिए प्रतिकूल होता है, उसे असात्म्य कहते हैं।

शीतवीर्य- शीतपिच्छिलावम्बुगुणभूयिष्ठौ (सू. सू.- 41.11)
ठण्डी तासीर वाला द्रव्य शीतवीर्य होता है। शीतवीर्य द्रव्य में जल महाभूत की प्रधानता होती है।

उष्णवीर्य- तीक्ष्णोष्णावाग्नेयौ (सू. सू.- 41.11)
गर्म तासीर वाला द्रव्य उष्णवीर्य कहा जाता है। अग्नि महाभूत के उत्कर्ष से उष्णवीर्य की निष्पत्ति होती है, अतः उष्णवीर्य द्रव्य में अग्नि महाभूत प्रधान होता है।

आयुर्वेदीय शब्दावली- बीस गुण

गुरु - **द्रव्यस्य बृंहणे कर्मणि शक्तिः गुरुः।**
द्रव्य की बृंहण कर्म में जो शक्ति होती है, उसे 'गुरु' गुण कहते हैं। 'बृंहण' का अर्थ बढ़ाना या भारी करना है।

लघु - **द्रव्यस्य लंघने कर्मणि शक्तिः लघुः।**
द्रव्य की लघुता करने में जो शक्ति होती है, उसे 'लघु' गुण कहते हैं।

शीत- **द्रव्यस्य स्तम्भने कर्मणि शक्तिः शीतः।**
द्रव्य की स्तम्भन (जडीकरण) में जो शक्ति होती है, उसे 'शीत' गुण कहते हैं।

उष्ण- **द्रव्यस्य स्वेदने कर्मणि शक्तिः उष्णः।**
द्रव्य की शरीर में स्वेदन करने (पसीना लाने) की जो शक्ति होती है, उसे 'उष्ण' गुण कहते हैं।

स्निग्ध- **द्रव्यस्य क्लेदने कर्मणि शक्तिः स्निग्धः।**
द्रव्य की क्लेदन (शरीर को स्निग्ध/मृदु करने) में जो शक्ति होती है, उसे 'स्निग्ध' गुण कहते हैं।

रूक्ष- **द्रव्यस्य शोषणे कर्मणि शक्तिः रूक्षः।**
द्रव्य की शरीर में रूक्षता व शुष्कता उत्पन्न करने की जो शक्ति है, उसे 'रूक्ष' कहते हैं।

मन्द- **द्रव्यस्य शमने कर्मणि शक्तिः मन्दः।**

द्रव्य की शमन (विषम दोषों को शान्त करने) में जो शक्ति होती है, उसे 'मन्द' गुण कहते हैं।

तीक्ष्ण- **द्रव्यस्य शोधने कर्मणि शक्ति तीक्ष्णः।**
द्रव्य की दोषों के शोधन में जो शक्ति होती है, उसे 'तीक्ष्ण' गुण कहते हैं।

स्थिर- **द्रव्यस्य धारणे कर्मणि शक्तिः स्थिरः।**
द्रव्य की धातुओं को धारण करने की जो शक्ति होती है, उसे 'स्थिर' गुण कहते हैं।

मृदु- **द्रव्यस्य श्लथने कर्मणि शक्तिः मृदुः।**
द्रव्य की अवयवों को शिथिल करने (ढीला करने) की जो शक्ति होती है, उसे 'मृदु' गुण कहते हैं।

कठिन- **द्रव्यस्य दृढीकरणे शक्तिः कठिनः।**
द्रव्य की दृढीकरण की जो शक्ति होती है, उसे 'कठिन' गुण कहते हैं।

विशद- **द्रव्यस्य क्षालने कर्मणि शक्तिः विशदः।**
द्रव्य की क्षालन (पिच्छिलता/चिपचिपाहट को नष्ट करने) में जो शक्ति होती है, उसे 'विशद' गुण कहते हैं।

पिच्छिल- **द्रव्यस्य लेपने कर्मणि शक्तिः पिच्छिलः।**
द्रव्य की लेपन (अवयवों के संयोजन) में जो शक्ति होती है, उसे 'पिच्छिल' गुण कहते हैं।

श्लक्ष्ण- **द्रव्यस्य रोपणे कर्मणि शक्तिः श्लक्ष्णः।**
द्रव्य की शरीर में रोपण/भराव करने (घाव भरने) की जो शक्ति होती है, उसे 'श्लक्ष्ण' गुण कहते हैं।

खर- **द्रव्यस्य लेखने कर्मणि शक्तिः खरः।**
द्रव्य की शरीर के लेखन अर्थात् कृश करने में जो

शक्ति होती है, उसे 'खर' गुण कहते हैं।

सूक्ष्म- **द्रव्यस्य विसरणे कर्मणि शक्तिः सूक्ष्मः।**
द्रव्य की समस्त स्रोतों में गति करने, प्रविष्ट होने की जो शक्ति है, उसे 'सूक्ष्म' गुण कहते हैं।

स्थूल- **द्रव्यस्य संवरणे कर्मणि शक्तिः स्थूलः।**
द्रव्य की संवरण करने में अर्थात् स्रोतों का अवरोध करने में जो शक्ति है, उसे 'स्थूल' गुण कहते हैं।

सान्द्र- **द्रव्यस्य प्रसादने कर्मणि शक्तिः सान्द्रः।**
द्रव्य की धातु इत्यादि का प्रसादन करने में जो शक्ति होती है, उसे 'सान्द्र' गुण कहते हैं।

द्रव- **द्रव्यस्य विलोडने कर्मणि शक्तिः द्रवः।**
द्रव्य की विलोडन करने (बिलोने) की जो शक्ति होती है, उसे 'द्रव' गुण कहते हैं।

-(अष्टांगहृदय, सूत्रस्थान- १.१८, हेमाद्रि-टीका

आयुर्वेदीय शब्दावली- द्रव्यगुणवाचक शब्द

(आयुर्वेद में वर्णित विशिष्ट गुणों वाले द्रव्य)

पाचन/ पचत्यामं न वह्निं च कुर्याद्यत्तद्धि पाचनम्।
नागकेशरवद्विद्याच्चित्रो दीपन-पाचनः ।। (शा. प्र.- 4.12)

दीपन जो द्रव्य आम (अपक्व अन्नरस) का पाचन करता है, परन्तु अग्नि का पाचन नहीं करता उसे पाचन कहते हैं। जैसे- नागकेशर। जो द्रव्य पाचन के साथ अग्नि का दीपन भी करता है, उसे दीपन-पाचन कहते हैं। जैसे- चित्रक।

संशमन- न शोधयति न द्वेष्टि समान् दोषांस्तथोद्धतान्।
समीकरोति विषमान् शमनं तद्यथामृता।। (शा. प्र.- 4.3)
जो औषध द्रव्य वात आदि दोषों का संशोधन (बहिर्निस्सारण) तो नहीं करता और न ही सम दोषों को बढ़ाता या घटाता है, किन्तु विषम (असन्तुलित) दोषों को सम अवस्था में ला देता है, वह शमन द्रव्य होता है। जैसे- अमृता (गिलोय)।

अनुलोमन- कृत्वा पाकं मलानां यद्भित्त्वा बन्धमधो नयेत् तच्चानुलोमनं।
ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी।। (शा. प्र.- 4.4)
जो औषधि द्रव्य पुरीष आदि मलों का पाक करके उनके सघन एवं संचित स्वरूप को तोड़कर अधोमार्ग द्वारा बाहर निकालता है, उसे अनुलोमन कहते हैं।

स्रंसन- पक्तव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम्।
नयत्यधः स्रंसनं तद्यथा स्यात् कृतमालकः।। (शा. प्र.-4.5)
जो औषध द्रव्य आमाशय से लेकर मलाशय पर्यन्त चिपके हुए अपरिपक्व मलों को ही (मलद्वार) से बाहर निकाल देता है, उसे संस्रन कहते हैं। जैसे- अमलतास।

भेदन- मलादिकमबद्धं च बद्धं वा पिण्डितं मलैः।
भित्वाऽधः पातयति यद् भेदनं कटुकी यथा।। (शा. प्र. 4.6)
जो द्रव्य सघन, बंधे, पतले या पिण्डित (गांठ रूप में बने कड़े) संचित मल को नीचे मलद्वार से निकाल देता है, उसे भेदन कहते हैं। जैसे- कुटकी।

रेचन- विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत्।
रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा।। (शा. प्र.- 4.6-7)
जो औषधि द्रव्य पक्व अथवा अपक्व मलों को पतला करके अधोमार्ग (मलद्वार) से बाहर निकाल देता है, उसे 'रेचन' द्रव्य कहते हैं।

वमन- अपक्वपित्तश्लेष्माणौ बलादूर्ध्वं नयेत्तु यत्।
वमनं तत्तु विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा।। (शा. प्र.- 4.6-8)
जो औषधि द्रव्य आमाशय में स्थित अपक्व आहार रस तथा अपक्व पित्त व कफ को ऊर्ध्व मार्ग द्वारा अर्थात् मुख से बाहर निकाल देता है, उसे 'वमन' द्रव्य कहते हैं। जैसे- मदन फल।

संशोधन- स्थानाद् बहिर्नयेदूर्ध्वमधो वा मलसंचयम्।
देहसंशोधनं तत्स्याद् देवदालीफलं यथा।। (शा. प्र.- 4.8-9)
जो द्रव्य आमाशय में संचित मलों को ऊर्ध्वमार्ग (मुख)द्वारा तथा आंत्र में संचित मलों को अधोमार्ग (गुदा) द्वारा बाहर निकाल देता है; उसे संशोधन द्रव्य कहते हैं, जैसे देवदाली फल (बन्दाल)।

छेदन- श्लिष्टान् कफादिकान् दोषानुन्मूलयति यद् बलात्।
छेदनं तद्यथा क्षारा मरिचानि शिलाजतु। (शा. प्र. ख.- 4.10)
जो द्रव्य आमाशय में चिपके हुए कफ आदि दोषों को बलपूर्वक उखाड़ कर बाहर निकाल देता है, उसे 'छेदन' कहते हैं। जैसे- क्षार, काली मिर्च व शिलाजीत।

लेखन- धातून्मलान्वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत्।
लेखनं तद्यथा क्षौद्रं नीरमुष्णं वचा यवाः ।। (शा. प्र.- 4.11)
जो औषधि द्रव्य शरीर की रस रक्त आदि धातुओं एवं मलों को सर्वप्रथम सुखाता है, तत्पश्चात् उन्हें क्षीण कर देता है, उसे लेखन कहते हैं। जैसे- मधु, गर्म पानी, वचा व जौ।

ग्राही- दीपनं पाचनं यत्स्यादुष्णत्वाद् द्रवशोषकम्।
ग्राहि तच्च यथा शुण्ठी जीरकं गजपिप्पली। (शा. प्र.- 4.12)
जो आम का पाचन तथा अग्निदीपन करता है एवं पाचन के बाद उष्णता के कारण द्रवांश का शोषण करता है, वह द्रव्य 'ग्राही' होता है। जैसे- जीरा, सोंठ व गजपीपल।

स्तम्भन- रौक्ष्याच्छैत्यात् कषायत्वाल्लघुपाकाच्च यद् भवेत्।

वातकृत् स्तम्भनं तत्स्याद्यथा वत्सकटुण्टुकौ।। (शा. प्र.- 4.13)
रूक्षता, कषाय गुण व लघुपाक (सुपच) होने से जो द्रव्य वातकारक होता है तथा अधोगामी मल आदि का स्तम्भन (स्थिरीकरण) कर देता है, उसे 'स्तम्भन' कहते हैं। जैसे- वत्सक (कुटज) व टुंटुक (सोनापाठा)।

रसायन- रसानां रक्तादीनामयमाप्यायनम्। (सु. सु.- 1.7)
जो द्रव्य रस, रक्त आदि धातुओं की वृद्धि करता है, उसे रसायन कहते हैं। जैसे- आँवला, हरड़ आदि।
रसायनं च तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम्।
यथाऽमृता रुदन्ती च गुग्गुलुश्च हरीतकी।। (शा. प्र.- 4.23)
जो औषधि वृद्धावस्था और व्याधियों का नाश करती है तथा रस, रक्त आदि धातुओं की विशिष्ट रूप से प्राप्ति कराती है, उसे रसायन कहते हैं। जैसे- अमृता (गिलोय), रूदन्ती, गुग्गुलु व हरड़।

वाजीकरण- यस्माद् द्रव्याद्भवेत्स्त्रीषु हर्षो वाजीकरं च तत्।
यथा नागबलाद्याः स्युर्बीजं च कपिकच्छुकम्।। (शा. प्र.- 4.15)
जिस औषध द्रव्य के सेवन द्वारा शुक्रवृद्धि होने से मैथुनकर्म में सामर्थ्य प्राप्त होता है, उसे वाजीकरण कहते हैं। जैसे- नागबला व कौंच बीज।

शुक्रल- यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्याच्छुक्रलं च तदुच्यते।
यथाश्वगन्धा मुसली शर्करा च शतावरी।। (शा. प्र.- 1.15-16)
जो द्रव्य शुक्र (वीर्य) धातु की वृद्धि करता है, उसे शुक्रल कहते हैं। जैसे- अश्वगन्धा, मूसली, शक्कर, व शतावरी।

व्यवायी- पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकं च गच्छति।
व्यवायि तद्यथा भङ्गा फेनं चाहिसमुद्भवम्।। (शा. प्र.- 4.20)
जो औषधि द्रव्य सेवन करते ही पहले समस्त शरीर में व्याप्त हो जाता है तथा बाद में जठराग्नि द्वारा उसका पाचन होता है, उसे व्यवायी कहते हैं। जैसे- भांग व अफीम।

विकाशी- सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान्यत्करोति विकाशि तत्।
विश्लेष्यौजश्च धातुभ्यो यथा क्रमुककोद्रवाः।। (शा. प्र.- 4.21)
जो औषधि द्रव्य शरीरस्थ धातुओं से ओज का विश्लेषण (पृथक्करण) करके संधियों के बंधन को ढीला कर देता है, उसे

विकाशी कहते हैं। जैसे- क्रमुक (सुपारी) व कोद्रव (कोदो नामक धान्य)।

मदकारी- बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते। (शा. प्र.- 4.21-22)
जो द्रव्य बुद्धि को नष्ट कर देता है, उसे मदकारी (नशा करने वाला) कहते हैं।

प्रमाथी- निजवीर्येण यद् द्रव्यं स्रोतोभ्यो दोषसञ्चयम्।
निरस्यति प्रमाथि स्यात्तद्यथा मरिचं वचा।। (शा.प्र.- 4.24)
जो औषधि द्रव्य अपने प्रभाव से शरीरस्थ स्रोतों में सञ्चित विकृत दोषों को कर्ण मुख आदि मार्गों से बाहर निकाल देता है, उसे प्रमाथी कहते है। जैसे- काली मिर्च तथा बच।

अभिष्यन्दी- पैच्छिल्याद् गौरवाद् द्रव्यं रूद्ध्वा रस सिराः।
धत्ते यद् गौरवं तत् स्यादभिष्यन्दि यथा दधि।। (शा. प्र.- 4.25)
जो द्रव्य रस, रक्त वाहिनी, सिराओं में अवरोध उत्पन्न करके समस्त शरीर में भारीपन लाता है, उसे अभिष्यन्दी कहते हैं, जैसे- दही।

बृंहण- बृहत्त्वं यच्छरीरस्य जनयेत्तच्च बृंहणम् (च.सू. 22.10)
बृंहणं पृथ्व्यम्बुगुणभूयिष्ठम् (सु.सू. 41.6)
जो द्रव्य शरीर में बृहत्ता (भारीपन या स्थूलता) उत्पन्न करता है, मांस धातु को विशेष रूप से बढ़ाता है, उसे बृंहण कहते हैं।
बृंहण द्रव्य पृथ्वी व जल, इन दो महाभूतों की अधिकता वाले होते हैं अर्थात् बृंहण द्रव्य में पार्थिव व जलीय अंश की अधिकता होती है।

मेध्य- मेधायै हितं मेध्यम्। जो द्रव्य मेधा के लिए हितकारी होता है, उसे मेध्य कहते है।

आयुष्य- आयुष्यस्तु आयुःप्रकर्षकारित्वेन। (च. सू.- 26.430 चक्र.)
जो द्रव्य दीर्घ आयु प्रदान करे, उसे आयुष्य कहते हैं। जैसे आंवला, दूध आदि।

आशुकारी- आशुकारी तथाऽशुत्वाद्धावत्यम्भसि तैलवत्।। (सु. सू.- 46)
जैसे तैल की बूंदे जल में डालने से तुरन्त फैल जाती है, इसी प्रकार जो द्रव्य शीघ्र ही शरीर के स्रोतों में फैल जाता है, उसे आशुकारी कहते हैं, जैसे- विष।

व्रणरोपण- शुद्धं व्रणं यानि द्रव्याणि रोपयन्ति, तानि रोपणानि इत्युच्यन्ते। जो द्रव्य शुद्ध व्रण को भरते हैं, उन्हें व्रणरोपण कहते हैं।

स्वर्य- कण्ठस्य स्वराय हितं स्वर्यम्।
जो द्रव्य स्वर (गले की ध्वनि) को ठीक कर देता है, उसे स्वर्य कहते हैं, जैसे- मुलेठी।

दीपन- पचेन्नामं वह्निकृच्च दीपनं तद्यथा मिशिः। (शा. प्र.- 4.1)
जो द्रव्य आम का पाचन तो नहीं करता परन्तु जाठराग्नि को बढ़ाता है, उसे दीपन कहते हैं। जैसे- सौंफ।

स्नेहन- जो द्रव्य शरीर में स्निग्धता, द्रवत्व, आर्द्रता एवं मृदुता उत्पन्न करे, उसे स्नेहन कहते हैं, जैसे- घी।

वर्ण्य- जो द्रव्य शरीर के वर्ण (रंग) के लिए हितकर हो अर्थात् रंग निखारने वाला होता है, उसे वर्ण्य कहते हैं, जैसे- दूध।

रक्षोघ्न- जो द्रव्य राक्षसों (रोगजनक जीवाणुओं) को नष्ट करता है, उसे रक्षोघ्न कहते हैं। जैसे- सफेद या पीली सरसों व इससे किया जाने वाला धुँआ।

जीवनीय- जीवनम् आयुः तस्मै हितं जीवनीयम् (चक्रपाणि), जो द्रव्य जीवन-शक्ति को बढ़ाता है, उसे जीवनीय कहते हैं। चरक में दूध को सर्वश्रेष्ठ जीवनीय द्रव्य बताया है। (च. सू.- 26.43)

वृष्य- शुक्रवर्द्धक पदार्थ वृष्य कहलाते हैं, जैसे- दूध।

आयुर्वेदीय शब्दावली- रोगनाम (अंग्रेजी नाम सहित)

ज्वर	-	Fever
अतिसार	-	Diarrhoea
ग्रहणी	-	Sprue
कृमि	-	Worm-infestation
रक्तपित्त	-	Intrinsic haemorrhage
यक्ष्मा	-	Tuberculosis
गुल्म	-	Abdominal Swelling/Tumour
उदररोग	-	Abdominal diseases
प्रमेह	-	Diabetes
कुष्ठ	-	Leprosy
अर्श	-	Haemorrhoids
भगन्दर	-	Fistula
पाण्डुरोग	-	Anaemia
कामलारोग	-	Jaundice
हिक्का	-	Hiccough
श्वास	-	Asthma
कास	-	Cough

छर्दि - Vomiting

तृष्णा - Dipsia

मूत्रकृच्छ्र - Dysuria

उपदंश - Chancre

वृद्धिरोग - Hernia

उदावर्त्त - Retention of Faeces

हृद्रोग - Cardiac Diseases

उन्माद - Insanity

अपस्मार - Epilepsy

वातव्याधि - Vata Diseases

वातरक्त - Gout

मदात्यय - Intoxication

विसर्प - Erysipelas

शोफ - Edema

श्लीपद - Filiarisis

गलगण्ड - Goitre

गण्डमाला - Lymphadenopathy

ग्रन्थि - Cystic Swelling

अर्बुद - Tumour

व्रण	-	Ulcer
नेत्ररोग	-	Ophthalmic Diseases
कर्णरोग	-	Ear Diseases
कर्णनाद	-	Tinnitus
कर्णस्राव	-	Otorrhoea
पूतिकर्ण	-	Foul Odour From Ear
बाधिर्य	-	Ophthalmic Diseases
नासारोग	-	Deafness
जिह्वारोग	-	Tongue Disease
दन्तरोग	-	Dental Disease
मुखरोग	-	Oral Disease
मुखपाक	-	Stomatitis
गलशुण्डिका शोथ	-	Tonisillitis
कण्ठशालूक शोथ	-	Adenoditis
शिरोरोग	-	Cephalic Disease
विष	-	Poison

....

परिशिष्ट- ४.

मान (माप-तौल) का विवरण

जिसके द्वारा तौला या मापा जाए उसे मान कहते हैं- **'मीयतेऽनेनेति मानम्'**। औषध-योगों के निर्माण तथा रोगियों के लिए औषध-कल्पना एवं आहार-कल्पना आदि में मात्रा-निर्धारण के लिए 'मान' का ज्ञान परम आवश्यक है। कहा भी है- **'न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित्'**

-(शार्ङ्गधरसंहिता, प्रथम खण्ड- १.१४)

यहां 'सिद्धसार-संहिता' में प्रयुक्त मान-वाचक शब्दों का विवरण आधुनिक माप-तौल के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है।

ग्रन्थोक्त मान	पुराना मान	आधुनिक मान
१ कोल -	६० रत्ती	७.५ ग्राम
१ कर्ष -	१२० रत्ती	१५ ग्राम
१ पलार्ध -	२४० रत्ती	३० ग्राम
१ पल -	४८० रत्ती	६० ग्राम
१ अष्टमान-	(८ पल)	४८० ग्राम
१ कुडव -	२० तोला या ४ छटांक	२४० ग्राम
१ प्रस्थ -	८० तोला या १६ छटांक	९६० ग्राम
१ आढक -	४ सेर	३ किलो ८४० ग्राम
१ तुला -	६१/४	५ किलो ८३३ ग्राम
१ द्रोण -	१६ सेर	१५ किलो ३६० ग्राम

....

दो कोल	=	एक कर्ष	१५ ग्राम
दो कर्ष	=	पलार्ध	३० ग्राम
दो पलार्ध	=	एक पल	६० ग्राम
चार पल	=	एक कुडव	२४० ग्राम
चार कुडव	=	एक प्रस्थ	९६० ग्राम
चार प्रस्थ	=	एक आढक	३ किलो ८४० ग्राम
चार आढक	=	एक द्रोण	१५ किलो ३६० ग्राम
अष्टमान/मानी	=	आठ पल	४८० ग्राम

....

मानवाचक शब्दों के पर्याय पद

कोल- अर्धकर्ष (७.५ ग्राम)।

कर्ष- अक्ष, पिचु, पाणितल, सुवर्ण, बिडालपद, कवलग्रह (१५ ग्राम)।

पलार्ध- शुक्ति, अष्टमिका (३० ग्राम)।

पल- प्रकुञ्च, बिल्व (६० ग्राम)।

अष्टमान- अष्टपल, अष्टमिका, मानी (४८० ग्राम)।

आढक- कंस, पात्र (३ किलो ८४० ग्राम)।

तुला- शत (५ किलो ८३३ ग्राम)।

....

परिशिष्ट- ५.

सिद्धसारनिघण्टु-गत ओषधि-नामानुक्रमणिका

(प्रत्येक अपने क्रम पर अन्य सभी पर्यायों के साथ)

पीतकाष्ठ- कालीय ५०

पीतक्षीरी- काञ्चनदुग्धिका, हेमक्षीरी ६५

पीतसार- अशन (असन), बीजक ४९

पीलुपर्णी- मोरट ३०

पीवरी- इन्दीवरी, वरी, शतावरी, अभीरु ४

पुट- कलाय, लङ्गक (लङ्कक/लाँक), त्रिपुट (खेसारी) ९०

पुनर्नवा- वर्षाभू, वृश्चीव, कठिल्यक ३

पुर- पलङ्कष, माहिषाक्ष, गुग्गुलु २६

पुष्कर- पुष्कराह्वय, पुष्करमूल ७०

पुष्करमूल- पुष्कर, पुष्कराह्वय ७०

पुष्कराह्वय- पुष्करमूल, पुष्कर ७०

पुष्पकासीस- शीतल, नेत्रभेषज ८०

पुष्परस- मधु (शहद), माक्षिक, क्षौद्र ८५

पूतना- हरीतकी, पथ्या, अभया ३७

पूतीक- चिरबिल्वक २९

पृथ्वीका- एला, स्थूला, बहला १८

पृष्टपर्णी- गुहा, लाङ्गुली, कलशी २

प्रचीबल- नदीकान्त, निचुल, हिज्जल ५७

प्रत्यक्पुष्पी- खराह्वा, मयूरक, अपामार्ग ६७

प्ररोही- शश्वत्क्षीरी, नन्दीवृक्ष ९

प्राचीना- चैलिका, पाठा, अम्बष्ठा ३४

प्रियङ्गु- कङ्गुका ८९

प्रियङ्गु- फलिनी, श्यामा, गौरी, कान्ता २७

प्लक्ष (पिलखन)- गर्दभाण्ड, कपीतन ८

प्लव- कुटुन्नट, परिपेलव ३५

फञ्जी- ब्राह्मणयष्टिका, पद्मा, भार्गी १८

फल- फलत्रय, त्रिफला ३८

फलत्रय- त्रिफला, फल ३८

फलिनी- श्यामा, गौरी, कान्ता, प्रियङ्गु २७

बकायन- महानिम्ब, बृहन्निम्ब १९

बहला- पृथ्वीका, एला, स्थूला १८

बहुकण्टक- आर्त्तगल, भीषण २८

बहुपत्रा- तामलकी, अझटा ६०

बहुवार-श्लेष्मान्तक/श्लेष्मातक, शेलु ५२

बाण- सैरीयक, सहचर २८

बालक- ह्रीवेर, उदीच्य, जलवाची नाम २१

बिम्बी- तुण्डिकेरिका ३०

बीजक- पीतसार, अशन (असन) ४९

बुक- वसिर, कपिपिप्पली, वसुक ४७

बृहती- व्याघ्री ५

बृहत्फला- महाजम्बू ११

बृहन्निम्ब- बकायन, महानिम्ब १९

बोल- रस, गन्धरस २६

ब्राह्मणयष्टिका- पद्मा, भार्गी, फञ्जी १८

भतृलाग- महाशालि ८९

भद्रगोपी- सारिवा, गोपवल्ली ४३

भल्लक- श्योनाक, टुण्टुक ४६

भल्लातक- अरुष्कर १०

भार्गी- फञ्जी, ब्राह्मणयष्टिका, पद्मा १८

भिल्लक- तिल्वक, खरलोध्र ६४

।। इति सिद्धसारनिघण्टु-ओषधिनामानुक्रमणिका पर्यायसहिता ।।

परिशिष्ट- ६.

सिद्धसारसंहिता-श्लोकानुक्रमणिका

।। इति सिद्धसारसंहिता-श्लोकानुक्रमणिका ।।

परिशिष्ट- ७.

सिद्धसारनिघण्टु-श्लोकानुक्रमणिका

इति सिद्धसारनिघण्टु-श्लोकानुक्रमणिका

परिशिष्ट- ८.

सन्दर्भग्रन्थ-सूची

अमरकोश- सम्पादक- हरगोविन्द शास्त्री। चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी-१। प्रथम संस्करण- १९७० ई.।

अष्टाङ्गहृदयम्- (वाग्भट) पं. हरि सदाशिव शास्त्री पराडकर, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी-१; पुनर्मुद्रण वि.सं. २०६७;

अष्टाङ्गसंग्रहः- (वाग्भट) अत्रिदेव गुप्त, चौखम्बा कृष्णादास अकादमी, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित २००५ ई.

कैयदेव-निघण्टुः- प्रियव्रत शर्मा, चौखम्भा ओरियन्टालिया, गोकुल भवन, के.३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी-१, पुनर्मुद्रित २००९ ई.;

चक्रदत्तः- (चक्रपाणिदत्त) सम्पादक इन्द्रदेव त्रिपाठी, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी-१, पुनर्मुद्रण-२०११ ई.;

चक्रदत्त-रत्नप्रभा-(निश्चलकर), सम्पादक-प्रियव्रत शर्मा, स्वामी जयरामदास, रामप्रकाश ट्रस्ट, अनाज मण्डी जौहरी बाजार, जयपुर-३०२००३, प्रथम संस्करण- १९९३ ई.;

चरकसंहिता- सम्पादक- त्रिविक्रमात्मज यादवशर्मा, चौखम्बा ओरियण्टालिया, बंग्लो रोड़, ९-यू.बी. जवाहरनगर, दिल्ली-७, प्रथम संस्करण-२००४ ई.

गदनिग्रहः (वैद्य सोढल)- प्रथम भाग, सम्पादक- त्रिविक्रमात्मज यादवशर्मा, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई, १९११ ई.;

गदनिग्रहः (वैद्य सोढल)- द्वितीय भाग, सम्पादक- त्रिविक्रमात्मज यादवशर्मा, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई, १९१५ ई.;

मंखकोष (मंखकवि)- सम्पादक- थियोडोर जकारिया, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी-१ संस्करण-१९९८ ई.

माधवनिदानम्- सम्पादक- त्रिविक्रमात्मज यादवशर्मा, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई।

योगरत्न-समुच्चय (अनन्तकुमार-प्रणीत), द्वितीय भाग, सम्पादक- धन्वन्तरिदास एस.एन. नारायणन् मूस, अनन्तशयन राजकीय मुद्रण यन्त्रालय, तिरुवनन्तपुरम् (केरल)

योगरत्न-समुच्चय (अनन्तकुमार-प्रणीत), तृतीय भाग, सम्पादक- रामस्वामी शास्त्री, अनन्तशयन राजकीय मुद्रण यन्त्रालय, तिरुवनन्तपुरम् (केरल)। प्रथम संस्करण- १९४७ ई.;

राजनिघण्टु:- अनुवादक- इन्द्रदेव त्रिपाठी, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, पञ्चम संस्करण, १९९० ई.;

लोकसंव्यवहारप्रवृत्तिः (रविगुप्त-रचिता)- डॉ विजयपाल शास्त्री, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थानम्, वेदव्यास-परिसर, बलाहर निकट- गरली, (कांगडा), हिमाचल प्रदेश- १७७१०८, प्रथम संस्करण- २०१२ ई.।

वैद्यकशब्दसिन्धु- कविराज, उमेशचन्द्र गुप्त, चौखम्भा ओरियण्टालिया, गोकुल भवन, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी-१, पुर्नमुद्रण- २००५ ई.

शतगाथा (वररुचि-कृत)- सम्पादक- लोसङ् नोरबु शास्त्री, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ वाराणसी- २२१००७, प्रथम संस्करण- २००१ ई.;

शार्ङ्गधरसंहिता- सम्पाक- डॉ. शैलजा श्रीवास्तव, चौखम्भा ओरियण्टालिया, गोकुल भवन, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी-१., संस्करण- २०११ ई.

सुश्रुतसंहिता- सम्पादक- त्रिविक्रमात्मज यादवशर्मा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी-१; २०१२ ई.।

....

शब्दसंक्षेप-सूची

अ.सं.सू.	अष्टांग-संग्रहः, सूत्रस्थानम्
अ.हृ. सू.	अष्टांग-हृदयम्, सूत्रस्थानम्
च.सं.सू.	चरकसंहिता सूत्रस्थान
चक्र.	चक्रपाणिदत्तटीका
प.सं.	पद्यसंख्या
पृ.	पृष्ठ
लोक.	लोकसंव्यवहारप्रवृत्ति
सु. सं.सू.	सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान
सिद्ध.	सिद्धसार-संहिता
सिद्ध. सं.	सिद्धसार-संहिता
शा. प्र.	शार्ङ्गधर संहिता प्रथम खण्ड
शा. म.	शार्ङ्गधर संहिता मध्यम खण्ड
शा. उ.	शार्ङ्गधर संहिता उत्तर खण्ड

....

संस्थान द्वारा प्रकाशित 'आयुर्वेद साहित्य'

- औषध दर्शन (हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, पंजाबी, असमिया, बंगाली, कन्नड़, उर्दू, मराठी, नेपाली, उड़िया, तमिल, तेलुगु)
- आयुर्वेद सिद्धांत रहस्य
- अष्टवर्ग रहस्य
- जड़ी-बूटी रहस्य, भाग-1,2,3
- भोजनकुतूहलम्
- आयुर्वेद महोदधिः
- रूचिवधू-गल-रत्नमाला
- अजीर्णामृतमञ्जरी
- योगशतम्
- अष्टाङ्गहृदयम्

Ayurvedic Literature Published by the Institution (In English)

- Aushadh Darshan
- A Practical Approach to 'The Science of Ayurveda'
- Sectrets of Astavarga Plants
- Secrets of Indian Herbs-Volume 1

सिद्धसार-संहिता

आचार्य रविगुप्त द्वारा रचित 'सिद्धसार-संहिता' ७वीं शती की आयुर्वेद-विषयक महत्त्वपूर्ण रचना है। प्राचीन ऋषियों की अति विस्तृत आयुर्वेदीय-संहिताओं का परम उपयोगी सार इसमें इस कुशलता से समाविष्ट कर दिया है कि मानो गागर में सागर भर दिया हो। जो व्यक्ति विस्तृत संहिताओं को नहीं पढ़ सकते थे, उनके लिए सारभूत अर्थ को लेकर यह संहिता बनाई गई थी। अपने इस उद्देश्य में यह विशेष रूप से सफल हुई, अत एव सम्पूर्ण भारत में यह अत्यन्त लोकप्रिय हो गई थी। चिकित्साकार्य में वैद्यों के लिए यह बहुत उपयोगी सिद्धपुस्तिका (हैंडबुक) बन गई थी। कालान्तर में विदेशी आक्रान्ताओं के कारण आयुर्वेदीय परम्परा व साहित्य पर भी बड़ा आघात हुआ। ऐसे प्रतिकूल समय में भी सौभाग्यवश यह संहिता नेपाल के हस्तलेखागारों में ताड़पत्रों पर सुरक्षित बच गई।

आयुर्वेद-वाङ्मय में परवर्ती ग्रन्थकारों व टीकाकारों ने अनेक स्थलों पर 'सिद्धसार-संहिता' का उल्लेख किया है और बहुत से उद्धरण दिए हैं, परन्तु यह संहिता अप्रकाशित होने से सुलभ न थी। आयुर्वेद-मनीषी श्रद्धेय आचार्य श्रीबालकृष्ण जी ने नेपाल से प्राप्त ताड़पत्रीय हस्तलिखित ग्रन्थ के आधार पर पहली बार हिन्दी अनुवाद के साथ इसे सुसम्पादित रूप में प्रस्तुत किया है। यह आचार्यश्री का आयुर्वेद के क्षेत्र में महनीय योगदान है तथा आयुर्वेद-जगत् के लिए एक विशिष्ट उपलब्धि है।

'सिद्धसार-संहिता' में आयुर्वेद के सिद्धान्त व चिकित्सा-विधि बहुत ही सरल, संक्षिप्त सर्वांगीण रूप में वर्णित की गई है। इसकी एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें चिकित्सा हेतु बहुत ही उत्तम व चयनित योग (नुस्खे) प्रस्तुत किए गए हैं, जो सदियों से परीक्षित एवं बहुत ही कारगर हैं और सहज रूप में उपलब्ध होने वाले हैं। अधिकांश योगों को गाँवों में घर पर ही बनाया जा सकता है। इस प्रकार के सरल, सुगम व सर्वजनोपयोगी इस चिकित्सा ग्रन्थ का अधिकाधिक प्रचार होना चाहिए, जिससे लोग अल्प व्यय में सुगमता से आरोग्यलाभ कर सकें। **सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।** सभी के सुखमय आरोग्य की मंगलकामना के साथ—

आपका

स्वामी रामदेव

दिव्य प्रकाशन

पतञ्जलि योगपीठ

महर्षि दयानन्द ग्राम, दिल्ली-हरिद्वार राष्ट्रीय राजमार्ग

निकट बहादराबाद, हरिद्वार-249402 (उत्तराखण्ड)